सटीक

कृष्णायन

(टीकाकार श्री. विनयमोहन शर्मा)



द्वारकाप्रसाद मिश्र

प्रतिभा प्रकाशन

कृष्णायन

[अवतरण काण्ड]

द्वारकाप्रसाद मिश्र

टीकाकार

प्राध्यापक श्री विनयमोहन शर्मा

प्रतिभा प्रकाशन लिमिटेड,
वर्धा रोड, नागपुर ।

प्रकाशक,
प्रतिभा प्रकाशन लिमिटेड,
वर्धा रोड, नागपुर।

मूल्य २)

मुद्रक,
वर्धा रोड, नागपुर।

प्रकाशक का वक्तव्य

पाठकों को यह जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि युगकाव्य कृष्णायन टीका सहित प्रकाशित हो रहा है। इसके टीकाकार हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध समालोचक, कवि, प्राध्यापक श्रीयुत विनयमोहनजी शर्मा हैं। जहां तक सम्भव हो सका है, टीकाको सरलतम बनाने का यत्न किया गया है। आशा है कि इससे पाठकों को काव्य का सहज ही रसास्वादन हो सकेगा। कृष्णायन क्रमशः सात काण्डों में प्रकाशित होगा और जब सभी काण्ड एक जिल्द में प्रकाशित होंगे तब टीकाकार की विस्तृत भूमिका और ग्रन्थकार का वक्तव्य भी उसमें सम्मिलित रहेंगे।

विजयादशमी
सम्वत् २००८ वि.

प्राक्कथन

—डा० राजेन्द्र प्रसाद, राष्ट्रपति, भारतीय गणतन्त्र

आर्य साहित्य में, चाहे वह संस्कृत साहित्य हो अथवा प्रान्तीय भाषाओं का, जितनी चर्चा भगवान् रामचन्द्र और भगवान् कृष्णचन्द्र की मिलती है उतनी और किसी की नहीं—और न अन्य किसी विषय की। धार्मिक दृष्टि से भी अनेक अवतार माने गये हैं, पर किसी दूसरे अवतार को न तो वह महत्व मिला और न साहित्य में वह स्थान। भगवान् रामचन्द्र को पुरुषोत्तम के नाम से व्यक्त किया गया है, क्योंकि जन-साधारण के लिए उनका जीवन गृहस्थ जीवन का आदर्श रूप है। पिता का पुत्र के प्रति, पति का पत्नी के प्रति आदर्श प्रेम, सत्यनिष्ठा, शौर्य, सौहार्द इत्यादि सभी गुण रामचन्द्र में मिलते हैं, और मनुष्य उस जीवन के ढाँचे में अपने जीवन को ढाल सकता है। भारतवर्ष की असंख्य पीढ़ियों ने उसी ढाँचे में अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न भी किया है। श्रीकृष्णचन्द्र को पूर्णावतार कहा गया है, जिनमें सभी कलाओं का पूर्णरूपेण विकास हुआ है। यदि बचपन में ही उन्होंने गोपियों के प्रति अलौकिक, असाधारण प्रेम का परिचय दिया है तो उसी अवस्था में दूसरी ओर कंस के भेजे हुए अनेकानेक असुरों का वध करके अलौकिक शक्ति और शौर्य का भी दृष्टांत उपस्थित किया है। यदि गीता का ज्ञान रण-स्थल में उन्होंने अर्जुन को दिया है तो समय-समय पर अपनी चातुरी और सांसारिक बुद्धिमत्ता से पाण्डवों को अर्थ-संकट और धर्म-संकट से भी बचाया है। यदि वह अनेक रानियों और पटरानियों के पति हुए हैं तो साथ ही स्थिरप्रज्ञ योगी भी रहे हैं। श्रीकृष्ण शास्त्र-शस्त्रविद् हैं, कला-कोविद हैं, राजनीति-विशारद हैं, योगी हैं, दार्शनिक हैं—सभी एक साथ हैं और सब में महान् हैं।

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में श्रीरामचन्द्र का पूर्ण चरित एकत्र मिलता है। आदि कवि वाल्मीकि ने उस चरित्र का चित्रण रामायण महाकाव्य में आदि में ही कर दिया, और तत्पश्चात् अनेकानेक कवियों ने पूर्ण अथवा आंशिक रूप से उनका अनुसरण करके पूर्ण जीवन की कथा कह डाली। हिन्दी साहित्य में भी तुलसीदास ने वही किया और आज 'रामचरित मानस' घर-घर की संपत्ति, जीवन का मार्ग-दर्शक, शोक और वियोग में शान्तिदायक और सर्वोपरि भक्ति-रस-वारिद बन रहा है। श्रीकृष्णचन्द्र की जीवन-कथा इस प्रकार एकत्र कहीं नहीं मिलती। वह आंशिक रूप में संस्कृत साहित्य में बिखरी पड़ी है। महाभारत और श्रीमद्भागवत दो मुख्य ग्रन्थ हैं, जिनमें कृष्ण-चरित का अधिक से अधिक मसाला मिलता है। पर इन दोनों में भी उसके हर पहलू पर न तो समान प्रकाश ही डाला गया है और न दोनों एक उद्देश्य अथवा दृष्टि से लिखे ही गये

हैं। जब संस्कृत साहित्य में ही इस पूर्णावतार की पूर्ण कथा एकत्र नहीं मिलती तो हिन्दी साहित्य में उसका अभाव आश्चर्य-जनक नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री द्वारकाप्रसाद मिश्रजी ने हिन्दी साहित्य की इस कमी को दूर करने का अत्यन्त विशद और सफल प्रयत्न किया है। कृष्णायन में जन्म से स्वर्गारोहण तक की सभी घटनाओं को क्रम-बद्ध कर के दर्शाया गया है। यह स्तुत्य प्रयत्न प्रबन्ध-काव्य द्वारा ही सफल हो सकता था, और मिश्रजी ने शील, सौंदर्य और शक्ति तत्वों के चित्रण में असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित की है। यदि बच्चे के प्रति माता और मातृ-सदृश गोपियों के मृदुल प्रेम के स्निग्ध स्पर्श का हम एक स्थान पर अनुभव कर सकते हैं तो दूसरे स्थान पर विकट, विकराल युद्ध का भयावह प्रदर्शन भी देखने को मिलता है। यदि वसन्त का सुन्दर, सुखद और मनोरंजक वर्णन हमें मिलता है तो अत्यन्त भयानक जंगल से होकर भी हमें गुजरना पड़ता है। गीताके ज्ञान के साथ-साथ चार्वाक की चटपटी फ़िलासफ़ी और उस मिससे आधुनिक प्रचलित भौतिकवाद का भी दिग्दर्शन हो जाता है। पर सर्वोपरि कृष्णायन कृष्ण-चरित को आज के जीवन और आज की समस्याओं को सामने रख कर चित्रित करता है। उसमें हमें पीड़ित प्रजा-द्वारा विप्लव का चित्र मिलता है। युद्ध से बचने के असफल प्रयत्न और बाध्य होकर धर्म-संस्थापन के लिए उसमें प्रवृत्त होने की मजबूरी और उसके अन्त में जीवन की समस्याओं के हल करने में युद्ध की असफलता और असमर्थता का प्रमाण मिलता है। भगवद्भक्तों को श्रीकृष्णचन्द्र की अनेक झाँकियाँ मिलती हैं और देश-भक्तों को अखण्ड भारत का दर्शन मिलता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति में आस्था रखनेवालों को प्रोत्साहन मिलता है और कविता प्रेमियों को रसास्वादन। यह ग्रन्थ युग-प्रवर्त्तक होने और 'रामचरित मानस' की भाँति घर-घर में प्रवेश करने की शक्ति रखता है।

भाषा अवधी है और इसलिए 'मानस' की भाँति मीठी। संस्कृत का प्रयोग 'मानस' से अधिक मात्रा में है और यदि प्रचार में कमी होगी तो इसी कारण से। पर यदि विषय और काव्य-कला की अनिवार्य आवश्यकताओं पर विचार किया जाय तो शायद मानना पड़ेगा कि यह अनिवार्य था। सारे ग्रन्थ में चौपाई, दोहा और सोरठा का ही प्रयोग किया गया है। तुलसीदास ने जहाँ-तहाँ अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया है, और कहीं-कहीं दो दोहों के बीच में चौपाइयों की संख्या आठ से अधिक कर दी है। प्रस्तुत ग्रन्थ में 'मानस' की भाँति सात काण्ड हैं, पर दोहों के बीच में आठ चौपाइयों से अधिक शायद कहीं भी समावेश नहीं किया गया है। 'मानस' की भाँति ही यह ग्रन्थ भी गाया जा सकता है, और मुझे आशा है कि गाँवों के चौपालों में शिक्षित और निरक्षर एक साथ मिलकर 'मानस' की तरह इसे भी गायेंगे। मिश्र जी की यह कृति अमर हो, यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

जीरादेई, (सारण, बिहार प्रान्त)
विजया दशमी, २००२ वि०



कृष्णायन

—★(*)★—

अवतरण काण्ड

सोरठा :—जन्मेउ बंदी-धाम, जो जन जननी मुक्ति हित।
वंदहुँ सोइ घनश्याम, मैं बंदी, बंदिनि-तनय॥

पराधीन (भारत) माता का पुत्र (और) कारावासी मैं, उस घनश्याम (कृष्ण) की वन्दना करता हूँ, जिसने (पीड़ित) जनता तथा अपनी जननी (देवकी) को बंधन से छुड़ाने के लिये कारागृह में जन्म लिया था।

सो० :—जेहि संसृति विस्तार, कीन्हेउ क्रीड़ा हेतु निज।
वंदहुँ रस-आगार, कलाकार सोइ प्रथम हरि॥

मैं फिर उन रसधाम हरि की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने अपनी लीला के विलास के लिये इस संसार की सृष्टि की है और जो, इस प्रकार, सृष्टि के प्रथम कलाकार हैं।

सो० :—रच्छे श्रुति इतिहास, कलि-वारिधि बूड़त निरखि।
वंदहुँ वेदव्यास, ज्ञान-मूर्ति कृष्णहि स्वयम्॥

मैं उन वेदव्यास की वंदना करता हूँ, जो स्वयं कृष्ण भगवान की ही ज्ञान-मूर्ति हैं और जिन्होंने कलियुग के समुद्र में वेद और पुराणों को डूबते देखकर उनकी रक्षा की।

सो० :—वंदहुँ तुलसीदास, सत-रवि-भासित-ज्ञान-घन।
सतत अनंत निवास, नत बरसत महि काव्य-जल॥

मैं उन तुलसीदासजी की वन्दना करता हूँ, जो सत्य रूपी सूर्य से प्रकाशित ज्ञान-रूपी मेघ के समान हैं; जिनका आकाश में शाश्वत (सदा) वास है, परन्तु जो लोक-कल्याण के लिये नीचे झुक कर पृथ्वी पर काव्य रूपी जल की वर्षा करते हैं।

सो० :—युग युग हरि पद चूमि, भुक्ति, मुक्ति, जय जेहि लही।
वंदहुँ भारतभूमि, हरि-जननी, हरि-यश-मयी॥

मैं उस भारतभूमि की वन्दना करता हूँ, जो भगवान की जन्मदात्री है और उनके यश से भरपूर है तथा जिसने अनेक युगों तक भगवान के चरणों को चूम-चूमकर भोग, मोक्ष और विजय को प्राप्त किया है।

दोहा :—सुरसरि-हृत-पद-पद्म-रज, पुण्य भूमि निर्माण।
संचित चरणोदक उदधि, लहरत करि यश गान॥१॥

गंगा ने विष्णु भगवान के चरणकमल की रज का हरण कर उसी से इस पुण्य भूमि (भारत) का निर्माण किया है। समुद्र, जो उन्हीं चरणों का संचित धोवन है, उनकी कीर्ति के गीत गाता हुआ लहरा रहा है।

मनुजहु तेहि रज वारि प्रजाता। दृढ़वत रहत सहज हरि-नाता॥
तजि भव भोग धरत हरि-ध्याना। पावत परब्रह्म भगवाना॥

यहाँ के मनुष्य भी, जो उसी धूलि और जल से निर्मित हैं, भगवान से अपने इस नैसर्गिक सम्बन्ध को और भी दृढ़ करते हैं। वे संसार के भोगों को त्यागकर परमात्मा का ध्यान करते हैं और परब्रह्म भगवान को प्राप्त कर लेते हैं।

सौंपि प्रभुहिं कर्मज फल सारे। पाप पुण्य गत होत सुखारे॥
ताते भोग-भूमि महि सारी। कर्म-भूमि इक जननि हमारी॥

अपने सांसारिक कर्मों के सारे फलों को भगवान को सौंपकर वे पाप-पुण्य के बन्धन से मुक्त हो सुखी हो जाते हैं। इसी कारण से संसार के समस्त देश भोग-भूमि हैं। एक हमारी जन्म-भूमि (भारत) ही कर्म–भूमि है।

संचित पुण्य न जब लगि होई। पावत जन्म न यहि महि कोई॥
भोगत देव जदपि सुख नाना। स्वर्ग न मिलत मोक्ष निर्वाणा॥

जब तक किसी के पुण्यों का संचय नहीं हो जाता, तब तक उसका जन्म इस भूमि (भारत) में नहीं होता। यद्यपि देवता स्वर्ग में अनेक प्रकार के सुखों को भोगते हैं, फिर भी वहाँ उन्हें मोक्ष नहीं मिलता।

क्षीण पुण्य सुख विभव विनाशा। बाँधत तिनहिं बहुरि भव-पाशा॥
ताते जब तब हरिहिं रिझायी। जन्मत सुर भारत महि आयी॥

पुण्य का क्षय हो जाने पर वहां (स्वर्ग) के सुख और वैभव का भी नाश हो जाता है और देवताओं को पुनः संसार का बंधन जकड़ लेता है। इसीलिये समय-समय पर भगवान को प्रसन्न कर देवता भारत भूमि में आकर जन्म लेते हैं।

दोहा :—जानि आत्मजा, लखि चरण, अर्पित तन, मन, प्राण।
होत सगुण निर्गुण हरिहु, लखति भूमि भगवान॥२॥

इस भूमि को अपनी ही पुत्री जानकर और अपने चरणों में उसके तन, मन, प्राण अर्पित देखकर निर्गुण भगवान भी सगुण हो जाते हैं और यह भूमि भगवान के (साक्षात) दर्शन करती है।

जन्म हेतु कबहुँक जन-त्राणा। कबहुँ युगोचित ज्ञान-प्रदाना॥
जो कछु धर्म कर्म यहि देशा। सो सब आपु दीन्ह विश्वेशा॥

उनके अवतार का लक्ष्य कभी लोक-रक्षा होता है और कभी युग की आवश्यकता के अनुरूप

ज्ञान का प्रचार। इस देश में जितनी भी धर्म और कर्म की व्यवस्था पाई जाती है, वह सब स्वयं भगवानकी ही दी हुई है।

जबहिं म्लेच्छ भारत चढ़ि आवहिं। संस्कृति, धर्म, सुनीति नशावहिं॥
हरिहिं पुकारति भारत माता। तब तब जन्म लेत जन-त्राता॥

जब जब म्लेच्छ भारत पर आक्रमण कर उसकी संस्कृति तथा उसके धर्म और सदाचार को नष्ट करते हैं, तब तब भारतमाता भगवानको पुकारती है और जन-रक्षक भगवान यहां जन्म लेते हैं,

ये अंशन अवतार कहावत। कछुक ईशता प्रभु दरसावत॥
भयेउ पूर्ण एकहि अवतारा। जब हरि कृष्ण रूप ब्रज धारा॥

ये 'अंशावतार' कहलाते हैं, क्योंकि भगवान इन अवतारों में अपनी कुछ ही ईश्वरता दर्शाते हैं। भगवान का एक ही पूर्णावतार हुआ है और वह भी तब हुआ, जब उन्होंने ब्रज में कृष्ण का रूप धारण किया।

प्रकटे भुवन-विमोहन वेशा। विश्वहिं दीन्ह अभय संदेशा॥
खल-शिक्षण जन-रक्षण कीन्हा। धरणिहिं धर्मराज प्रभु दीन्हा॥

कृष्णावतार में भगवान ने विश्व को मोहनेवाला रूप प्रकट किया और उसके द्वारा विश्व को निर्भयता का सन्देश दिया, दुष्टों का दमन तथा सज्जनों का रक्षण किया और पृथ्वी पर धर्म के राज्य की प्रतिष्ठा की अथवा भारतभूमि को धर्मराज (युधिष्ठिर) सा राजा दिया।

दोहा:—भयेउ कला षोड़श सहित, कृष्णचन्द्र अवतार।
पूर्ण ब्रह्म हरि यश विमल, बरनहुँ मति अनुसार॥ ३॥

कृष्णचंद्र का सोलहों कलाके साथ अवतार हुआ। मैं उन्हीं पूर्ण ब्रह्म हरि के निर्मल यश का वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार करुंगा।

ज्ञान ध्यान नहिं कछु मम पासा। भक्ति न अचल, न बल विश्वासा॥
मूल भाव, कछु कवितहु नाहीं। चलन चहहुँ गहि कवि परिछाहीं॥

मेरे पास ज्ञान–ध्यान कुछ भी नहीं है और न दृढ़ भक्ति तथा विश्वास का ही बल है। मेरे भावों में मौलिकता नहीं है और न उनमें काव्य ही है। मैं तो कवियों की छायाको ग्रहण कर चलना चाहता हूँ।

तुलसी-शैलिहि मोहिं प्रिय लागी। भाषहु बिनु विवाद, रस-पागी॥
सूरदास-पद-ज्योति सहारे। बरने बाल चरित मैं सारे॥

मुझे गोस्वामी तुलसीदासजीकी ही काव्य-शैली प्रिय लगी और उन्हीं की (अवधी) भाषा भी। जो रसमयी है और जिसके संबंध में (खड़ी बोली के समान) कोई वाद-विवाद नहीं है। मैंने भगवान कृष्ण की बाल-लीलाओं का महाकवि सूरदास के पदों के प्रकाश के सहारे वर्णन किया है।

जदपि ध्येय निज कतहुँ न त्यागा। मधुप-स्वभाव मोहिं प्रिय लागा॥
छमहिं अकिंचन जानि सुजाना। रंचहु उर न काव्य अभिमाना॥

यद्यपि मैंने इस काव्य की रचना के अपने उद्देश्य को कहीं भी नहीं छोड़ा, तो भी भौंरे की फूलोंसे रस–संचय करनेकी प्रवृत्ति, मुझे प्रिय होने के कारण मैंने पूर्ववर्ती कवियोंके भाव ग्रहण किए हैं, अर्थात् मेरे अपने दृष्टिकोण के अनुकूल भाव ही ग्रहण किए गये हैं, किसी के सुन्दर भावोंके

लेने के लोभ से मैंने अपना दृष्टिकोण नहीं बदला। जो कुछ प्राचीन कवियों के भाव मैंने ग्रहण किये हैं, उसके लिए भी सज्जन मुझे मेरे भाव-दारिद्र्य का ध्यान रख क्षमा करें। मेरे हृदय में तनिक भी काव्यगर्व नहीं है।

एक यहहि अभिलाषा मोरी। सुनहिं कृष्ण-यश लाख-करोरी॥
मोहिं भरोस पढ़ि-गुनि आद्यंता। छमिहैं सकल दोष मम संता॥

मेरी तो केवल यही अभिलाषा है कि भगवान कृष्ण के चरित्र को लाखों करोड़ों जन सुनें। मुझे विश्वास है कि भगवान के इस चरित्र के प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ने और मनन करने के पश्चात् सज्जन मेरे सारे दोषों को अवश्य ही क्षमा कर देंगे।

दोहा :—दण्डनीय अपराध यदि, वंदनीय हरि नाम।
रुचत जिनहिं नहिं हरि चरित, मोहिं न तिन सन काम॥ ४॥

यदि मेरा अपराध दण्डनीय है तो भगवान का नाम तो वन्दनीय है। जिन्हें भगवान की लीलाएँ नहीं भातीं, उनसे मेरा कोई सरोकार नहीं है।

जिनहिं न धर्म, न संस्कृति ज्ञाना। जिनहिं गरल सम शास्त्र पुराणा॥
जीवन-तरुहिं समूल विनाशी। जे नव बीज वपन अभिलाषी॥

(मेरा काव्य-रचना का यह प्रयत्न उन व्यक्तियों के लिये नहीं है) जिन्हें न धर्म के प्रति आस्था है और न अपनी संस्कृति का ज्ञान है, जिन्हें अपने शास्त्र-पुराण विषके समान (अग्राह्य) हैं, जो भारतीय जीवन-रूपी वृक्ष को जड़ से नष्ट कर नए बीज को बोने की कामना करते हैं—

उदधि-पार के नित नव वादा। धरत शीश जे मानि प्रसादा॥
पर-वश तन संग मनहु आपन। कीन्हेउ जिन पर-चरण समर्पण॥

……जो समुद्र पार (पाश्चात्य देशों) के नए नए सिद्धान्तों को देव-प्रसाद के समान आदरणीय मानकर शिरोधार्य करते हैं; जिन्होंने परतन्त्र शरीर के साथ साथ अपने मन को भी दूसरों के चरणों में अर्पण कर दिया है—

नात पुरातन जिन सब तोरा। तिन हित यह प्रयास नहिं मोरा॥
परंपरा-प्रिय मति मैं पायी। पैतृक संपति तजि नहिं जायी॥

और इस तरह जिन्होंने प्राचीन संस्कृति से अपना सारा सम्बन्ध तोड़ दिया है, उनके लिये मेरा यह प्रयत्न नहीं है। मेरा मन परम्परा-प्रिय है। पैतृक सम्पत्ति मुझसे छोड़ी नहीं जाती।

करि तप ऋषिन लहेउ जो ज्ञाना। भयेउ न आजहु सो निष्प्राणा॥
बीज रूप सब निज उर धारी। माँगति कर्मभूमि नव वारी॥

ऋषियों ने तपस्या करके जो ज्ञान प्राप्त किया था, उसमें आज भी प्राण हैं, जीवन है। यह कर्मभूमि भारतमाता उस समस्त ज्ञान को अपने हृदय में बीज के रूप में धारण किये हुए है। उसके उगने के लिये यदि वह कुछ चाहती है, तो वह है नया जल अर्थात प्राचीन ज्ञान आज भी उपयोगी है, उसको समझने के लिए केवल नये दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

दोहा :—बाजी जो ब्रज बाँसुरी, अजर, जदपि प्राचीन।
भक्त-श्रवण आजहु सुनत, युग संगीत नवीन॥ ५॥

ब्रज में जो वंशी बजी, उसे यद्यपि युग बीत गये हैं तो भी उसका स्वर अजर-अमर है। भक्तों

के कान उसमें आज भी नए युग का सन्देश सुनते हैं। अर्थात् यदि श्रद्धा से सुना-समझा जावे तो भगवान कृष्ण के सन्देश में इस युग की समस्याओं का हल मिलेगा।

सकत जो स्वल्प-मतिहु यश गायी। सो केवल हरि-चरित बड़ाई॥
प्राची दिशा निरखि रवि-रोली। देत कमल विह्वल मुख खोली॥

यह हरि के चरित्र का ही बड़प्पन है कि मेरे समान छोटी बुद्धि वाले भी उसका वर्णन कर सकते हैं। पूर्व दिशा में रोली के सदृश सूर्य की लालिमा देखकर कमल प्रेमाकुल होकर मुख खोल देता है (खिल उठता है।)

भरत भुवन जब तंत्री-नादा। प्रकटत फणिहु सलय-आह्लादा॥
बौरत विपिन विलोकि रसाला। गावत कोकिल विवश विहाला॥

जब वीणा का स्वर संसार में भर जाता है, तब सर्प भी उसमें तन्मय हो अपने आनंद को लय-सहित प्रकट करता है। वनमें आमोंपर बौर छाए देखकर कोयल विह्वल और विवश हो गा उठती है

व्योम विलोकि घटा घन घोरा। उटत नाचि आपुहि वन मोरा॥
उपवन निरखि यूथिका फूली। गुंजत भृंग रंग निज भूली॥

आकाश में बादलों की घोर घटा देखकर वन में मोर आप ही आप नाच उठते हैं। उपवनों में जूहीको फूली देखकर भौंरे अपने (काले) रंग को भूलकर गूंजने लगते हैं।

गगन विलोकि उदित रजनीशा। गावत लहरि आपु वारीशा॥
चंद्रकान्त मणि उरहु पसीजी। आपुहि आपु जात रस भीजी॥

आकाश में चंद्रमा का उदय देखकर समुद्र स्वयं ही लहराकर गा उठता है और चन्द्रकान्त मणि का हृदय भी पसीज उठता है—वह आप ही आप रस में भीग जाता है।

दोहा :—हरि-चरितहि विरचत कविन, रचत चरित कवि नाहिं।
अस गुनि गावहुँ हरि-सुयश, सुनि भ्रम भीति नसाहिं॥ ६॥

हरि-चरित ही कवियों की सृष्टि करता है; कवि हरि-चरित की सृष्टि नहीं करते। ऐसा सोचकर ही मैं श्रीकृष्ण भगवान का वह सुयश गाऊँगा, जिसे सुनकर भ्रम और भय दूर हो जाते हैं।

भारत-हृदय आर्यजन-धामा। जनपद शूरसेन अभिरामा॥
जहँ गोवर्धन सोह पहारा। तरुवर सघन कंदरा सारा॥

भारत का हृदय और आर्यों का निवास-स्थान शूरसेन सुन्दर जनपद (प्रान्त) है। (अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण प्राचीन शूरसेन देश को भारतमाता का हृदय कहा गया है।) जहां सघन पेड़ों और गहन कंदराओं के सहित गोवर्धन पर्वत सुशोभित है।

चूमि तमाल-द्रुमन आनंदिनि। वहति निकुंजन जहँ रवि-नंदिनि॥
जहां रम्य वृन्दावन, मधुवन। महि अवतीर्ण मनहुं वन नंदन॥

जहां आनन्दमयी यमुना वनों के तमाल वृक्षों को चूमती हुई कूंजों में घूम घूम कर बहती है। जहां सुन्दर वृन्दावन है, मधुवन है, (जिनकी शोभा देखकर ऐसा प्रतीत होता है) मानों पृथ्वी पर नन्दन-वन ही उतर आया हो।

ताल-फलन जहँ वन-श्री श्यामा। दाड़िम-फूलन-फलन ललामा॥
हरि जहँ अनिल बकुल-आमोदा। श्रान्त पान्थ मन भरत प्रमोदा॥

जहाँ कहीं ताड़ के पेड़ों के कारण वन की शोभा श्याम है और कहीं अनार के फूलों तथा

फलों के कारण ललाम है। जहां मौलसिरी की सुगन्ध को चुराकर पवन थके हुए पथिकोंके मन को उल्लास से भर देता है;—

विपिन विपिन जहँ नयन-रसायन। पुलिन पुलिन मंजुल कामायन॥
जहँ तरु तरु अलि-रव वाचाला। कुंज कुंज पिक-गायन-शाला॥

जहाँ प्रत्येक वन मानों आंखों के लिये रसायन है और जहां यमुना का प्रत्येक कछार मानों कामदेवका निवास-स्थान है। जहां प्रत्येक तरु मानों भौंरोंके स्वर में बोल रहा है और प्रत्येक कुंज मानों कोयलों की गायन-शाला है।

दोहा:—शोभित दिशि दिशि व्रज जहां, रम्य गोपजन-ग्राम।
तातें व्रज, व्रजमण्डलहु, अन्य पुण्य महि नाम॥ ७॥

जहां प्रत्येक दिशा में, व्रज अर्थात् गोपों के सुन्दर ग्राम शोभित हो रहे हैं। इसी से इस पुण्य-प्रदेश शूरसेन के दो और नाम-व्रज तथा व्रजमण्डल- भी हैं।

तृण सुकुमार चरत जहँ कानन। विचरत तृप्त, निरामय गोधन॥
रंभा-रव जहँ श्रुति-सुखदाई। ग्रीवा-घंटी ध्वनि वन छायी॥

जहाँ वन में तृप्त और स्वस्थ गौयें कोमल तृण चरती हुई विचरण करती हैं, जहाँ उनके रँभाने की आवाज़ कानोंको सुख दे रही है और जहाँ वन में उनके गले में बँधी हुई घन्टी का स्वर छाया हुआ है।

जहँ स्वच्छन्द चरावत धेनू। वादत गोप मधुर ध्वनि वेणू॥
जहँ रसाल वन, वंजुल-पाली। गावति प्रीति-गीत गोपाली॥

जहां ग्वाल निर्द्वन्द्व होकर गोयें चराते हुए मधुर स्वर में वंशी बजाते हैं। जहां आमों के वनों तथा अशोक वृक्षों की बीथियों में गोपों की स्त्रियाँ प्रीति के गीत गाती हैं।

सुनि काकली मुरलि मधु संगा। भूलत जहँ तृण चरन कुरंगा॥
धवलित महि जहँ फेन-उद्गिरण। पूरित घृत-आमोद समीरण॥

जहां गोपोंकी मुरली की मधुर तान के साथ गोपियोंके गीतों की लय सुनकर हरिण तृण चरना भूल जाते हैं; जहां गायोंके मुख से निकले हुए फेन से पृथ्वी सफेद है और वायु घृत से सुवासित है।

जहँ मंथन-ध्वनि घन-गंभीरा। सुनि चातक आनंद अधीरा॥
अहोरात्र शुचि क्षीरस्नाता। महि क्षीरोद जहाँ साक्षाता॥

जहाँ दही मथने का बादलों सा गर्जन सुनकर चातक आनन्द से विभोर हो उठते हैं; जहाँ दिनरात दूध से नहाती रहने के कारण पृथ्वी ऐसी प्रतीत होती है, मानों वह क्षीरसागर हो।

दोहा:—भोगत जहँ द्वापर युगहु, कृतयुग गोप अशोक।
सुकृतिन हित महि अवतरित, व्रज मिस जनु गोलोक॥ ८॥

जहाँ द्वापर-युग में भी सुखी गोप सतयुग का भोग करते हैं, मानों पुण्यवानों के लिये स्वर्गलोक ही व्रज के रूप में पृथ्वी पर उतर आया हो।

सोरठा:—पावन प्रांत विशाल, व्रजमण्डल सुषमा-सदन।
शोभित जनु वर माल, भारत वक्षस्थल विशद॥

व्रजमण्डल पवित्र विशाल प्रान्त है और सौन्दर्य का घर है। (अपनी स्थिति के कारण) वह

भारत के निर्मल वक्षस्थल पर सुन्दर माला के समान शोभित है।

शासक यदुवंशिन रजधानी। मथुरापुरी धान्य धन खानी॥
क्रीड़ति पुर सँग जमुन-तरंगा। जनु सुरपुर सँग व्योमग गंगा॥

यदुवंशी शासक हैं ; धन-धान्य की खान मथुरापुरी राजधानी है। यमुना की लहरें नगर के साथ ऐसी क्रीड़ा कर रही हैं, मानों आकाश-गंगा इन्द्रपुरी के साथ खेल रही हो।

राजभवन जनु दुर्ग महाना। यंत्र, शतघ्नी आयुध नाना॥
सुधा-धवल अट्टालक धामा। जनु शशिलोक नगर अभिरामा॥

राजमहल मानों महान किला है, वहाँ कई प्रकार के यंत्र, तोप आदि अस्त्र-शस्त्र हैं। चूने से पुते हुए छोटे बड़े सभी घर इतने श्वेत हैं, मानों मथुरा नगर सुन्दर चन्द्रलोक ही हो।

विपणि धनेश-धाम प्रतिरूपा। हेम रत्न मणि विविध अनूपा॥
गुरुकुल, शिल्प-कला-गृह नाना। धारागृह, उपवन, उद्याना॥

नगर के बाजार, जहां सोना और अनेक प्रकार के अनुपम मणि-रत्न सजे हैं, कुबेर के भवन के समान लगते हैं। वहां अनेक विद्यालय, शिल्पकला-गृह, फव्वारे, उपवन और बगीचे हैं।

बहु आमोद-प्रमोद-निकेतन। सुन्दर गायन, वादन, नर्तन॥
हय, गय, रथ, जन-रव पथ माहीं। महापुरी मथुरा सम नाहीं॥

वहाँ लोकरंजन के लिये अनेक क्रीड़ागृह हैं, जिनमें सुन्दर गायन, वादन और नर्तन होता है। घोड़ा, हाथी, रथ और जन-कोलाहल से सड़कें भरी रहती हैं। कोई भी महापुरी मथुरा की समता नहीं कर सकती।

दोहा :—नगर नारि नर शुचि, सुभग बीर धीर मतिमान।
उग्रसेन यादव-पतिहु, महि अमरेश समान॥ ६॥

नगर के स्त्री-पुरुष, सुन्दर, पवित्र, वीर, धीर और बुद्धिमान थे। यादवों के राजा उग्रसेन भी पृथ्वी पर इन्द्र के समान थे।

बरनहुँ किमि यदुकुल-विस्तारा। जहँ हरि आपु लीन्ह अवतारा॥
भोज, वृष्णि, अंधक बहु शाखा। भाँति अनेक पुराणन भाखा॥

मैं उस यदुवंश का, जहां स्वयं हरि ने अवतार धारण किया, पूर्ण वर्णन कैसे कर सकता हूँ? पुराणों ने उसकी भोज, वृष्णि, अंधक आदि बहुतेरी शाखाओंका अनेक प्रकार से वर्णन किया है।

पृथक-पृथक नायक प्रति वंशा। उग्रसेन अन्धक अवतंसा॥
कृतवर्मा, शतधन्वा भ्राता। भोज वंश भूषण विख्याता॥

प्रत्येक वंश के भिन्न भिन्न नायक थे। उग्रसेन, अंधक शाखा वालों में श्रेष्ठ थे। कृतवर्मा और शतधन्वा परस्पर भाई-भाई थे। दोनों भोजवंश के प्रसिद्ध भूषण थे।

वृष्णि-वंश वसुदेव सुजाना। अक्रूरहु, सात्यकि युयुधाना॥
सकल प्रतिस्पर्धी कुल-नायक। उग्रसेन यादव-अधिनायक॥

बुद्धिमान वसुदेव वृष्णि वंश में उत्पन्न हुए थे। अक्रूर, और सात्यकि भी, जिनका दूसरा नाम युयुधान था, उसी वंश में पैदा हुए थे। सभी कुलनायक एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी थे। उग्रसेन सभी

यादव कुलों के प्रधान नायक थे ।

प्रजा, वंश-हित नित उर धारे। बैठत राज-सभा मिलि सारे॥
प्रमुख सचिव उद्धव-मत पायी। प्रकटत स्वमत सर्व-सुखदाई॥

प्रजा और राजवंश दोनों का हित साधने के लिये, सभी नायक मिलकर राज-सभा में बैठते थे। प्रधान मंत्री बुद्धिमान उद्धव की सलाह सुन चुकने के पश्चात् सब नायक सबको सुख देने वाला अपना निर्णय प्रकट करते थे।

दोहा :—धारत निर्णय शीश, निज उग्रसेन नरनाथ।
राजतंत्र गणतंत्र-सुख, लहति प्रजा इक साथ ॥ १० ॥

नरेश उग्रसेन, उनके इस निर्णय को आदर से स्वीकार करते थे। इस प्रकार शूरसेन देश की प्रजा राजतंत्र और प्रजातंत्र दोनों प्रकार के शासन का सुख एक ही साथ अनुभव करती थी।

सुखी नरेश, सुखी सब देशा। कहहुँ विपति जस कीन्ह प्रवेशा॥
रही पवनरेखा पटरानी, । सती सुशील, रूप-गुण-खानी॥

राजा सुखी थे और उनका समस्त देश सुखी था। उस देश में किस प्रकार संकट का दौरदौरा हुआ, उसका वर्णन मैं आगे करता हूँ। पवन रेखा पटरानी थी, जो पतिव्रता, सुशील और रूप-गुण की खान थी।

दिवस एक वन-क्रीड़ा हेतू। गवनी सहचरि सखिन समेतू॥
लखि प्रमोदवन उर अनुरागा। रवितनया-तट स्यंदन त्यागा॥

एक दिन वह अपनी सहेलियों के साथ वन में विहार करने गई। प्रमोद-वन को देखकर उसके प्रति हृदय में प्रेम संचरित हो गया; इसलिये उसने यमुना के किनारे रथ को छोड़ दिया।

वीचि-विलास मंजु मन भावा। रेणु मनहुँ मणि-चूर्ण बिछावा॥
विहरत केलि-शैल, वन, बेली। रानिहिं छूटेउ संग सहेली॥

(यमुना की) लहरों की क्रीड़ा उसके मन को भा गई। उसकी रेत ऐसी लगती थी, मानों मणियों का चूर्ण बिछा हुआ हो। क्रीड़ा-पर्वत, वन और लताओं में विहार करते-करते रानी का अपनी सहेलियों से साथ छूट गया।

वाम नियति गति, तहँ तेहि काला। निकसेउ यातुधान विकराला॥
द्रुमिल रक्षपति विश्रुत वीरा। निरखि इन्दुमुखि मदन-अधीरा॥

भाग्य की टेढ़ी गति के कारण उस समय वहाँ एक भयंकर राक्षस निकल पड़ा। वह प्रसिद्ध वीर द्रुमिल महान राक्षस उस चंद्रमुखी को देखकर कामातुर हो गया।

दोहा :—उग्रसेन नृप रूप धरि, गवनेउ रानी पास।
समुझि ताहि निज पति सती, पूजी मन अभिलाष ॥ ११ ॥

वह उग्रसेन का रूप धारण कर रानी के पास गया। उस पतिव्रता ने उसे अपना पति जानकर उसकी मनोकामना पूरी की।

धरि तनु निज भाषेउ जब नामा। वपु विलोकि व्याकुल वर वामा॥
सजल विलोचन कम्पित देही। दग्ध-हृदय, नहिं सुधि बुधि तेही॥

उस राक्षस ने जब असली रूप धारण कर अपना नाम कहा तब उसके शरीर को देख कर वह सुन्दरी व्याकुल हो उठी। उसकी आँखें भर आईं, देह काँपने लगी, हृदय जलने लगा और उसे अपने देह की सुध-बुध न रही।

दशा विलोकि द्रुमिल समुझावा। निज बल वीर्य प्रताप बतावा॥
भयेउ विलीन त्यागि वन रानी। हिम-हत मनहुँ नलिनि कुंभिलानी॥

उसकी दशा को देखकर द्रुमिल ने उसे समझाया और अपने बल, शौर्य तथा प्रताप का उसके सामने वर्णन किया। वह रानी को वन में छोड़ कर अन्तर्धान हो गया। रानीकी ऐसी दशा हो गई, मानों पाले की मार से कमलिनी कुम्हला गई हो।

मिलीं बहुरि सब सखी सहेली। रानी विलखत लखी अकेली॥
वसन विशृंखल, नष्ट सिँगारा। अविरल बहति विलोचन धारा॥

(बिछुड़ी हुई) सब सखी-सहेलियाँ (रानी से) फिर मिल गईं और उन्होंने रानी को अकेली बिलखते देखा। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे, सिंगार-साज नष्ट-भ्रष्ट हो गया था; और उसकी आँखों से लगातार आँसू की धारा बह रही थी।

गयीं लिवाय सखी पुर माहीं। वन-रहस्य जानेउ कोउ नाहीं॥
रहेउ गर्भ, पूजे दश मासा। उपजत कंस जगत संत्रासा॥

सखियाँ उसे नगर में लिवा ले गईं। किसी ने भी 'वन की घटना' को नहीं जाना। उसे गर्भ रह गया और (धीरे धीरे) दश मास पूरे हो गए। बालक कंस के पैदा होते ही संसार में हाहाकार मच गया।

दोहा:— महि काँपी, वासर भये, सर्व निशा-व्यापार।
टूटे तारागण गगन, छायेउ घन अँधियार॥ १२॥

पृथ्वी काँप उठी, दिन को ही रात की सारी बातें होने लगीं। आकाश से तारे टूटने लगे और घना अंधकार छा गया।

देखे उग्रसेन उत्पाता। व्यापी हृदय भीति अज्ञाता॥
राज-ज्योतिषी नृपति हँकारे। करि गणना तिन वचन उचारे—

उग्रसेन ने जब ये उत्पात देखे, तब उनके हृदय में आप ही आप भय छा गया। राजा ने राज-ज्योतिषियों को बुलाया। उन्होंने गणना कर (ज्योतिष से हिसाब लगाकर) ये वचन कहे—

"जन्मेउ तनय विवेक-विहीना। राक्षस-वृत्ति, कुपंथ-प्रवीणा॥
कुल-कलंक, खल, कामी, कोही। पितु-त्रासक, गो-द्विज-हरि-द्रोही॥"

आपका यह पुत्र ऐसा पैदा हुआ है, जिसे (भले-बुरे का) ज्ञान नहीं रहेगा। इसका स्वभाव राक्षस जैसा होगा और यह बुरे मार्ग पर चलने में ही चतुर होगा। यह कुल-कलंकी, दुष्ट, कामी, क्रोधी, पिताको कष्ट देने वाला और गो, ब्राह्मण तथा परमात्मासे द्रोह करनेवाला होगा।

मृत्यु लिखी सुनि श्रीहरि-हाथा। व्यथा-विकल हत-मति नरनाथा॥
सहज सनेह त्यागि नहिं जायी। पालेउ बाल भुआल लोभायी॥

जब राजा ने (ज्योतिषियों से) यह सुना कि इसकी मृत्यु भगवान के हाथों लिखी है, तब हतबुद्धि

होकर वे दुःख से व्याकुल हो उठे। पुत्र के लिए पिताके सहज स्नेह को राजा छोड़ न सके। अंतः उन्होंने बालक को प्रेम के वश होकर पाला।

शैशव ते सत संगति राखा। नहिं सद्वाक्य जो गुरु नहिं भाखा॥
विफल प्रयास भये सब तैसे। शंख-निनाद बधिर ढिग जैसे॥

उसे बचपन से ही अच्छी संगति में रखा। गुरु ने उसे सारे सदुपदेश सुना डाले, कोई बाकी न बचा, परन्तु उसे संस्कारी बनाने के सभी उपाय उसी प्रकार व्यर्थ हो गए, जिस प्रकार बहरे के पास शंख की ध्वनि व्यर्थ हो जाती है। (कंस के मन पर सदुपदेशों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।)

दोहा :—बाढ़ेउ जस जस कंस खल, भयेउ वीर बलवान।
बाढ़ी राक्षस-वृत्ति तस, असत, अनय, अज्ञान॥ १३॥

जैसे जैसे दुष्ट कंस बड़ा होता गया, वैसे वैसे वह वीर और बलवान बनता गया, साथ ही उसकी असत्य, अन्याय और अज्ञान से भरी हुई राक्षसी प्रवृत्ति भी बढ़ती गयी।

पुरजन-शिशु दुर्मति जहँ पावहि। गिरि-गह्वरन माहिं धरि आवहि॥
शिलाखंड पुनि रोपि दुआरे। बाल असंख्य कंस संहारे॥

वह कुबुद्धि कंस नगरके बालकों को ज्योंही पकड़ पाता, उन्हें पहाड़ों की कंदराओंमें रख आता। और फिर उनके द्वार पर शिलाखंड रख देता। इस प्रकार कंस ने अनगिनती बालकों का संहार कर डाला।

अग्निकांड रचि अन्य नसाये। खेलत जमुना विपुल बहाये॥
पुरजन लखि लखि करहिं विलापा। कंस-त्रास दिन प्रति पुर व्यापा॥

उसने कई बालक अग्नि में जला दिए और कई खेलते हुए बच्चों को यमुना के जल-प्रवाह में बहा दिया। कंस के अत्याचार नगर में प्रतिदिन बढ़ते देखकर नगरवासी विलाप करते थे।

जाहिं जनेश-भवन जन धायी। "पाहि! पाहि!"—कहि करहिं दोहाई॥
भूपति सकत सुतहिं नहिं रोकी। सकत न प्रजा विलाप विलोकी॥

जनता दौड़ कर नरेश के महल में जाती और 'रक्षा करो, रक्षा करो' की पुकार मचाती थी। राजा अपने पुत्र को रोक नहीं सकते थे (उस पर नियंत्रण नहीं रख सकते थे) और साथ ही प्रजा के विलाप को भी देख नहीं सकते थे।

उद्धव, यादव-नायक सारे। नृप सम अन्तर्दग्ध दुखारे॥
त्रस्त दिवस निशि करत विचारा। केहि विधि होय प्रजा उद्धारा॥

उद्धव और यादवों के सभी मुखिया राजा के समान ही भीतर ही भीतर दुःख से जले जाते थे। रात-दिन खेद से यही विचार करते थे कि प्रजा का कंस से किस प्रकार उद्धार हो ?

दोहा :—यहि विधि इत मथुरा पुरी, व्याप्त कंस-कृत भीति।
जरासंध मगधेश उत, चहत लेहुँ व्रज जीति॥ १४॥

इस प्रकार यहाँ मथुरा-पुरी में कंस के कृत्यों से भय छाया हुआ था और वहाँ मगध-नरेश जरासंध चाहता था कि व्रज जीत लूँ।

मगध-नाथ भारत सम्राटा। आयुध अगणित सैन्य विराटा॥
सेवत अमित शूर सामंता। विभव असीम प्रभाव अनंता॥

वह मगध का स्वामी भारत का सम्राट था। उसके पास अनेक शस्त्र थे और उसकी सेना भी

विशाल थी। असंख्य योद्धा और सामंत (सरदार) उसकी सेवा करते थे; उसके पास अपार धन था और उसका प्रभाव भी अपरिमित था।

कीन्हे विजित चतुर्दिक देशा। भयेउ *चक्रवर्ती मगधेशा॥
धर्म मोक्ष हित ज्ञान विहीना। काम अर्थ महँ परम प्रवीणा॥

मगध-नरेश ने चारों दिशाओं के देशों पर विजय प्राप्त कर 'चक्रवर्ती' – पद प्राप्त किया था। धर्म और मोक्ष के लिए वह ज्ञान-शून्य था अर्थात् धर्म और मोक्ष के साधनों में उसकी गति न थी, परन्तु काम (भोग-विलास) और अर्थ-साधन (धन बटोरने) में वह अत्यन्त निपुण था।

० चार्वाकहिं निज गुरु करि मानत। वेद-विरोधिन नृप सन्मानत॥
असुर नीति, असुरन व्यवहारा। प्रिय तेहि सकल असुर आचारा॥

वह चार्वाक को अपना गुरू मानता और वेद-विरोधियों का आदर करता था। आसुरी उसकी नीति थी और असुरों ही सा उसका व्यवहार था। उसे सब आसुरी आचार प्रिय थे।

जहँ जहँ विजय लहत ×मगनाथा। गवनति आसुरि संस्कृति साथा॥
सुनतहि व्रज-अशांति-संदेशू। पठयेउ राजदूत मगधेशू॥

जहाँ जहाँ मगध-नरेश विजय-लाभ करता, वहाँ वहाँ आसुरी संस्कृति भी पहुँच जाती थी। व्रज में अशान्ति का संदेश सुनकर उसने अपना राजदूत वहाँ भी भेजा।

दोहा:—गुप्तचरहु पठये विपुल, पहुँचे मधुपुर माहिं।
छद्म वेष विचरत फिरत, बचेउ गेह कोउ नाहिं॥ १५॥

उसने बहुत से भेदिए भी भेजे, जो मथुरा पहुँच गए। वे वेष बदल कर घूमते-फिरते थे। उनसे नगर का कोई घर नहीं बचा, अर्थात् उन्होंने घर-घर का भेद ले लिया।

दूत प्रकट कीन्हेउ निज काजा। मिलेउ सभा यदुजन यदुराजा॥
लहि अनुमति, करि विनय अशेषू। कहेउ दूत निज नाथ सँदेशू—

दूत ने प्रकट रूप से सभा में यादवों और उनके राजा से मिल कर अपना उद्देश्य प्रकट किया। उनसे आज्ञा प्राप्त कर अत्यन्त नम्रता के साथ उसने अपने स्वामी का यह सन्देश कहा—

"भरतखंड यह भूमि विशाला। अगणित राज्य, अनेक भुआला॥
युद्धत नित महि-शांति नसावत। क्लेश अशेष प्रजाजन पावत॥

"इस विशाल भूमि भरतखंड में असंख्य राज्य और अनेक राजा हैं। वे नित्य युद्ध कर पृथ्वी की शांति भंग करते रहते हैं, जिससे प्रजा बहुत कष्ट पाती है।

करन हेतु सुखशांति प्रसारा। हरन हेतु जन-कष्ट अपारा॥
ग्रथन हेतु विच्छिन्न समाजू। इच्छत एकछत्र मैं राजू॥

अतएव पृथ्वी पर सुख और शांति फैलाने, जनता के अपार दुःखों को दूर करने और बिखरे हुए

* समुद्र के छोर तक की भूमि पर राज्य करनेवाला चक्रवर्ती या सार्वभौम राजा कहलाता था।

० चार्वाक– 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्' (कर्ज करके भी घी पीने) के देह-भोग-सिद्धान्त को मानने वाले नास्तिक चार्वाक कहलाते थे।

× मग नामक असुर-जाति मगध में बसती थी। इसी से मगध का राजा मगराज भी कहलाता था। दक्षिण बिहार का प्रदेश 'मगध' कहलाता था।

समाज को संगठित करने के लिए मैं 'एकछत्र राज्य' की स्थापना करना चाहता हूँ।

कीन्हेउँ राज-चक्र निर्माणा । तासु सदस्य आजु नृप नाना ॥
जे निर्बुद्धि, युद्ध-अभिलाषी । हत रण अथवा कारावासी ॥

इसलिये मैंने एक 'राज-चक्र'का निर्माण किया है,जिसके आज अनेक राजा सदस्य हैं। जिन मूर्खों ने युद्ध की कामना की, वे या तो युद्ध में मारे गए या कारावासी बन गए।

दोहा :—यदुवंशी नृप-वृन्द महँ, अग्रगण्य तुम राव ।
राज-चक्र स्वीकारि मम, प्रकटहु निज सद्भाव ॥" १६ ॥

हे राजा ! यदुवंशी राजाओं में आप अगुआ हैं। अतः मेरे 'राज-चक्र' को स्वीकार कर अपनी सद्भावना प्रकट कीजिए।"

मधु-मिश्रित विष असुर-सँदेशा । सुनि यदुवंशिन रोष अशेषा ॥
समिति-नृपति-मत उद्धव चीन्हा । उत्तर समुचित दूतहिं दीन्हा--

असुर-नरेश के शहद मिले हुए विष के समान सन्देश को सुन कर यदुवंशियों के क्रोध का पारावार न रहा। उद्धव ने सभा और राजा के विचारोंको ताड़ कर दूत को उचित उत्तर दिया—

" प्रेषेउ मगध-नरेश सँदेशू । रहित रहस्य, प्रकट उद्देशू ॥
वाक्य-जाल-निर्मित नृप-वाणी । अर्थ-हीन परमार्थ-कहानी ॥

" मगध-नरेश ने जो सन्देश भेजा है, उसमें कुछ भी लुका-छिपा नहीं है, उसका उद्देश्य स्पष्ट है। राजा की वाणी में वाक्यों का जाल (शब्दाडम्बर) है। उसमें जो परमार्थ की चर्चा की गई है, उसका कोई अर्थ नहीं है।

व्यर्थ सर्व यह वाक्य-विलासा । बसी हृदय व्रज-जय-अभिलाषा ॥
जरासंध सँग सहज न रारी । जानत हम, जानति महि सारी ॥

उनकी यह सब (सुन्दर) वाक्य क्रीड़ा (लच्छेदार बातें) व्यर्थ है। सच तो यह है कि उनके मनमें ब्रज पर विजय प्राप्त करनेकी इच्छा ने घर कर लिया है। जरासंध के साथ शत्रुता मोल लेना आसान नहीं है, इसे हम जानते हैं और सारा संसार भी जानता है।

यह यदुकुलहु निबल पै नाहीं । जानहु उत्तर इतनेहि माहीं ॥"
समझेउ मर्म दूत मतिमाना । लखि रण-वृत्ति कीन्ह प्रस्थाना ॥

परन्तु यह यदुकुल भी अशक्त नहीं है। इतने ही में हमारा उत्तर समझ लो।" बुद्धिमान दूत ने मंत्री के वचनों का मर्म समझ लिया। उसने यदुवंशियों की युद्ध करने की इच्छा को जानकर वहाँ से प्रस्थान किया।

दोहा :—रण-वार्ता परिव्याप्त पुर, कहुँ भय कतहुँ उमंग ।
कंस-हृदय उल्लास बहु, सुनि सुनि समर-प्रसंग ॥ १७ ॥

युद्ध का समाचार नगर भर में फैल गया, जिससे कहीं भय और कहीं उत्साह छा गया। युद्ध के संवाद को सुन-सुन कर कंस का हृदय अत्यंत हर्ष से भर गया।

पितु समीप गवनेउ अभिमानी । सेनापति पद हित हठ ठानी ॥
उग्र नृपहिं अंगज-मत भावा । सोचत मन अस मंत्र दृढ़ावा—

वह अभिमानी कंस पिता के पास गया और उसने उनसे सेनापति का पद प्राप्त करने का

आग्रह किया। राजा उग्रसेन को अपने पुत्र की इच्छा प्रिय लगी। उन्होंने अपने मन में सोचकर इस प्रकार संतोष किया—

सकहि जो यह मगपतिहिं हरायी। वृद्धि वंश-यश, फल सुखदाई॥
मरहि जो रणमहि प्रजा उबारा। उभय भाँति कल्याण हमारा॥

यदि यह मगध-नरेश को हरा देगा तो कुल की कीर्ति बढ़ेगी और उसका परिणाम सुख देनेवाला होगा और यदि यह रण में मर गया तो प्रजा का कष्टों से उद्धार होगा। इस प्रकार दोनों प्रकार से हमारा कल्याण ही है।

सके न उद्धव नृप-मत मानी। समुझायेउ नय नीति बखानी—
"मगध-विजय जो नृप! मन माहीं। सेनप-योग्य कंस यह नाहीं॥

परन्तु उद्धव राजा के विचार से सहमत न हो सके। अतः उन्होंने न्याय और नीति द्वारा उन्हें समझाया—"हे नरेश! यदि आपके मन में मगध पर विजय-लाभ की अभिलाषा है तो यह कंस सेनापति के योग्य नहीं है।

कंस-नाश जो उर-उद्देशा। पठवब उचित न यहि अरि-देशा॥
साधन-साध्य-विवेक विहायी। किये कार्य नहिं भूप भलाई॥"

और यदि कंस के नाश का आपके मन में संकल्प है तो भी उसे शत्रु के देश में भेजना उचित नहीं है। हे राजा! साधन और साध्य का विचार छोड़ कर कार्य करने से हित नहीं होता।"

दोहा:—भावी भूपति मन वसी, कीन्हे वचन न कान।
पितु-निदेश लहि, सैन्य सजि, कीन्ह कंस प्रस्थान॥ १८॥

राजाके मन पर होनहार ने अधिकार जमा लिया था। अतः उन्होंने मंत्रीके वचनों पर ध्यान नहीं दिया। इधर कंस ने पिता की आज्ञा प्राप्त की और सेना सजाकर प्रस्थान किया।

चली वाहिनी जस चतुरंगा। गुप्तचरहु गवने तेहि संगा॥
कंस-स्वभाव, शौर्य, गुण-दोषा। तेहि प्रति वंश-प्रजाजन-रोषा॥

ज्योंही चतुरंगिणी (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे सज्जित) सेना चली, उसके साथ भेदिए भी गए। भेदियोंने जा कर कंस के स्वभाव, शौर्य, गुण और दोष मगध-नरेश को सुना दिये और यह भी बतलाया कि यदुवंशियों एवं प्रजा के मन में उसके प्रति कितना तीव्र क्रोध-भाव है।

सब सुत-पितु-विरोध, कटुताई। चरन मगेशहिं जाय सुनायी॥
इत वाहिनि गिरिव्रज नियरानी। उत मन युक्ति मगधपति ठानी॥

पुत्र-पिता में परस्पर विरोध और कटुता का सम्बन्ध भी उन्होंने सब कह सुनाया। इधर सेना गिरिव्रज के निकट पहुँची और उधर जरासंध ने मन में एक युक्ति सोची।

कंस पास निज दूत पठावा। कहि मधु बैन भवन लै आवा॥
कीन्हेउ अवनिनाथ सत्कारा। कहि—"रण वृथा सैन्य संहारा॥"

कंसके पास उसने अपने दूत को भेजा। वह मीठे वचन बोलकर उसे राज-महल में ले आया।

राजा ने उसका सत्कार किया और कहा कि–"युद्ध में व्यर्थ ही सेना का संहार होगा।"

कंस-शौर्य, साहस, यश गावा। कीन्हेउ गदा-युद्ध प्रस्तावा॥
स्वीकारेउ कंसहु दुर्धर्षा। भयेउ घरिक भीषण संघर्षा॥

उसने कंस के शौर्य, साहस और यश का बखान कर उससे गदा-युद्धका प्रस्ताव किया। दुर्जय कंस ने भी उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। फिर दोनों में कुछ समय तक भयंकर युद्ध हुआ।

दोहा :— चीन्हि तरुण-कौशल बलहिं, नीति निपुण मगधेश।
ब्याहीं तेहिं निज द्वय सुता, कहि कहि नृप ! मथुरेश॥ १६॥

नीति में चतुर मगध-नरेश ने नवयुवक कंस के कौशल और बल को जानकर उसे बार बार 'नृप!' और 'मथुरेश!' कहकर अपनी दो कन्यायें ब्याह दीं।

शोधी लग्न, विपुल उत्साहा। गवने गिरिव्रज बहु नरनाहा—
भौमासुर सुर-नर-भयकारी। कन्या-हरण-व्यसन जेहि भारी॥

विवाह की लग्न शोधी गई। उस अवसर पर अत्यन्त उत्साह के साथ बहुत से नरेश गिरिव्रज पहुँचे। उनमें देवता और मनुष्योंको भयभीत करने वाला भौमासुर भी था, जिसे कन्या-हरण का बड़ा व्यसन था।

म्लेच्छ, विदेशी, सीमा-वासी। कालयवन नित भारत-त्रासी॥
शाल्व विमान-बली, छलकारी। बाण असुर अविजित, अविचारी॥

भारत की सीमा पर रहनेवाला विदेशी म्लेच्छ कालयवन जो नित्य भारतको कष्ट देता था, विमान-विद्या में बलवान छली शाल्व, अविचारी अविजेय बाणासुर,

चेदि-नरेन्द्र कुटिल शिशुपाला। दंतवक्र कारूप-भुआला॥
आर्य अनार्य अन्य बहु राजा। जुरेउ पुरी जनु पाप-समाजा॥

चेदि देश का राजा दुष्ट शिशुपाल, कारुष देशका राजा दंतवक्र आदि अन्य बहुत से आर्य-अनार्य नरेश वहाँ थे। उन्हें देख कर ऐसा लगता था, मानों उस पुरीमें पाप का समाज ही जुड़ गया हो।

मिलि सब खलन कंस सन्माना। सिखये अघ-शीलहिं अघ नाना॥
जब लगि रहेउ विवाह-उछाहा। कंस कलुष-अंबुधि अवगाहा॥

सब दुष्टों ने मिलकर कंस का सम्मान किया और उस पापीको अनेक प्रकार के और पाप-कर्म सिखाये। जब तक विवाहोत्सव रहा, कंस पाप-कर्म के समुद्र में मग्न रहा।

दोहा :– दुहितन सँग दीन्ही बिदा, कंसहिं मुदित मगेश।
दीन्हें प्रचुर दहेज सँग, पाप-पूर्ण उपदेश॥ २०॥

मगध-नरेश ने प्रसन्न होकर कंस को अपनी कन्याओं के सहित विदा किया। उसने बहुतसे दहेज के साथ ही उसे पाप-पूर्ण उपदेश भी दिए (मानों वे भी दहेज के ही एक अंग हों।)

पहुँचेउ मथुरा कंस बहोरी। राज्य-लालसा उर नहिं थोरी॥
रचि कुचक्र पितु बन्दी कीन्हा। शासन-सूत्र हाथ निज लीन्हा॥

कंस लौटकर मथुरा पहुँचा, उसके हृदय में राज्य की लालसा बढ़ गई। उसने षड़यन्त्र

रचकर अपने पिता को बन्दी बना दिया और शासन के सूत्र अपने हाथ में ले लिए।

सेनप, सचिव, राजजन जेते। यदुवंशी निर्वासे तेते॥
दानव असुर यवन अपनाये। प्रमुख राज-पद तिन सब पाये॥

उसने जितने यदुवंशी सेनापति, मंत्री और सरकारी कर्मचारी थे, उन सबको निकाल दिया और दानव, राक्षस और यवनों को अपनाया। उन सभी ने मुख्य राज्य-पदों को प्राप्त किया।

वाहिनि म्लेच्छ नियोजि बढ़ायी। प्रलय-पयोनिधि जनु भयदाई॥
राज-भवन नित बढ़ेउ विलासा। चढ़ेउ राज-कर प्रजा हताशा॥

उसने म्लेच्छों की सेना का संगठन कर उसकी इतनी वृद्धि की कि जिससे ऐसा प्रतीत होता था, मानों डरावना प्रलय-सागर ही उमड़ आया हो। राज-भवन में विलास दिनोंदिन बढ़ने लगा। राजकर की वृद्धि से प्रजा निराश हो गई।

लखहिं राजजन जहँ धनवाना। हरहिं धान्य धन करि छल नाना॥
निर्धन हित न्यायालय नाहीं। न्यायहु पराय मधुपुरी माहीं॥

राजकर्मचारी जहाँ धनवानों को देखते, वहाँ अनेक छल-कपट से उनका धन-धान्य हर लेते थे। न्यायालय (अदालतें) निर्धनों के लिए नहीं थे। मथुरा में न्याय भी बिकता था।

दोहा:—कंस धनी, अनुचर धनी, भोगहिं भोग विशाल।
क्षुधित, अकिंचन ग्राम जन, विचरत जनु कंकाल॥ २१॥

कंस धनी था; उसके सेवक भी धनी थे। ग्राम-जनता भूखी और निर्धन थी। वह कंकाल (हड्डी का ढाँचा) बनी हुई विचरती थी।

शेष स्वार्थ, परमार्थ विनाशा। धर्म रहेउ केवल उपहासा॥
राज-पुरुष विप्रहिं कहुँ पावहिं। व्यंग करहिं बहु त्रास दिखावहिं॥

—कंस के राज्य में स्वार्थ ही रह गया था-परमार्थ नष्ट हो गया था। धर्म केवल उपहास करने के लिए बचा था। राज-कर्मचारी जहाँ कहीं ब्राह्मण को पाते, उसकी हँसी करते और उसे बड़ा कष्ट देते थे।

नासहिं विष्णु भक्त नर पायी। भयवश हरिजन बसहिं दुरायी॥
शास्त्र-चिंतवन कहुँ नहिं होई। वेद पढ़हि ऐसहु नहिं कोई॥

वे विष्णुभक्तों को पा कर मार डालते थे। इसलिये डर के मारे वे भगवत्भक्त छिपे रहते थे। राज्यभर में कहीं भी शास्त्रों का अध्ययन-मनन नहीं होता था। वहाँ ऐसा कोई भी नहीं था, जो वेद पढ़ता हो।

गुरुकुल जहाँ वेद-ध्वनि छायी। ध्वंस मात्र अब परत लखायी॥
पहिले रही जहाँ मख-शाला। करहिं तहाँ अब शब्द शृगाला॥

वे गुरुकुल जहाँ वेद-पाठ की ध्वनि छाई रहती थी, अब खँडहर के रूप में ही दिखाई देते। पहिले जहाँ यज्ञ-शाला थी, वहां अब सियार चिल्लाते।

जहँ हरि मंदिर प्रथम सोहाये। तहँ उलूकन वास बनाये॥
बाढ़ेउ निशि दिन पाप कलापा। भयेउ मनुज जीवन अभिशापा॥

जहाँ पहिले हरि-मंदिर सुशोभित थे, वहाँ अब उल्लुओं ने वास-स्थान बना लिये।

दिन रात वहाँ पापका समूह बढ़ता जाता था और मनुष्य का जीवन अभिशापके समान हो गया था ।

दोहा :— राज-भक्ति हरि-भक्ति भइ, राजेच्छा जन-धर्म ।
राज-वचन श्रुति-ऋषि-गिरा, राजाज्ञा जन-कर्म ॥ २२ ॥

वहाँ राजभक्ति ही हरिभक्ति हो गई, राज्य की इच्छा का पालन ही जनता का धर्म हो गया, राजा का वचन ही वेद और ऋषियों की वाणी हो गई और राजाज्ञा ही जनता का कर्त्तव्य हो गया ।

सोरठा :— गुरु जेहि कर यवनेश, असुर ससुर, राक्षस पिता ।
बरनि को सकहि अशेष, पाप-कथा तेहि कंस कै ॥

यवनों का स्वामी जिसका गुरु हो, असुर जिसका ससुर हो, राक्षस जिसका पिता हो, उस कंस की अनन्त पाप-कथा का वर्णन कौन कर सकता है ?

सहि न सकी जब भारत माता। सुमिरे श्रीहरि चिर जन-त्राता॥
भयेउ पयोनिधि शब्द सोहावा। काँपे असुर, सुरन सुख पावा—

जब भारतमाता पापाचारों को न सह सकी तो उसने सदा लोक-रक्षा करने वाले विष्णु भगवान का स्मरण किया । समुद्र में सुख देने वाला शब्द हुआ, जिसे सुन कर असुर काँप उठे और देवताओं ने सुख प्राप्त किया—

" अवगत मोहिं महि-क्लेश अनंता। खल-पद-दलित धर्म श्रुति संता॥
बंदी-भवन मनुजता आजू। जल थल व्योम व्याप्त पशु-राजू॥

" मुझे पृथ्वी के अनन्त कष्टों का ज्ञान है । वहाँ धर्म, वेद और संत दुष्टों द्वारा पद-दलित हो रहे हैं । आज मानवता कारागृहों में बंद है । जल, थल और आकाश में पशुता का राज्य छाया हुआ है—

हरिहौं वेगि धर्म-महि-भारा । लेहौं पूर्ण कला अवतारा॥
तजहु न धर्म, आत्म-सम्माना । बिनु घन तिमिर न स्वर्ण बिहाना !"

मैं पूर्ण कला का अवतार धारण कर धर्म-भूमि भारत के भार को दूर करुँगा । अपने धर्म और आत्मसम्मान को मत छोड़ो, घने अंधकार के बिना सोने के समान तेजस्वी प्रभात का उदय नहीं होता ।"

मुदित मातु सुनि स्वर वरदानी । जनु सरसिज अरुणागम जानी॥
उत हरि प्रथमहि अमर पठाए। यादव गोप देह धरि आये॥

भारतमाता इस वरदान के स्वर को सुन कर प्रसन्न हो गईं । उनके मन की वह दशा हो गई, जो सूर्योदय को निकट जान कर कमल की होती है । वहाँ हरि ने पहिले ही देवताओं को पृथ्वी पर भेज दिया, जो यदुवंशी और गोपों का शरीर धारण कर आ गए ।

दोहा :— धरि गोपिन वपु श्रुति-ऋचा, भयीं सर्व साकार ।
लीन्ह रोहिणी-गर्भ पुनि, शेष आपु अवतार ॥ २३ ॥

वेदों की समस्त ऋचायें गोपियों का शरीर धारण कर मानों साकार बन गईं और

शेषनाग ने स्वयं रोहिणी के गर्भ में अवतार लिया ।

सोरठा :— निज निज थलन विराजि, सकल प्रतीक्षित पंथ प्रभु ।
निवसति तारक-राजि , शशधर-श्री हित जिमि दिवस ॥

अपने अपने स्थान पर पहुँच कर सभी भगवान का उसी प्रकार मार्ग जोहने लगे , जिस प्रकार तारे दिन में आकाश में बस कर चन्द्रमा की उदय की शोभा की प्रतीक्षा करते हैं ।

जन्मे जेहि विधि हरि व्रज आयी । सो प्रसंग सब कहहुँ सुनायी ॥
अग्रज उग्रसेन कर देवक । धर्म निरत हरि भक्तन सेवक ॥

हरि ने जिस प्रकार व्रज में आकर जन्म लिया , वह सब प्रसंग मैं कह कर सुनाता हूं । उग्रसेन का जेठा भाई देवक था । वह धर्म में लीन रहता और हरि-भक्तों की सेवा करता था ।

गयेउ स्वर्ग निज सुता विहायी । नाम देवकी दिव्य लुनाई ॥
शील सनेह धाम अभिरामा । भयी विवाह योग्य वर वामा ॥

वह अपनी कन्या को छोड़ कर स्वर्गवासी हो गया । उस कन्या का नाम देवकी था । उसका अलौकिक सौन्दर्य था । (समय पाकर) वह शील और स्नेह की धाम सुन्दरी विवाह के योग्य हुई ।

लखि कीन्हेउ मन कंस विचारा । मम प्रतिपक्षी यदुकुल सारा ॥
उचित विरोध न बहुजन संगा । लघु पिपीलिकहु वधहिं भुजंगा ॥

उसे देखकर कंस ने मन में यह विचार किया कि सारा यदुकुल मेरा विरोधी है । बहुतों के साथ विरोध उचित नहीं है; क्योंकि छोटी चीटियाँ भी सर्प को मार डालती हैं ।

व्याहि स्वकुल यह भगिनि किशोरी । यदुजन कछुक सकत मैं फोरी ॥
सात्यकि, कृतवर्मा अरु उद्धव । अरि कटि-बद्ध प्रीति नहीं संभव ॥

अपनी इस सयानी बहिन को अपने वंश में विवाह कर मैं कुछ यदुजनों को फोड़ सकूंगा । सात्यकि, कृतवर्मा और उद्धव तो शत्रुता पर कमर कसे हुए हैं; अतः इनसे तो प्रेम संभव नहीं है ।

दोहा :— पै वसुदेव उदार-मति , रूढ़ न उर प्रतिशोध ।
भगिनि नेह-बंधन बँधत , तजिहैं वैर विरोध ॥ २४ ॥

परन्तु वसुदेव उदारमना हैं , उनके मन में बदले की भावना जड़ नहीं जमा पाई है । वे बहिन के प्रेम-बन्धन में बँधते ही शत्रुता और विरोध त्याग देंगे ।

अस गुनि पूर्व वैर विसरावा । अक्रूरहिं खल भवन बोलावा ॥
मिलेउ मनहुँ खोयी निधि पायी । बोलेउ कुटिल पूछि कुशलाई —

ऐसा सोच कर उस दुष्ट ने पिछली शत्रुता भुला दी और अक्रूर को भवन में बुलाया । वह (कंस) उससे ऐसा मिला , जैसे उसे कोई खोया हुआ धन प्राप्त हो गया हो । कुशल समाचार पूछने के बाद वह कुटिल इस प्रकार बोला,—

"वंश समस्त तजी नय नीती । तुमहि एक प्रतिपालत प्रीती ॥
मोरेहु हृदय प्रतीति पुरानी । लेत बोलाय हितू निज जानी ॥"

"वंश में सब ने न्याय-नीति को त्याग दिया है । तुम्हीं एक हो , जो मुझ से प्रेम पालते हो । मेरे हृदय में भी तुम्हारे प्रति पुराना विश्वास है । इसी से तुम्हें अपना शुभचिन्तक जान कर बुला

लिया करता हूँ।"

यहि विधि करि अक्रूर प्रशंसा। कहि वसुदेवहिं कुल अवतंसा॥
निज मंतव्य नरेश जनावा। प्रमुदित बभ्रु पुलक तनु छावा॥

इस तरह अक्रूर की प्रशंसा की और वसुदेव को कुल में श्रेष्ठ बतला कर उसने अपने विचार को प्रकट किया। यह सुन कर अक्रूर का शरीर हर्ष से पुलकित हो गया।

क्षितिपति उर परिवर्तित जानी। गे वसुदेव-गेह सुख मानी॥
सुनि संदेश शोरि मन सोचत। डसत सर्प फण सतत सँकोचत॥

राजा के हृदय में परिवर्तन जान कर वे सुखी हो वसुदेव के घर गए। सन्देश सुन कर वसुदेव मन में सोचने लगे कि सर्प काटते समय हमेशा फन को सिकोड़ लेता है।

दोहा :—कंस-कुटिलता क्रूरता, जागी मानस माँहिं॥
उग्रसेन नृप-गति सुमिरि, निकसेउ मुखते—'नाहिं'॥ २५॥

उनके मन में कंस की कुटिलता और क्रूरता का स्मरण हो आया। उग्रसेन राजा की जो दशा उसने की थी, उसको याद कर उनके मुख से "नहीं" निकल गया अर्थात् उन्होंने कंस के विवाह के प्रस्ताव को मंजूर नहीं किया।

सुनि भाषी सुफलक-सुत वाणी—"सुमति तात, कस नीति भुलानी?
बद्ध-मूल अब कंस-सिँहासन। बल ते पलटि सकत नहिं शासन॥

वसुदेव का वचन सुन कर अक्रूर ने कहा,—"हे बुद्धिमान बन्धु! तुम नीति को कैसे भूल गए? इस समय कंस सिंहासन पर मजबूती से जम गया है! अतएव हम लोग बल से तो उसके शासन को पलट नहीं सकते।

छल ते प्रथम लहेउ तेहि राजू। छल ते सकत हमहु करि काजू॥
छलिन संग जे छल नहिं करहीं। दलित परास्त मूढ़ ते मरहीं॥

पहिले उसने ही छल से राज्य लिया है। अतः हम भी छल से ही अपना कार्य साध सकते हैं। जो छलियों से छल नहीं करते, वे मूर्ख रौंदे जाते हैं और हार कर मर जाते हैं।

कंसहिं आजु जो हम अपनावहिं। लहि सानिध्य प्रतीति बढ़ावहिं॥
क्रम क्रम असुरन ते बिलगायी। अंत विनाशि सकत असहायी॥

आज जो हम कंस को अपना लें तो उसके निकट रह कर उसका अपने पर विश्वास भी बढ़ा सकेंगे। तब धीरे धीरे उसे असुरों से अलग कर के अंत में असहाय बना कर हम उसका नाश कर सकते हैं।

विनवहुँ सकल स्वार्थ भय त्यागी। वरहु देवकिहिं यदुकुल लागी।"
मर्म वचन जब बभ्रु उचारा। लज्जित शूर-सुवन स्वीकारा॥

मैं तुम से प्रार्थना करता हूँ कि तुम सब स्वार्थ और भय छोड़ कर यदुकुल की भलाई के लिए देवकी से विवाह कर लो।" जब अक्रूर ने मर्म-वचन कहे तब शूर-पुत्र वसुदेव ने लज्जित हो उनके प्रस्ताव को मान लिया।

दोहा :—सोचत छल यहि विधि मनुज, एक एक के संग।
परम छली विधि ताहि क्षण, अन्यहि रचत प्रसंग॥ २६॥

मनुष्य जिस समय एक दूसरे के साथ छल का विचार करता है, उसी क्षण बड़ा छली विधाता

कुछ दूसरे ही जाल की रचना करता है (इसी से कहा है "हमरे मन कछु और है ; विधना के कछु और।")

मुदित महीप विवाह रचावा । यदुकुल सकल निमंत्रि बोलावा ॥
भेटत मिलत करत सत्कारा । जनु सौजन्य आपु साकारा ॥

राजा ने प्रसन्न होकर विवाह की तैयारी की ; सारे यदुवंशियों को निमंत्रण भेज कर बुलाया । वह सब से इस प्रकार भेंटता-मिलता था , मानों सज्जनता की साक्षात मूर्ति ही हो ।

अनुहरि श्रुति-विधि कीन्हे राजा । हर्ष सहित सब मंगल काजा ॥
लखि नृप-भवन आर्य-आचारा । सुनि श्रुति-मंत्र सुखी पुर सारा ॥

राजा ने प्रसन्नता से वेद की विधि के अनुसार सब मंगल-कार्य पूरे किए । राजभवन में आर्यों के आचारों (रीति-रस्मों) को होते देख और वेद-मंत्र सुन कर सारा नगर सुखी हो गया ।

भयेउ सहित उत्साह विवाहा । यौतुक अमित दीन्ह नरनाहा ॥
विदा मुहूर्त लखेउ नृप आवा । रत्न जटित रथ साजि मँगावा ॥

विवाह-कार्य उत्साह के साथ पूरा हो गया । राजा ने अपार दहेज दिया । विदा के मुहूर्त को आया देख कर राजा ने रत्न-जड़ित रथ सजा कर मँगाया ।

कीन्हेउ स्वसा शौरि अभिनंदन । हाँकेउ स्वकर अवनिपति स्यंदन ॥
लै भगिनिहिं जस चलेउ भुआला । भयी व्योम वाणी विकराला—

बहिन और शूर-पुत्र वसुदेव का सत्कार कर राजा ने स्वयं रथ हाँका । जैसे ही राजा बहिन को लेकर चला कि भयंकर आकाशवाणी हुई—

दोहा :— "कंस ! जाहि गुनि निज , भगिनि करत आजु सन्मान।
उपजहि तेहि के गर्भ ते, हन्ता तव बलवान ॥" २७

"हे कंस ! आज जिसे अपनी बहिन मान कर तू सम्मानित कर रहा है , उसी के गर्भ से तेरा मारने वाला बली पैदा होगा । "

सुनी कंस भीषण नभवाणी । कोपेउ निमिष माहिं अभिमानी ॥
स्यंदन त्यागि गहे कर केशा —"वधहुँ देवकी मिटहि अँदेसा ॥

अभिमानी कंस भयंकर आकाशवाणी सुनते ही पल भर में क्रोधित हो उठा और रथ छोड़कर उसने बहिन के केश पकड़ कर कहा—"मैं देवकीका वध करूंगा; जिससे संशय ही न रह जायगा ।

अबहिं उपाटहुँ विटप समूला । फिरि कहँ कुफल,कहाँ फिरि फूला ?
अस कहि क्रूर कृपाण सँभारा । कीन्ह देवकी हाहाकारा ॥

मैं इसी समय पेड़ को जड़ सहित उखाड़ डालूंगा फिर उसनें कहां से बुरे फूल और फल आयेंगे ?" ऐसा कहकर उस दुष्ट ने अपनी तलवार सँभाल ली (जिसे देखकर) देवकी हाहाकार कर उठी ।

गहि सप्रीति तब भूपति-हाथा । कह वसुदेव धरणि धरि माथा—
"पातक जदपि नाथ ! जग नाना । अबला-वध सम पाप न आना ॥

तब राजा कंसके हाथों को प्रेम के साथ पकड़ कर वसुदेवने पृथ्वी पर शिर रख कर कहा—"हे नाथ !

यद्यपि संसार में अनेक पाप हैं, तो भी स्त्री-वध के समान दूसरा (जघन्य) पाप और नहीं है।

तुम यदुवंश सुवंश-विभूषण। वधे वाम लागहि अति दूषण॥"
सुनि बोलेउ खल द्विगुणित क्रोधा—"मूर्ख! करसि कत व्यर्थ प्रबोधा!

आप उच्च यदुकुल के भूषण हैं। उसमें स्त्री का वध करने से बड़ा दोष लग जायगा।" वसुदेव के ये वचन सुनकर दुष्ट कंस दुगुने क्रोध के साथ बोला,—"मूर्ख! क्यों व्यर्थ उपदेश देता है ?

दोहा:—बरनत शास्त्र सुकर्म बहु, विविध धर्म-आख्यान।
तदपि आत्म-रक्षा सदृश, धर्म कर्म नहिं आन॥" २८

शास्त्र बहुतसे अच्छे कर्मों का वर्णन करते हैं और उनके साथ धर्म-कथाएं भी अनेक हैं, परन्तु मेरे मत से अपनी रक्षा के समान संसार में न कोई धर्म है, न कर्म।"

सुनि कुशब्द वसुदेव उदासा। तजी देवकिहु जीवन आशा॥
बिलखति वाम पतिहिं लपटानी। सहसा शौरि युक्ति मन ठानी॥

कंस के बुरे वचन सुनकर वसुदेव उदास हो गए और देवकी ने भी अपने जीवन की आशा छोड़ दी। वह पति से लिपट कर रोने लगी। इतने ही में शूर के पुत्र वसुदेव को एक उपाय सूझा।

छुवत न पयहु विनय ते दुर्जन। छल ते विषहु पियावत बुधजन॥
भाषेउ कंसहिं—"सुनहु नरेशा! को अस तुम्हहिं देय उपदेशा॥

दुष्ट आदमी प्रार्थना करने पर दूध को भी नहीं छूते, परन्तु बुद्धिमान उन्हें छलसे विष तक पिला देते हैं। वसुदेवने कंससे कहा,—"हे नरपति! सुनिये ऐसा कौन है,जो आपको उपदेश दे सके।

आजु निखिल भारत महि माहीं। शास्त्र-मर्म-विद् तुम सम नाहीं॥
करहु युक्ति कछु विनवत दासा। बचहि वाम, प्रभु-संकट नाशा॥

आज सारी भारत भूमिमें आपके समान शास्त्रका मर्म जानने वाला दूसरा कोई नहीं है। इसलिये सेवक की यही विनय है कि कुछ ऐसी युक्ति निकालिये कि जिससे एक स्त्री की रक्षा हो जाय और आपका संकट भी दूर हो जाय।

भयी जो भयद व्योम पथ वाणी। भगिनी तें न नाथ-हित-हानी॥
जीवन-दान देवकिहिं देहू। उपजहिं जबहिं सुवन तुम लेहू॥

जो डर पैदा करने वाली आकाशवाणी हुई है, उसमें बहिन से श्रीमानके अहित होन की बात नहीं पाई जाती। अतएव देवकी को जीवन-दान दीजिये और उसके जब जब पुत्र उत्पन्न हों,आप उन्हें ले लिया कीजिये।

दोहा:—बचिहै यहि विधि नाथ-यश, बचिहैं अबला-प्राण।
होइहै निष्फल नभ-गिरा, निष्फल दैव-विधान॥" २९॥

इस प्रकार श्रीमानके यशकी रक्षा होगी और स्त्री के प्राण भी बच जायेंगे तथा आकाश-वाणी एवं दैव-विधान भी निष्फल हो जायेंगे।"

भावी-वश जनु भूप अभागा। सुनत वचन कछु सोचन लागा॥
त्यागी असि, त्यागे कर केशा। बोलि अमात्यन दीन्ह निदेशा—

वह अभागा राजा मानों भावी के वश था, इसलिए वसुदेव के वचनों को सुन कर कुछ विचार करने लगा और फिर उसने तलवार फेंक दी, हाथ से देवकी के केश छोड़ दिए तथा मंत्रियोंको

बुलाकर यह आज्ञा दी—

"लै दंपति कारागृह डारहु । प्रहरी पटु दिशि-दिशि बैठारहु ॥
प्रकटहि गर्भ-चिह्न जब बाला । देहु सँदेश मोहिं तत्काला ॥

"इन पति-पत्नी को ले जाकर कारागृहमें डाल दो (बन्द कर दो) और चतुर पहरेदारों को हर दिशा में बैठाल दो । इस स्त्री के जब गर्भ के लक्षण प्रकट हों तब मुझे फौरन खबर देना ।

जन्मत ही बधिहौं अँगजाता । छलि न सकत मोहिं आपु बिधाता ॥"
भाषत वचन सगर्व कठोरा । पठये दंपति कारा ओरा ॥

मैं उसकी संतान का जन्मते ही वध कर डालूँगा । स्वयं ब्रह्मा भी मुझे छल नहीं सकता ।" उसने घमंड के साथ कठोर वचन कह कर दम्पती को कारागृह की ओर भेज दिया ।

भीर अपार जदपि थल माहीं । रोकि अनर्थ सकेउ कोउ नाहीं ॥
अभय कंस मगधेश सहारे । गवने गृह बिलपत जन सारे ॥

यद्यपि उस स्थान पर बेहद भीड़ थी, तो भी कोई इस अनर्थ को रोक न सका । कंस मगध-नरेश जरासंध के बल पर निडर बन गया था । अतः सब लोग बिलखते हुए अपने अपने घर लौट गए ।

दोहा :— व्याप्त भीति यदुजन-हृदय, लाग कंस कुल-काल ।
भागे तजि तजि मधुपुरी, इत उत बिकल बिहाल ॥ ३० ॥

यादवों के हृदय में डर छा गया । उन्हें कंस कुलके लिये काल के समान लगने लगा । वे विकल और बेहाल होकर मथुरा छोड़ छोड़ कर यहाँ-वहाँ भाग गए ।

गये न सुफलक-सुत प्रिय भाषी । रहे पुरी नृप-वृत्ति उपासी ॥
उद्धव, युयुधानहु, कृतवर्मा । तजेउ न नगर, तजेउ नहिं धर्मा ॥

मधुर भाषी अक्रूर नगर छोड़कर नहीं गये । वे वहीं राजा के रुख को देख देख कर रहने लगे । उद्धव, युयुधान और कृतवर्मा ने न नगर छोड़ा, न अपना धर्म ।

गवने शौरि-सदन तत्काला । व्याकुल लखी रोहिणी बाला ॥
पीत देह-लतिका कुँभिलाई । राहु-ग्रस्त जनु इन्दु-जुन्हाई ॥

वे तत्काल वसुदेव के घर गए । वहाँ उन्होंने देवी रोहिणी को व्याकुल दशा में देखा । उसकी लताके समान पीली देह कुम्हलाकर ऐसी लगती थी, मानों चन्द्रमाकी चाँदनी राहुसे ग्रस ली गई हो !

गर्भवती वसुदेव-पियारी । सींचति मही मोचि दृग वारी ॥
समुझि अनिश्चित कंस स्वभावा । उद्धव चाहत तियहिं बचावा ॥

वसुदेव की यह प्यारी गर्भवती स्त्री आँखों के जल से पृथ्वी को सींच रही थी, अर्थात् आँसू बहा रही थी । कंस के चंचल स्वभाव को समझ कर उद्धव उस स्त्री को बचाना चाहते थे ।

जानि नंद-वसुदेव-मिताई । दीन्ही गोकुल बाम पठायी ॥
नंद गोप राखी सन्मानी । मानी भगिनि सदृश नंदरानी ॥

उन्होंने नंद और वसुदेव की मित्रता जानकर उसे गोकुल भेज दिया । वहाँ गोप नंद ने उसे

आदर पूर्वक अपने गृह में निवास दिया और नंदरानी यशोदा ने भी उसे अपनी बहिन के समान माना।

दोहा :— काटति कंत-वियोग दुख, इत रोहिणि बिलखाय।
उत देवकि वसुदेव दोउ, बंदीगृह असहाय॥ ३१॥

इधर रोहिणी अपने पति के वियोग में दुःखी हो रो रो कर दिन काटती थी और उधर असहाय वसुदेव तथा देवकी दोनों कारागृह में बन्द थे।

लागत बंदी-भवन भयावन। मनहुँ नरक साक्षात अपावन॥
कोट विकट चारिहु दिशि घेरे। भय वश कोउ न आवत नेरे॥

कारागार ऐसा भयानक लगता था, मानों साक्षात अपवित्र नरक ही हो। चारों दिशाओं में विकट परकोटा घिरा हुआ था। डर के कारण कोई भी उसके पास न जाता था।

परसति व्योम उच्च प्राचीरा। निरखत धीरहु होत अधीरा॥
द्वार वज्रवत् लोह किँवारे। दिशि दिशि फिरत सजग रखवारे॥

ऊँचा परकोटा आकाश को छू रहा था, जिसकी ओर देखते ही धीरवान भी अधीर हो उठते थे। उसके द्वार वज्र के समान थे और किंवाड़े लोहे के बने थे। प्रत्येक दिशा में सावधान रक्षक चक्कर लगाते थे।

निवसत दंपति तजि सब आशा। व्यापत दिवस निशि उर नृप-त्रासा॥
जब देवकी प्रथम सुत जायेउ। सुनत सरोष कंस उठि धायेउ॥

उस बन्दीगृह में दम्पति-वसुदेव और देवकी—सब आशा छोड़कर रहते थे। उनके हृदय में दिन-रात राजा का भय-कष्ट छाया रहता था। देवकीके प्रथम पुत्र के उत्पन्न होनेकी वार्ता सुनते ही कंस क्रोधित होकर दौड़ पड़ा।

अनुनय विनय कीन्हि बहु माता। सुनी न एक कंस रिस-राता॥
हिय-धन छीनि जननि ते लीन्हा। निज कर क्रूर बाल वध कीन्हा॥

माता देवकी ने उससे अनेक प्रकार की प्रार्थनाएँ कीं, परन्तु क्रोध में चूर कंस ने उन पर तनिक भी कान नहीं दिया। उस निर्दयी ने माता से उसके हृदय-धन—शिशु—को छीन लिया और अपने हाथों उसका वध कर डाला।

दोहा :— निर्दय मुदित निरीह हनि, अविदित विधि-व्यापार॥
जानत व्याघ्र कि तेहि वधिक, दै अज करत प्रहार? ३२॥

वह निर्दयी कंस निरपराध शिशुओं को मारकर प्रसन्न होता था। उसे विधाता की लीला का ज्ञान ही न था। क्या शेर यह जानता है कि शिकारी उसे बकरा देकर उस पर चोट करना चाहता है?

दोहा :— यहि विधि सुत पै सुत वधे, जब नृशंस मथुरेश।
जननि-गर्भ प्रविशे स्वयं, वचन-बद्ध विश्वेश॥ ३३॥

इस प्रकार जब क्रूर मथुरा-नरेश कंस ने एकके वाद एक कई पुत्रोंका वध कर डाला, तब वचन-बद्ध भगवान स्वयं माता के गर्भ में आये।

प्रविशत तनु गुरु जगत-विधाता। भयी असह्य भार कृश माता॥
पीत कांति युत देह प्रकाशी। उषःकाल जनु शशि-निशि भासी॥

सृष्टि के बनाने वाले भगवान के शरीर में आते ही माता असह्य भार से दुर्बल हो गई, क्योंकि

उससे भार सहा नहीं गया। उसकी पीली कान्तिवाली देह ऐसी चमकने लगी, जैसे उषःकालमें चाँदनी रात शोभित होती है, अर्थात् पौ फटने पर पूर्व-दिशा पीली पड़ जाती है और चन्द्रमा की आभा भी। इसी प्रकार देवकी का गोरा शरीर पीला पड़ गया था।

सुमिरि सुमिरि निज शिशुन विनाशा। विलपति अंब, न उर उल्लासा॥
जानि हरिहु जननी दुख-भारा। स्वप्नन मिस सूचेउ अवतारा॥

माता अपने शिशुओं के नाश की बार बार याद कर विलाप करती थी। उसके हृदय में खुशी न थी। हरि ने भी माताके दुःख के भार को अनुभव कर सपनों के बहाने अपने अवतार की सूचना दी।

सोवत निशि निरखेउ महतारी। वामन दिव्य वेष मनहारी॥
धृत चक्रादिक वैष्णव लांछन। करत सतर्क गर्भ संरक्षण॥

माता ने रात को सोते समय मनोहर तेजस्वी वामन-रूप देखा। वह विष्णु के शंख, चक्र, गदा, पद्म-लक्षणों को धारण किए हुए था और सावधानी से गर्भ की रक्षा कर रहा था।

बहुरि विलोकेउ आपुहिं माता। खगपति-पृष्ठ गगन-पथ जाता॥
जागि प्रभात जननि बड़भागी। कहेउ स्वप्न स्वामिहिं अनुरागी॥

फिर माता ने उसे गरुड़ की पीठ पर चढ़कर स्वयं आकाश मार्ग से जाते हुए देखा। सबेरे जागने पर भाग्यशालिनी माता ने उस सपने को बड़े उत्साह के साथ अपने पति से कहा।

दोहा:—पुलकित सुनतहि शूर-सुत, कहत तियहिं सन्मानि—
"त्रेता थे ही स्वप्न शुभ, देखे दशरथ-रानि॥ ३४॥

शूर-पुत्र वसुदेव ने उन्हें सुनते ही प्रसन्न हो अपनी स्त्री को आदर दे कर कहा—"त्रेता युग में दशरथ की रानी ने भी ऐसे ही शुभ स्वप्न देखे थे।

सोरठा:—गर्भ माहिं यहिं बार, विष्णु-तेज श्रीराम सम।
आये जगदाधार, होइहै विफल न नभ-गिरा॥"

इस बार गर्भ में विष्णुके तेज श्रीरामके समान जगत्के स्वामी ही आये हुए हैं। आकाश-वाणी व्यर्थ नहीं जायगी।"

सुनि पति-वचन हृदय भरि आवा। आनँद-वारि विलोचन छावा॥
बीतेउ क्रम क्रम दोहद-त्रासा। पुष्ट सर्व अवयव तन भासा॥

पति के वचन सुन कर देवकीका हृदय (प्रसन्नता-से) भर गया और आँखों में भी आनन्द के आँसू छा गए। धीरे धीरे गर्भ के कष्ट दूर हो गए और सारे अङ्ग के पुष्ट हो जाने से देह भी कान्ति से चमकने लगी।

जीर्ण पत्र जनु लता विहायी। शोभित नव मनोज्ञ पुनि पायी॥
चहति दिवस निशि गर्भ दुरावा। घटा ओट चह चँद्र छुपावा॥

पुराने पत्तों को छोड़कर नए पत्तों को धारण करने वाली लता के समान वह सुन्दर लगने लगी। वह गर्भ को दिनरात इस प्रकार छिपाना चाहती थी, जिस प्रकार कोई बादलों की आड़ में चन्द्रमा

को छिपाना चाहता हो !

गयेउ वसन्त, ग्रीष्म ऋतु आयी। विगत ग्रीष्म, वर्षा नियरायी॥
मास भाद्रपद, पख अँधियारा। रोहिणी नखत, दिवस बुधवारा॥

वसन्त बीत गया, ग्रीष्म ऋतु आ गई और ग्रीष्म के बीतने पर वर्षा निकट आ गई। भाद्र-मास, कृष्ण पक्ष, रोहिणी नक्षत्र, दिन बुधवार

तिथि अष्टमी, समय अधराता। कृष्ण-जन्म जग-मंगल-दाता॥
गगन घटा गरजत घिरि आयी। धरणि बाल रोदन ध्वनि छायी॥

और तिथि अष्टमी को आधी रात के समय संसार भर का मंगल करने वाला कृष्ण-जन्म हुआ। आकाशमें बादलोंकी घटा गरज-तरजकर घिर आई और पृथ्वी पर बालकके जन्म लेते ही रोने की आवाज फैल गई।

दोहा:--तड़कि तड़कि उत नभ तड़ित, भरेउ अखण्ड प्रकाश।
इत महितल शिशु शशि वदन, कीन्हेउ निशि-तम नाश ॥३५॥

उधर आकाश को बिजली ने कड़क-कड़क कर अखण्ड प्रकाशसे भर दिया, और इधर पृथ्वीतल में शिशु के चन्द्र के समान मुख ने रात के अन्धकारका नाश कर दिया। (इस तरह पृथ्वी और आकाश में प्रकाश ही प्रकाश छा गया।)

सोरठा:—छायी ज्योति अपार, धरा गगन एकहि भये।
भयेउ कृष्ण अवतार, अखिल विश्व उद्धार हित॥

(भगवान की) अपार ज्योति के फैल जाने से पृथ्वी और आकाश एक हो गये। सारे विश्व के उद्धार के लिए कृष्णावतार हो गया।

देखी दंपति बालक शोभा। रूप अनूप प्राण मन लोभा॥
हृदय-कुमुद शशि-मुख लखि फूला। कंस नृशंस सुमिरि उर शूला॥

वसुदेव-देवकी ने बालक की शोभा देखी। उसके अनुपम रूप पर उनके प्राण और मन लुभा गए। उसके चन्द्रमा के समान मुखको देखकर दोनोंकी हृदय रूपी कुमुदिनी खिल उठी, परन्तु उसी समय दुष्ट कंस का स्मरण आते ही उनके हृदय में काँटा सा चुभ गया।

जनु मज्जत सुरसरि भव-तरणी। बोरेउ कोउ सहसा वैतरणी॥
जननि अधीर सवेग उसासू। झरझर झरे विलोचन आँसू॥

उस समय ऐसा प्रतीत हुआ, मानों संसार-सागर पार कराने वाली गंगा में स्नान करते समय ही उनको उठा कर किसी ने एकाएक वैतरणी नदी में डुबा दिया हो। माता अधीर हो उठी। उसकी साँस जोर जोर से चलने लगी और आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे।

छिन्न हृदय जनु मौक्तिक हारा। झरि मुक्ता-फल रहे अपारा॥
विलपति, कहति-"विपति पति! टारहु! करहु युक्ति कछु तनय उबारहु॥

वे आँसू ऐसे लगते थे, मानों हृदय के मोतियों की माला टूट गयी हो और आँखों के मार्ग से उसके अपार मोती झड़ रहे हों। वह विलाप करती और कहती थी कि "हे स्वामी! इस संकट को टालो, कुछ उपाय करो और पुत्र की रक्षा करो।

छल बल नाथ! अबहिं कछु कीजै। सुत पहुँचाय अनत कहुँ दीजै॥
नाहिंत निश्चय कंस सँहारहि। होत प्रभात वत्स मम मारहि॥"

नाथ! इसी समय कुछ छल-बल कीजिये और पुत्रको कहीं दूसरी जगह भेज दीजिये। नहीं तो

कंस निश्चय ही उसका संहार कर डालेगा—प्रातःकाल होते ही वह मेरे बच्चे को मार डालेगा !"

दोहाः—धाय धाय पति-पद परी, पुनि पुनि तिय अकुलानि।
निराधार वसुदेव उर, बाढ़ी पल पल ग्लानि ॥ ३६॥

देवकी दौड़-दौड़ कर अपने पति के पैरों पर गिरी और बार बार व्याकुल होने लगी। देवकी की यह अवस्था देखकर असहाय वसुदेव के हृदय में (कुछ न कर सकने के कारण) पल-पल ग्लानि बढ़ने लगी।

सोरठा :— सोचत—धिक पुरुषत्व ! धिक जन्महु नृप-कुल विमल।
धिक विद्या वर्चस्व ! सकत रच्छि नहिं निज सुतहु ॥

वे सोचने लगे,—मेरे पुरुषत्व को धिक्कार है और धिक्कार है उज्ज्वल राजवंश में मेरे जन्म लेने को भी ! मेरी विद्या और मेरे तेजको भी धिक्कार है, जो मैं अपने पुत्र की रक्षा भी नहीं कर सकता !

जबहिं सहठ कछु युक्ति विचारत। दुर्गम दुर्ग देखि हिय हारत॥
तेहि पै निशि, घन गरजत घोरा। दामिनि दमकति शब्द कठोरा॥

जब मन में प्रयत्न कर कोई उपाय सोचते तो दुर्गम किलेको देखकर हृदय हार जाता था। इसके अतिरिक्त, भयंकर रात थी, आकाशमें बादल खूब गरज रहे थे और बिजली चमक-चमक कर कठोर शब्द कर रही थी।

धीरज-वारिधि सहज गँभीरा। वाष्प कंठ वसुदेव अधीरा॥
दंपति सुत विलोकि बिलखाहीं। एकहिं एक लखहिं पछिताहीं॥

यद्यपि वसुदेव धीरज के समुद्र थे और स्वभाव से ही गंभीर थे, तो भी उनका कण्ठ आँसुओं से रुद्ध हो गया और वे घबड़ा उठे। दोनों पति-पत्नी शिशुको देखकर विलाप करते और परस्पर एक दूसरे की ओर देखकर (अपनी असहायावस्था पर) पछताते थे।

बिनु अवलम्ब मातु पितु जाना। सहसा प्रकट भये भगवाना॥
निमिषहि महँ शिशु वेष दुरावा। रूप चतुर्भुज प्रभु प्रकटावा॥

भगवान ने अपने माता-पिता को जब निराधार जाना तो एकाएक प्रकट हो गए। पल भर में ही उन्होंने अपने शिशु-वेशको छिपा लिया और अपना चतुर्भुज (चार भुजाओं वाला) रूप प्रकट कर दिया।

जलधर देह, कमल दल लोचन। विद्युत वसन, भाल गोरोचन॥
कौस्तुभ कंठ, वक्ष वनमाला। उर श्रीवत्स-इन्दु-द्युति-जाला ॥

पानी भरे बादल के समान श्याम शरीर, कमल-दलके समान नेत्र, बिजली के समान पीताम्बर, मस्तक पर गोरोचन,कंठ में कौस्तुभ-मणि, वक्षस्थल पर वनमाला, और हृदयपर भृगुके चरण-चिह्न रूपी चन्द्र की आभा फैली हुई थी।

दोहाः— शिर किरीट, कुण्डल श्रवण, ब्रह्मसूत्र कटि धाम।
शंख, चक्र, वारिज, गदा, चतुर्हस्त अभिराम॥ ३७॥

शिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, कमर में जनेऊ और चारों हाथोंमें क्रम से शंख, चक्र, कमल

और गदा शोभा बढ़ा रहे थे ।

निरखि दिव्य वपु आनँददाता। विस्मय हर्ष विवश पितु माता॥
दृग कर्षित इन्द्रिय मन प्राणा। जनु प्रति रोम करत छवि पाना॥

माता-पिता भगवानका आनन्ददायक स्वर्गीय रूप देखकर आश्चर्य और हर्षसे विभोर हो गए । उनकी इन्द्रियाँ, मन और प्राण आँखों में ही खिंच आए , मानों शरीर का प्रत्येक रोम भगवान के रूप को पी रहा हो ।

दम्पति चकित विमोहित जानी। कही गँभीर मधुर हरि वाणी॥
गिरा वदन विभु वारिज भाषी। रदन पंक्ति द्युति युक्त प्रकाशी॥

दम्पति को चकित और मुग्ध जानकर हरि ने गंभीर मधुर वचन कहे और ऐसा करते समय उनके दाँतों की पंक्ति आभा सहित चमक उठी ।

मानहुँ व्योम-गामिनी गंगा। वही धवल प्रभु पद द्युति संगा॥
"त्यागहु भीति!"—कहेउ भगवाना। "भय सम मानव-अरि नहिं आना॥

उस समय ऐसा जान पड़ा, मानों आकाश-गंगा विष्णु भगवान के चरणों के स्वच्छ प्रकाश के साथ मिलकर बह रही हो । भगवान ने कहा,—"भय छोड़ो ! भयके समान मनुष्यका अन्य कोई शत्रु नहीं है ।

मैं तुम माहिं, तुमहु मोहिं माहीं। स्वल्पहु विस्मय-कारण नाहीं॥
एकहि तत्त्व व्याप्त जग सारा। नाहिं कहुँ मैं, तुम, मोर, तुम्हारा॥

मैं तुम में हूँ और तुम भी मुझ में हो , इसमें तनिक भी आश्चर्य का कारण नहीं है । सारे संसार में एक ही तत्व फैला हुआ है । कहीं भी मैं और तुम तथा मेरा और तुम्हारा नहीं है । (इन सब से द्वैत प्रकट होता है पर संसार में द्वैत तो है ही नहीं ।)

दोहा :— परति विविधता नयन पथ , सो प्रतिबिंब समान ।
निज छाया लखि शिशु सभय , नहिं वयस्क मतिमान ॥ ३८॥

आँखों में जो अनेक रूप दिख पड़ते हैं वे 'एक ही वस्तु'के प्रतिबिम्ब के समान हैं । बालक ही अपनी छाया को देख कर (भ्रमवश उसे दूसरा समझ कर) भयभीत होते हैं , बुद्धिमान प्रौढ़ जन नहीं । *

सोरठा :— यह समस्त संसार , भीतहिं बंदीधाम सम ।
को तेहि बाँधन हार , खुलि खेलत भव-नाट्य जो ॥

यह सारा संसार डरपोक के लिए कारागृहके समान है । जो संसार को नाटक समझते हुए खुल कर खेल खेलता है, उसे कौन बाँध सकता है ?

पूर्व लहन हित मोहिं सुत वेषा। कीन्हेउ तप तुम दोउ अशेषा॥
दीन्हेउँ मैं वर तेहि अनुसारा। लीन्हेउँ आजु आय अवतारा॥

पूर्व जन्म में तुम दोनों ने मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिए अखंड तप किया था । तब

* इन तथा पूर्व पंक्तियों में अद्वैतवाद के 'विवर्तवाद' या 'मायावाद'-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । 'माया' के कारण ही 'दृश्यवर्ग'में विभिन्नता पाई जाती है । वस्तुतः एक अखण्ड तत्व की ही सत्ता सर्वत्र है । "एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ" —बिहारी

तुम्हें मैंने जो वरदान दिया था, उसी के अनुसार आज यहाँ आकर अवतार लिया है।

जमुना-पार ग्राम अभिरामा। गोप-निकेतन गोकुल नामा॥
बसत नंद तहँ सुहृद तुम्हारे। धर्म-निकेत, गुणन-उजियारे॥

यमुना के पार गोकुल नामक गोपों की एक सुन्दर बस्ती है। वहाँ तुम्हारे मित्र नन्द रहते हैं, जो धर्म के धाम हैं और अपने गुणों के प्रकाश से प्रकाशित हैं, अर्थात् धर्मात्मा तथा विविध गुण-सम्पन्न हैं।

यशुमति प्रेममयी नँदनारी। महि मातृत्व मनहुँ तनु-धारी॥
गोकुल वेगि मोहिं लै धावहु। नँद-यशोदा ढिग पहुँचावहु॥

नन्द की स्त्री यशोदा प्रेम-स्वभाव की हैं। (उनके वात्सल्य-भाव को देख कर ऐसा प्रतीत होता है) मानों मातृत्व ही ने पृथ्वी पर शरीर धारण किया हो। मुझे बहुत शीघ्र ही गोकुल ले भागो और नंद-यशोदा के पास पहुँचा आओ।

मोरि योगमाया गुणखानी। यशुदा-गर्भ आजु प्रकटानी॥
राखि मोहिं, तेहि यहि थल लावहु। कंसहिं कन्या जन्म जनावहु॥

गुणों की खानि मेरी योग-माया आज यशोदा के गर्भ से पैदा हो चुकी है। मुझे वहाँ रखकर उसे यहाँ ले आओ। फिर कंस को कन्या-जन्म की सूचना दे देना।

दोहा:—संतत मम सानिध्य-प्रिय, शेष धारि नर देह।
प्रकटे रोहिणि गर्भ ते, प्रथमहिं व्रज नँद गेह॥३६॥

शेष जो सदा मेरे साथ की कामना करते रहते हैं, नर-देह धारण कर पहिले ही नंद-गृह में रोहिणी के गर्भ से जन्म ले चुके हैं।

दोहाः—करि व्यतीत शैशव सुखद, अग्रज साथ सप्रीति।
मिलिहौं मधुपुर आय पुनि, त्यागहु उर भ्रम भीति॥" ४०॥

सुख देने वाले बचपन को ज्येष्ठ बन्धु के साथ प्रेम से बिताकर मैं फिर मथुरा में आकर तुम से मिलूँगा। अतएव हृदय से भ्रम और भय को दूर कर दो।"

सोरठा:—कारागार किंवार, उघरे सहसा अस कहत।
श्रीधर विश्वाधार, विहँसे धरि शिशु वपु बहुरि॥

ऐसा कहते ही सहसा कारागार के द्वार खुल गए। विश्वाधार भगवान श्रीकृष्ण पुनः शिशु-रूप धारण कर मुसकुरा उठे।

चमत्कार वसुदेव विलोका। नव स्फूर्ति उर, गत भय शोका॥
धाय शूर-सुत सुवन उठावा। लखेउ न जननि-नयन जल छावा॥

(जब) वसुदेव ने यह चमत्कार देखा तो उनके हृदय में नया उत्साह भर गया और भय तथा शोक विलीन हो गए। शूरके पुत्र वसुदेव ने दौड़कर अपने पुत्र को उठा लिया। उस समय उन्होंने माता की आँखों में छाये हुए अश्रुओं को नहीं देखा (अन्यथा स्नेह से उनके पैर लड़खड़ा उठते और वे भी देवकी के समान मोह-वश शिशु को ले जाने में विलम्ब करते।)

द्वार पार पल लागत आये। प्रहरी इत उत सोवत पाये॥
सघन तिमिर निरखत कठिनाई। दमकति दामिनि देति दिखायी॥

पल भर ही में वे द्वार के पार पहुँच गए, जहाँ उन्होंने पहरेदारों को यहाँ वहाँ सोता हुआ

पाया। उस समय इतना घोर अंधकार था कि कठिनाई से दिख पड़ता था, पर जब बिजली चमकती तो दिखाई देता था।

वारिद विद्युत महि मिलि गरजत। होत रोर रहि रहि हिय लरजत॥
दायें कबहुँ नाग फुफकारत। बायें सहसा सिंह दहारत॥

बादल बिजली मानों जमीन से मिलकर गरजते थे, जिससे रह रहकर घोर आवाज़ होती थी और हृदय काँप काँप उठता था। मार्ग की दाईं ओर कभी नाग फुफकारते थे और बाईं ओर कभी एकाएक सिंह दहाड़ उठते थे।

सन्मुख हहरति जमुन-तरंगा। विकट प्रवाह धीर मन भंगा॥
पै उमंग नव पितु अँग माहीं। प्रभु पद दृष्टि, उड़त जनु जाहीं॥

सामने यमुना की लहरें "हहर हहर" शब्द कर रही थीं। उसके भयङ्कर प्रवाह को देखकर धैर्यवान का मन भी टूट जाता था; परन्तु पिता के शरीर में नया उत्साह लहरा रहा था। उनकी दृष्टि प्रभु के चरणों में थी। (इसलिए इन सब परिस्थितियों पर ध्यान न दे कर) वे इतनी फुर्ती से चले जा रहे थे, मानों उड़ रहे हों।

दोहा:— धँसत सरित धृत शीश सुत, बाढ़ेउ वारि प्रवाह।
हरि-पद परसन हेतु जनु, जमुना उरहु उछाह॥ ४१॥

वे शिर पर पुत्र को धारण कर यमुना में धँसे ही थे कि उसका जल-प्रवाह बढ़ गया, मानों भगवान के चरण-स्पर्श करने को यमुना के हृदय में भी उत्साह था।

बाढ़ेउ जल मुख लगि पल माहीं। बूड़त उबरत पग न थिराहीं॥
परसे सरि पद, प्रभु हुँकारा। उतरेउ वारिहु, लागे पारा॥

पल भर में ही जल वसुदेव के मुख तक बढ़ गया। वे कभी डूबते से जान पड़ते और कभी सँभल जाते। प्रवाह की तेजीके कारण उनके पैर स्थिर नहीं रह पाते थे, पर यमुना ने जैसे ही भगवान के चरणों का स्पर्श किया, त्योंही वे हुंकार उठे। तब जल का पूर भी उतर गया और वसुदेव पार हो गए।

बढ़त चले गोकुल नियराना। लखि नँद सदन हृदय हुलसाना॥
प्रविशे यशुमति-मंदिर माहीं। माया वश कोउ जागेउ नाहीं॥

वे बढ़े चले गए और गोकुल ग्राम भी निकट आ गया। वहाँ पहुँच नंद का गृह देख कर उनका हृदय हर्षित हो उठा। वे यशोदा के स्थान में चले गए। माया के आधीन होने के कारण किसी की आँख नहीं खुली।

शयित योगमाया तहँ पायी। राखि सुवन तेहि फिरे उठायी॥
जमुन पार पुनि मधुपुर आये। प्रहरी वैसेहि सोवत पाये॥

उन्होंने वहां यशोदा के पास योगमाया को सोते हुए पाया। उसके स्थान पर अपने पुत्र को रख और उसे (माया को) उठाकर वे लौट पड़े तथा यमुना पारकर पुनः मथुरा आ गये, जहाँ पहरेदारों को उन्होंने उसी प्रकार सोता हुआ पाया।

पठयेउ वृत्त प्रात नृप पाहीं। जन्मी सुता काल्हि निशि माहीं॥
जदपि रहस्य कंस नहिं जाना। तोष न उर, मन संशय आना॥

प्रातःकाल राजा के पास यह समाचार भेज दिया कि कल रात को कन्या का जन्म हुआ है।

यद्यपि कंस को इस रहस्य का पता नहीं था, तो भी उसके हृदयको संतोष नहीं हुआ, उसके मन में अनेक प्रकार के सन्देहों ने घर कर लिया।

दोहा :—तर्क कुतर्क अनेक करि, कन्यहिं लीन्ह उटाय।
शिला पछारन जस चहेउ , गयी हाथ निपुचाय ॥४२॥

कई प्रकार के तर्क-कुतर्क करके उसने कन्याको उठा लिया और जैसे ही चट्टान पर (मारने के लिए) पछाड़ने लगा, वह हाथ से फिसल कर छूट गई।

निपुचि उड़ी, पहुँची आकाशा। प्रखर मनहुँ अचिरांशु प्रकाशा॥
तड़की अंतरिक्ष-पथ घोरा। गिरत वज्र जनु रोर कठोरा —

हाथ से छूटते ही वह उड़ कर आकाश में पहुँच गई, और ऐसी लगी, मानों प्रखर तेज वाली विजली ही प्रकाशित हो उठी हो। वह आकाश-मार्ग में इतने जोर से तड़की, मानों कठोर वज्र आवाज के साथ गिर रहा हो,—

"कंस! व्यर्थ मोहिं चहेउ पछारा। उपजेउ अनतहि मारनहारा॥
करि न सकत खल! अब शिशु-हानी। लखत न मृत्यु शीश मँडरानी॥"

"कंस! तूने व्यर्थ मुझे पछाड़ना चाहा। तेरा मारनेवाला तो किसी और जगह पैदा हो चुका है। हे दुष्ट! तू अब उस बालक का अनिष्ट नहीं कर सकता। तू अपने शिर पर मँडराने वाली मृत्यु को नहीं देख रहा है।"

सुनि परिताप कंस उर छावा। व्यर्थ देवकी शिशुन नसावा॥
कीन्हे दंपति मुक्त नरेशा। गये गेह हिय हर्ष अशेषा॥

यह वाणी सुनकर कंस के हृदय में पश्चात्ताप मिश्रित शोक छा गया। वह मन ही मन कहने लगा कि मैंने अकारण ही देवकी के शिशुओं को नष्ट किया। तब उसने वसुदेव-देवकी को कारागृहसे मुक्त कर दिया। वे दोनों हृदय में अपार हर्ष लेकर अपने घर गये।

भूपति कुपित भवन निज आवा। बोलि पूतनहिं वचन सुनावा—
"ग्राम ग्राम, व्रज व्रज नव जाता। शिशुन खोजि द्रुत करहु निपाता॥"

राजा भी क्रोधित हो अपने भवन में आ गया, जहाँ उसने पूतना को बुला कर यह आदेश सुनाया--"गाँव-गाँव में और गोपों की बस्ती बस्ती में हाल ही में जन्मे हुए बालकों को शीघ्र ही खोज-खोज कर नष्ट कर दो!"

दोहा :—शोच विवश मथुरेश इत, होत हृदय अति दाह।
उत गोकुल नँद गोप गृह, उमहेँउ हर्ष प्रवाह ॥४३॥

यहाँ मथुरा-नरेश (कंस) शोकाधीन था और उसका हृदय भीतर ही भीतर जला जाता था और उधर गोकुल में गोप नन्द के गृह में हर्ष का प्रवाह उमड़ रहा था।

गत-तन्द्रा यशुमति शिशु देखेउ। अविदित वृत्त तनय निज लेखेउ॥
अंब हृदय नहिं हर्ष समायी। नंद मुदित जनु नव निधि पायी॥

नींद टूटने पर यशोदा ने शिशु को देखा। पूर्व घटना से अनभिज्ञ होने के कारण उसने उसे अपना ही पुत्र समझा। माताके हृदयमें आनन्द नहीं समाता था और नंद ऐसे प्रसन्न थे, मानों उन्हें

नया खजाना मिल गया हो।

गोकुल मंगल-तूर्य बजावा। सुन्दर सुवन महरि उपजावा॥
बन्दी जन यश गावत धाये। पढ़त स्वस्त्ययन द्विजगण आये॥

महरी यशोदा के यहाँ सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ है, इसलिए गोकुल गाँव में मंगल बाजे बजने लगे। बन्दी–जन विरुदावली गाते हुए दौड़ पड़े। ब्राह्मण 'स्वस्ति' पाठ (आशीर्वाद-वचन) पढ़ते हुए आ गये।

धाय धाय नँदराय सुजाना। सन्माने दै गोधन दाना॥
श्रुति विधि जातकर्म आचारा। कीन्हेउ कुलगुरु हर्ष अपारा॥

समझदार नन्दजी ने उत्साह से स्वागत किया और अनेक गौओं का दान दे कर उनका सम्मान किया। कुलगुरु ने अत्यन्त प्रसन्नता से बच्चे का जातकर्म संस्कार किया।

निर्भय ग्वाल निसान बजावहिं। तारी दै दै नाचहिं गावहिं॥
भयेउ सकल गोकुल मनचीता। डोलत ग्वाल मनहुँ रणजीता॥

ग्वाले निर्भय होकर नगाड़े बजाते थे और ताली बजा-बजा कर नाचते गाते थे। गोकुल में सब मनचाहा हो गया। ग्वाल ऐसे खुशी से फूले घूमते थे, मानों कोई युद्ध जीत कर आये हों।

दोहा:— माखन हरदी दूध दधि, घृत जल साथ मिलाय।
छिरकहिं एकहिं एक सब, गोप ग्वाल हर्षाय॥ ४४॥

गोपग्वाल मक्खन, हल्दी, दही और घी को एक साथ जल में मिला कर परस्पर एक दूसरे पर हर्षित होकर छिड़कते थे।

धाये एक नंद ढिग आये। परत चरण गहि महर उठाये॥
एक पुलकि गो-वत्स सँवारे। लाये गोधन नंद-दुआरे॥

उनमें कुछ नन्द के पास दौड़कर पहुँचे और खुशी के कारण उनके चरणों पर गिर पड़े। नन्द ने उन्हें प्रेम से पकड़ कर उठा लिया। कुछ ने हर्षित हो गाय और बछड़ों को सजाया और नन्द के द्वार पर उन्हें ले गये।

एक हँसत मन आपुहि आपा। विह्वल देह हर्ष हिय व्यापा॥
एक गिरत आनँद अधिकाई। एक अँक भरि लेत उठायी॥

कुछ आप ही आप मन में हँसते थे। हृदय में हर्ष छा जाने से वे अपनी देह का भान भूल गये। जब कोई आनन्द की अधिकता से नीचे झूमकर गिर पड़ता, तब दूसरा उसे उठाकर गोद में भर लेता था।

गृह गृह बँदनवार बँधाये। गृह गृह फूलन मंडप छाये॥
गृह गृह मोतिन चौक पुरायी। राखे मंगल कलश सजायी॥

घर घर बंदनवार बाँधे गये और फूलों के मंडप छाये गये। घर घर मोतियों की चौक पूरी गई और उन पर मंगल-कलश सजा कर रखे गये।

गृह गृह होम हवन सुर-पूजा। गृह गृह श्रुति ध्वनि गोकुल गूँजा॥
बाजत पणव शंख सहनाई। गृह गृह गोकुल बजति बधाई॥

घर घर होम-हवन और देव-पूजा हो रही थी। गोकुल का घर घर वेद-ध्वनि से गूंज रहा था।

ढोल, शंख और शहनाई बज रही थी। गोकुल के घर घर बधाई बज रही थी।

दोहा :-- अक्षत रोचन दूब दधि, लै लै कँचन थार।
यूथ यूथ गोपी चलीं, निरखन नंदकुमार ॥ ४५ ॥

अक्षत (चावल), रोचन, दूब और दही सोने के थाल में लेकर गोपियाँ टोलियाँ बनाकर नंद के बालक को देखने चलीं।

प्रकृति-अंक-पालित वर नारी। तप्त कनक द्युति सहज सँवारी ॥
अंगराग अरुणाधर-ज्योती। मंजुल हास समुज्ज्वल मोती ॥

गोकुल ग्राम की श्रेष्ठ नारियां प्रकृति की गोद में पली थीं। उनके शरीर की कान्ति तपे हुए सोने के समान थी। उनको बनावटी शृंगार की आवश्यकता न थी। लाल ओठों की ज्योति ही अंगराग थी, सुन्दर हँसी ही उजले चमकने वाले मोती थे।

चल अपांग-रुचि रत्नन खानी। वीणा वेणु विनिंदक वाणी ॥
विजित मलयगिरि-पवन-सुवासा। श्वास-समीर सुरभि पटवासा ॥

उनके चंचल कटाक्ष की कांति ही रत्नों की खान थी, उनकी वाणी वीणा और वेणु के स्वर को भी लजाने वाली थी, अर्थात् उनकी वाणी वीणा और वेणु के स्वर से भी अधिक मधुर थी। मलय पर्वत से बहने वाली सुगन्धित वायु पर विजय प्राप्त करने वाली उनकी साँस ही पटवास अर्थात् वस्त्रों के सुगन्धित द्रव्य का काम कर रही थी।

पद-पंकज-आकर्षित अलिगण। सोइ मुखर कल चरण-आभरण ॥
वितरत वदन चंद्र-द्युति वामा। पहुँचीं प्रमुदित यशुदा-धामा ॥

उनके चरण-कमलों की ओर भौंरों के समूह खिंच आये थे। अतः उनकी गुंजार ही उनके रुनझुन-आभूषण थे। आशय यह है कि गोपियों के पगों में कोई आभूषण न थे, पर चूँकि वे 'पद्मिनी' थीं, इसलिए उनके चरणों से लिपटे हुए भ्रमर गुंजार कर आभूषण का काम दे रहे थे। वे स्त्रियां अपने मुख से चन्द्रमा की आभा बिखराती हुई यशोदा के घर प्रसन्नता के साथ पहुँचीं।

अपलक निरखहिं बाल अनूपा। पियहिं दृगन जनु सुधा स्वरूपा ॥
बार बार सब देहिं असीसा। "जियहु महरि-सुत! कोटि बरीसा ॥"

वे उस अनुपम बालक को एकटक देखती थीं; मानो आँखों से उसके रूपामृत को पी रही हों। बार बार वे सब आशीर्वाद देती थीं कि,—"हे यशोदा के लाल! तुम करोड़ों वर्ष अर्थात् युग युग जियो।"

दोहा :— यहि विधि जन्मोत्सव भयेउ, बरसेउ आनँद-मेह।
सिंचित प्रभु नव प्रीति-जल, सरसत यशुमति गेह ॥ ४६ ॥

इस प्रकार जन्मोत्सव हुआ और आनन्द की वर्षा हुई। भगवान नित नये प्रेम-जल से सींचे जाकर यशोदा के घर में बढ़ने लगे।

जो गुण कर्म विहीन, अजाता। परम तत्व विधि-शिव-अज्ञाता ॥
क्रीड़ा जासु सृष्टि यह सारी। रचत सकौतुक देत सँहारी ॥

जो तीनों गुणों (सतोगुण, तमोगुण और रजोगुण) और कर्मों से रहित तथा अजन्मा है,

जिसके परम तत्व होने के कारण ब्रह्मा और शिव भी नहीं जानते, यह सारा जगत जिसका खेल है और जो खेल खेल में इसकी सृष्टि और संहार करता है।

कहि कहि वत्स ! लाल ! सुत ! छौना। दीन्हे तेहि बहु मातु खिलौना॥
पलना शयित किलकि प्रभु खेलत। कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत॥

उसी को खेलाने के लिये माता यशोदा बेटा, लाल, छौना आदि कह कह कर बहुतसे खिलौने देती है, पलने में सोये हुए भगवान कृष्ण किलकारी भरकर खेल रहे हैं और हाथसे पाँव पकड़ कर अँगूठे को अपने मुख में डाल रहे हैं।

नँद-गृहिणी दुलराय झुलावति। वदन विलोकति, पुलकति, गावति —
"सोवहु ! सोवहु ! चिर दुख-मोचन ! सोवहु ! सोवहु ! अंबुज-लोचन !

नन्दरानी यशोदा प्यार कर के बालक को झुला रही हैं। वे उसके मुख को देखती जाती हैं और हर्ष से पुलक उठती हैं तथा इस प्रकार गाने लगती हैं,– "हे मेरे बहुत काल के दुःखों को हरने वाले ! सो जावो ! सो जावो ! हे कमल के समान नेत्र वाले ! सो जावो ! सो जावो !

सोवहु ! सोवहु ! वदन-सुधाधर ! सोवहु ! नख-शिख-मृदुल-मनोहर !
आउ री निँदिया ! कान्ह बोलावहि। काहे न निँदिया ! आय सोवावहि॥"

हे चन्द्रमाके समान मुख वाले ! सो जावो ! सो जावो ! नख से शिख तक सर्वांग सुन्दर मेरे कोमल पुत्र ! सो जावो ! सो जावो ! अोरी 'निंदिया !' तुझे (मेरा) कान्ह बुलाता है ! अरी 'निंदिया !' तू आकर मेरे लाल को क्यों नहीं सुलाती ?"

दोहा :—जागत जो लय काल हू, संसृति सकल सोवाय।
पलना रही सोवाय तेहि, यशुमति लोरी गाय॥४७॥

जो सारे संसार को सुलाकर प्रलय के समय भी जागता रहता है, उसे ही यशोदा लोरी गा गाकर पलने में सुला रही है !

हर्षित सुनत गीत अभिरामा। मूँदे दृग निज कौतुक-धामा॥
अँग फरकाय स्वल्प मुसकाने। श्याम यशोमति सोवत जाने॥

मीठा गीत सुनते ही मायामय श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये और उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिए। अँगों को फड़काकर जब वे तनिक मुसकुराये तो यशोदा ने जाना कि श्याम सो गये।

पुनि पुनि माता वदन निहारति। भाग्य सराहि हर्ष जल ढारति॥
ताहि समय आये बलरामा। रोहिणी-तनय कान्ति हिमधामा॥

माता बार बार उनके मुख को देखती है और अपने भाग्य को सराहकर हर्षातिरेक में आँखों से आँसू बहाने लगती है। उसी समय रोहिणी के पुत्र बलराम आ गये। उनके शरीर की कान्ति हिमालय के समान उज्ज्वल थी अर्थात् वे गौर वर्ण के थे।

चपल श्याम-पलना ढिग जायी। पूछत यशुदहिं कछु मुसकायी—
"को यह, मातु ! कहाँ ते आवा ? बाबा यहि केहि हाट बिसावा ?

चंचल बलराम शीघ्रता से श्याम के पलनेके पास जाकर यशोदा से मुसकुराकर पूछते हैं,–"यह कौन है मां ? यह कहाँ से आया है ? बाबा ने इसे किस बाजार में खरीदा है ?

लागत यह अति सुघर सलोना । लेहौं ऐसहि मइँ खिलोना ॥"
"तुम्हरेहि खेलन हेतु मँगावा ।" हँसी महरि, हलधर सुख पावा ॥

यह अत्यन्त सुघड़ सलोना लगता है। मैं भी ऐसा ही खिलौना लूंगा।" "मैंने तुम्हारे ही खेलने के लिए इसे मँगाया है !"—इतना कहकर यशोदा हँस पड़ीं और हलधर भी प्रसन्न हुए।

दोहा :—उत्कंठित बलराम उर, झूलेउ पलना साथ।
लगे झुलावन झूमि झुकि, संकर्षण निज हाथ ॥ ४८ ॥

बलराम का उत्कण्ठा से भरा हुआ हृदय पलने के साथ ही झूल उठा (हर्ष-विभोर हो गया) और वे कृष्ण को झूम और झुक झुक कर अपने हाथ से झुलाने लगे।

लखि अग्रज गति हरि हर्षाने। हग उघारि पुनि पुनि मुसकाने ॥
मुदित बंधु चह गोद उठावा। उठे न हरि बहु रुदन मचावा ॥

अपने जेठे भाई की यह प्रेम-दशा देख कर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए और आँखें खोल कर बार बार मुसकुराने लगे। बलराम ने खुश होकर कृष्ण को गोद में उठाना चाहा, पर वे उनके उठाये न उठे और उन्होंने ज़ोर ज़ोर से रोना शुरू कर दिया।

सुनत यशोमति खीझति धायी—"दीन्हेउ नटखट बाल जगायी ॥"
"मैं नहिं जानत यह अस रोना। छुइहौं अब नहिं मातु खिलौना !"

कृष्ण का रोना सुनते ही यशोदा खीझती हुई दौड़ पड़ीं और (बलराम को देखकर कहने लगीं कि "(अरे देखो तो) नटखट ने बालक को जगा दिया।" (यह सुनकर) बलराम भी बोल उठे—"मैं क्या जानता था कि यह ऐसा 'रोना' है ! मां ! अब मैं इस खिलौने को भूलकर भी नहीं छुऊँगा।"

बाल-वचन सुनि विहँसी माई। हरिहु अँब लहि रहे चुपायी ॥
आयी तबहिं रोहिणी माता। नंदहु आनँद-पुलकित गाता ॥

यशोदा माता बलराम के बाल-वचन सुनकर मुसकुरा उठीं। कृष्ण भी माता को पाकर चुप हो गये। उसी समय रोहिणी माता आ गईं और नन्द भी पहुँच गये। (बलराम की मधुर रिस भरी बातें सुनकर) नन्द का शरीर हर्ष से पुलकित हो रहा था।

प्रमुदित दोउ लखि वदन मयंका। चहत लेन हरि निज निज अंका ॥
त्यागत शिशु नहिं गोद यशोदा। छायेउ भवन विनोद प्रमोदा ॥

दोनों कृष्ण के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख को देख देख कर, प्रसन्न हो रहे थे और दोनों ही उन्हें अपनी गोद में लेना चाहते थे, परन्तु कृष्ण यशोदा की गोद नहीं छोड़ते थे। नन्द के गृह में आनन्द और विनोद छागया, अर्थात् सभी प्रसन्न थे और एक दूसरे से विनोद कर रहे थे।

दोहा :—वृद्धि नाश विरहित कहत, जेहि श्रुति शास्त्र पुराण ॥
लही वृद्धि तेहि नित्य नव, नंद सदन भगवान ॥ ४९ ॥

वेद, शास्त्र और पुराणों के अनुसार, जो न कभी बढ़ता है और न नष्ट होता है, वही

भगवान नन्द के घर बढ़ने लगे।

उत तनु ललित पूतना धारे। विचरति फिरति ग्राम व्रज सारे॥
जहँ नवजात बाल लखि पावति। गरलस्तन निज पान करावति॥

उधर पूतना सुन्दर शरीर धारण कर ब्रज के सारे ग्रामों में घूमती फिरती थी और जहाँ कहीं नवजात शिशु को देख पाती, वहीं उसे अपने विषभरे स्तनों का पान करा देती।

गोकुल यशुमति स्वागत कीन्हा। गुनि कुल-बाला आसन दीन्हा॥
वाणी पुष्पित कलुषि सुनायी—"सुवन तुम्हार असीसन आयी॥"

जब वह गोकुल में पहुँची तब यशोदा ने उसका स्वागत-सत्कार किया और उसे उच्च कुल की स्त्री समझ कर बैठने के लिए आसन दिया। फिर उस पापिन ने मधुर (लच्छेदार) वाणी में यशोदा से कहा, — "मैं तुम्हारे पुत्र को आशीर्वाद देने आई हूँ।"

माता शयित श्याम दरसाये। मन ईषत भवपति मुसकाये॥
महरि करन कछु काज सिधारी। मायामय हरि आँखि उघारी॥

माँ ने सोये हुए श्याम को दिखला दिया। संसार के स्वामी कृष्ण (पूतना की चाल समझ गये और उसे समाप्त करने का अवसर निकट पा) तनिक मुसकुराये। यशोदा जब कुछ काम करने वहाँ से चली गईं, तब मायामय भगवान ने आँखें खोलीं।

मुदित पूतना गोद उठावा। चूमि चन्द्रमुख कण्ठ लगावा॥
छलिनि विषस्तन शिशु-मुख दीन्हा। वज्र शरीर श्याम निज कीन्हा॥

पूतना ने हर्षित हो उन्हें गोद में उठा लिया और उनके चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख को चूम कर उन्हें गले से लगा लिया। तत्पश्चात् जब उस कपटिन ने उनके मुख में अपने विष भरे स्तन को दे दिया, तब श्याम ने अपने शरीर को वज्र के समान कठोर बना लिया।

दोहा:—दिग्ध पयोधर दृढ़ गहेउ, सहठ कीन्ह पय पान।
प्रलपति विलपति पूतना, देत न पै प्रभु जान॥५०॥

उसके जहरीले स्तन को ज़ोर से पकड़कर उन्होंने जबरदस्ती दुग्ध-पान किया। पूतना चीखती-चिल्लाती थी, परन्तु कृष्ण उसे छोड़कर जाने नहीं देते थे।

विष-पय सँग कर्षे प्रभु प्राणा। परी धरणि विरहित गति ज्ञाना॥
प्रकृत शरीर मरत निज धारा। जनु विभीषिका सइ आकारा॥

विषमय दुग्धके साथ ही भगवानने उसके प्राणोंको भी खींच लिया; जिससे वह चेतना-हीन (बेहोश) होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। मरते समय उसने अपना असली रूप धारण कर लिया, जिसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानों भयङ्करता ही साकार हो उठी हो।

भयेउ कोलाहल गोकुल भारी। धाये व्रज काज विसारी॥
विकल विलोकि कलेवर सारे। हरि किलकत मृत-वक्ष निहारे॥

गोकुल में भारी कोलाहल मच गया। ब्रजवासी अपना अपना काम छोड़ कर दौड़ पड़े। वे

सब पूतना के शरीर को देखकर व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने कृष्ण को उसके वक्षस्थल पर बैठे किलकारियाँ भरते हुए देखा।

त्रस्त यशोमति शिशु ले भागी। पुनि पुनि हिय लगाय अनुरागी॥
झारेउ शिर गोपुच्छ भँवायी। कीन्ह स्वस्ति-वाचन नँदरायी॥

भय के मारे यशोदा कृष्ण को लेकर उस स्थान से भाग गईं। उन्हें प्रेम के साथ बार बार छाती से लगाया। उन्होंने उनके मस्तक को गाय की पूँछ घुमा कर झाड़ा। नन्द बाबा ने मंगल-कामना के लिए 'स्वस्त्ययन' पढ़ा।

आरति वनिता-वृन्द उतारी। प्रकुपित देत पूतनहिं गारी॥
सुतहिं पियायेउ पय महतारी। प्रमुदित ग्राम विगत भय भारी॥

वहाँ एकत्र स्त्रियों ने उनकी आरती उतारी और सब क्रोधित होकर पूतना को गालियाँ देने लगीं। फिर माँ ने पुत्र को दूध पिलाया। पूतना के वध से भारी भय दूर हो जाने के कारण सभी ग्रामवासी प्रसन्न हो गये।

दोहा :— सुनत पूतना-अन्त उत, नृप उर भीति अपार।
जानेउ निश्चय नँद सदन, जन्मेउ मम हंतार॥ ५१॥

उधर पूतना के वध का समाचार सुनते ही कंस के हृदयमें अपार भय छा गया। उसने निश्चय रूप से जान लिया कि नन्द के घर में मेरे मारने वाले ने जन्म ले लिया है।

भवन यूथपति भूप बोलाये। शकट, प्रलंब, अघासुर आये॥
तृणावर्त, वत्सासुर पापी। वक, धेनुकहु साधु-संतापी॥

राजा ने महल में अपने सेनापतियों को आमंत्रित किया। वहाँ शकट, प्रलंब, अघासुर, तृणावर्त, पापी वत्सासुर, बकासुर, साधुओं को कष्ट देने वाला धेनुक, तथा—

मल्ल युगल मुष्टिक, चाणूरा। केशी, व्योम विकट बहु शूरा॥
नृपति पूतना-निधन जनावा। उर भय संशय प्रकटि सुनावा —

मुष्टिक और चाणूर नामक दो मल्ल, केशी एवं व्योम आदि बहुत से योद्धा भी पहुँच गये। राजा ने उनसे पूतना-वध का समाचार बताया और अपने हृदय के भय तथा सन्देह को प्रकट कर कहा—

"विधिहु अराति-रहस्य दुरावा। मथुरा कहि गोकुल प्रकटावा॥
करहुँ न अबहिं जो अरि अवसाना। भये प्रौढ़ हरिहै मम प्राणा॥"

"विधाता ने भी मुझ से शत्रु के रहस्य को छिपा लिया। मथुरा की सूचना देकर उसे गोकुल में उत्पन्न किया। यदि मैं शीघ्र ही शत्रु का अन्त न कर दूँगा तो बड़ा होने पर वह मेरे ही प्राण हर लेगा।"

सुनत कीन्ह खल-मंडल प्रलपन — "त्यागत प्रभु! कस दर्प पुरातन?
शोच उचित अस शिशु हित नाहीं। लहत निदेश हतहिं पल माहीं।"

कंस की वाणी सुनतेही दुष्ट समाज यह प्रलाप करने लगा कि—"स्वामी! आप अपना पुराना गर्व क्यों छोड़ते हैं? इतने छोटे बच्चे के लिये इतनी भारी चिन्ता उचित नहीं है। आपकी आज्ञा

पाते ही हम पल भर में उसका अन्त कर देंगे।"

दोहा :— सुनि जल्पन यहि विधि विपुल, कंसहिं तोष अपार।
इच्छत लय-जलनिधि करन, श्वान-पुच्छ गहि पार ॥ ५२ ॥

इस प्रकार की बहुत बकवास सुनकर कंस को अपार संतोष हुआ, पर उसका यह सन्तोष उस मूर्ख के समान था, जो कुत्ते की पूंछ पकड़ कर प्रलयके समुद्र को पार करनेकी इच्छा कर रहा हो।

पहिले शकटासुर व्रज आयी। शकट रूप गृह रहेउ दुरायी॥
सहज शकट यशुदा तेहि जाना। धरे लाय दधि भाजन नाना॥

पहिले शकटासुर व्रज में आया और नन्द के घर में छकड़ा बनकर छिप रहा। यशोदा ने उसे सचमुच छकड़ा ही जाना और उसमें दही के अनेक पात्र लाकर रख दिये।

ढिगहि पालने बाल सोवायी। आपु करन गृह काज सिधायी॥
सहसा क्षुधित भुवनभर जागे। अँगुठा पान करन प्रभु लागे॥

यशोदा ने शकट के पास ही पालने में शिशुको सुला दिया और स्वयं घर का काम-काज करने चली गईं। संसार के पोषक भगवान कृष्ण भूख लगने से सहसा जाग गये और अपने अँगूठे को चूसने लगे।

निज निकटहि पुनि शकट निहारी। समुझेउ असुर-मर्म असुरारी॥
मंद मंद पद-पद्म उठायी। गति मायापति सहठ बढ़ायी॥

फिर अपने पास ही छकड़े को देखकर असुरों के शत्रु (कृष्ण) ने असुर की माया को ताड़ लिया। अपने चरणों को उठाकर मायापति भगवान ने धीरे धीरे जानबूझ कर झूलेकी गति बढ़ा दी।

तकि कीन्हेउ पुनि पाद प्रहारा। गिरेउ शकट, गृह शब्द अपारा॥
टूटेउ अक्ष, युगहु विलगाना। ढरकेउ दधि, फूटे घट नाना॥

.... और फिर निशाना साध कर उन्होंने उस पर ज़ोर से प्रहार किया, जिससे वह छकड़ा गिर पड़ा और उससे घर में अपार शब्द हुआ। उसकी धुरी टूट गई और जूआ भी अलग हो गया, जिससे उसमें रखा हुआ दही ढरक गया और अनेक घड़े फूट गये।

दोहा :— कौतुक ही शकटहिं हतेउ, प्रकटेउ व्रज नहिं भेद।
पहुँचेउ मथुरा वृत्त जब, मथुरापति उर खेद ॥ ५३ ॥

हरि ने खेल खेल ही में शकट का वध कर दिया। यह भेद व्रज में प्रकट नहीं हुआ। शकटासुर-वध का संवाद जब मथुरा पहुँचा, तब कंस के हृदय में शोक छा गया।

तृणावर्त पुनि भूप पठावा। चक्रवात वपु व्रज चढ़ि आवा॥
धूलि निखिल गोकुल भरि छायी। अँधाधुन्ध नहिं परत लखायी॥

फिर राजा ने तृणावर्त नामक असुर को भेजा, जो ववंडर का रूप धारण कर व्रज पर टूट पड़ा। गोकुल भर में धूल ही धूल छा गई, चारों ओर अंधकार फैल गया, जिससे कुछ भी दिखाई न देता था।

उड़त असुर जस नँद गृह आवा। क्रीड़त कृष्णहिं प्रांगण पावा॥
लै सँग बालक व्योम उड़ाना। बढ़ी श्याम-गरिमा अकुलाना॥

उड़ते उड़ते जब असुर नंद के घर पहुँचा, तब उसने कृष्ण को आँगन में खेलते हुए पाया।

वह बालक को अपने साथ लेकर आकाश में उड़ गया। परन्तु कृष्ण ने जब अपना वजन बढ़ाया, तब वह घबरा गया।

हरि खेलाय खल शिला पछारा। चापि ग्रीव हठि जीव निकारा॥
चकित यशोमति आँगन आयी। बाल न पलना परेउ लखायी—

कृष्ण ने उस दुष्ट को खेला कर चट्टान पर दे मारा और गला दबाकर उसके प्राण जबरन निकाल लिये। अचरज से भरी हुई यशोदा आँगन में आई। उन्हें बालक पलने में न दिखाई दिया।

"श्याम! श्याम! हा श्याम!" पुकारहि। "को निधनी के धनहिं उबारहि!"
गृह गृह ब्रज बिलखति महतारी। करुणहि क्रन्दति जनु तनु धारी॥

तब वे "श्याम! हा श्याम!" पुकारती हुई कहने लगीं—"मुझ कँगालिन के धन कृष्ण को कौन बचायेगा? माता व्रज के घर-घर में जाकर ऐसा विलाप कर रही थीं, मानों करुणा ही शरीर धारण कर रो रही हो।

दोहा :— खोजत बिलपत गोप जन, निरखेउ असुर विशाल।
मृतक-वक्ष खेलत लखे, दनुज-दलन नँदलाल॥ ५४॥

विलाप करते हुए गोप भी यशोदा के साथ साथ कृष्ण को ढूँढ़ने लगे। फिर उन गोपों ने उस भारी असुर को देखा और साथ ही यह भी देखा कि दानवों के संहारक नन्दलाल उस मृत दानव की छाती पर खेल रहे हैं।

विस्मित मुदित कहत ब्रजवासी— "कस शिशु बधेउ असुर बल-राशी!"
धाय उठाय सनेह कन्हाई। देखत सब कहुँ चोट कि आयी?

ब्रजवासी आश्चर्य और हर्ष से कहते थे कि "ऐसे बली असुर का इस बालक ने किस प्रकार वध कर डाला?" सब दौड़कर कृष्ण को प्रेम से उठाकर यह देखने लगे कि कहीं उन्हें चोट तो नहीं आ गई है?

"दैत्य दुरन्त कीन्ह अपघाता। केहि विधि बचेउ बाल मृदु गाता!
यशुमति! तोहिं न आवति लाजा। भयेउ सुतहु ते बढ़ि गृह काजा!

वे कहने लगे— "असुर ने भयङ्कर धोखा किया था। (भगवान जाने) यह कोमल शरीर-वाला बालक किस प्रकार बच गया! यशोदा! तुझे लाज नहीं आती! घर का काम-काज तुझे पुत्र से भी अधिक प्यारा हो गया है!

जो तोहिं भारु भयेउ कन्हैया। बेंचि देहि ब्रज बहुत लेवैया!"
करत व्यंग ब्रज-जन यहि भाँती। यशुमति बाल लगावति छाती—

"यदि तुझे कन्हैया बोझ हो गया है तो उसे बेच क्यों नहीं देती? ब्रज में उसे खरीदने वाले बहुत लोग हैं।" ब्रजवासी इस प्रकार व्यंग करते थे और यशोदा शिशु को छाती से लगा कर कहती थीं,—

"भये सकल ब्रज लोग लबारा। कहत—'तोहिं नहिं कान्ह पियारा'॥
ईश सहाय बचेउ सुत अब की। भूलि न तजहुँ कबहुँ एकाकी॥"

"ब्रज के सभी लोग झूठे हो गये हैं। वे कहते हैं कि मुझे कृष्ण प्यारा नहीं है। इस बार

भगवान ही सहायक हुआ है, जो मेरा बालक बचा है। अब मैं कभी भी उसे अकेला नहीं छोड़ूँगी।"

दोहा :— बाढ़ेउ नित व्रज जन हृदय, हरि हित नेह अशेष।
व्योम मृगांक विलोकि जिमि, उमहत लहरि जलेश ॥ ५५ ॥

इस प्रकार व्रजवासियों के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति उसी प्रकार नित्य अपार प्रेम बढ़ने लगा, जिस प्रकार आकाश में चन्द्रमा को देख समुद्र उमंग में भर कर लहरा उठता है।

नामकरन कर अवसर आवा। गर्ग गुरुहिं वसुदेव बोलावा ॥
सुवन-रहस्य सकल समुझायी। गोकुल नँद-गृह दीन्ह पठायी ॥

जब भगवान के नामकरण-संस्कार का अवसर आया तो वसुदेव ने अपने गुरु गर्ग को बुलाया तथा उन्हें पुत्र-जन्मादि के सब रहस्य को समझा कर गोकुल में नन्द के घर भेज दिया।

राज-पुरोहित लहि मन मोदा। प्रणमे पद दोउ नंद यशोदा ॥
डारेउ बहुरि चरण शिशु आनी। लोचन लुब्ध, शिथिल मुनि-वाणी ॥

राज-पुरोहित को अपने घर में पाकर नंद और यशोदा ने प्रसन्न हो उन्हें प्रणाम किया और फिर बालक को लाकर उनके चरणों में रख दिया। उस बालक को देखकर मुनि के लोचन लुभा गये और वाणी शिथिल पड़ गई अर्थात् भावावेश के कारण उनके मुख से शब्द नहीं निकलते थे।

भाषेउ ऋषि धरि धैर्य हठाता—"जन्मे परब्रह्म साक्षाता ॥
असुर-विनाशन, जन-हितकारी। नाम कृष्ण, विष्णुहि अवतारी ॥

फिर प्रयत्न से धीरज धर कर ऋषि ने कहा, — "तुम्हारे यहाँ साक्षात् परब्रह्म भगवान का जन्म हुआ है। ये असुरों का संहार और जनता का हित करने वाले हैं। इनका नाम कृष्ण है और इनके रूप में स्वयं विष्णु ने ही अवतार लिया है।

कंस-विनाश जासु कर होई। शिशु-स्वरूप प्रकटेउ व्रज सोई ॥
पूर्व-जन्म यशुमति तप कीन्हा। दूध पियावन हित वर लीन्हा ॥

जिसके हाथ से कंस का नाश होगा, वही इस व्रज में बालरूप धारण कर प्रकट हुआ है; क्योंकि पूर्व जन्म में यशोदा ने तप कर के भगवान को दूध पिलाने का वर प्राप्त किया था।

दोहा :— बाल-केलि लीलामयी, सकल अलौकिक कर्म।
पालहु विसमय भीति तजि, प्रकटहु नहिं विभु-मर्म ॥" ५६ ॥

इनकी बाल-क्रीड़ायें भगवान की लीला का ही रूप हैं। इनके सभी कार्य अलौकिक होंगे। अतएव आश्चर्य और भय त्याग कर इनका पालन करो, परन्तु इनकी ईश्वरता का भेद किसी से प्रकट न करना।"

गवने गर्ग शूर-सुत धामा। बाढ़े इत हरि गोकुल ग्रामा ॥
भयेउ अन्नप्राशन मन भावा। शिशु मुख नंद आपु जुठरावा ॥

यह कहकर गर्ग वसुदेव के घर मथुरा लौट गये और यहाँ गोकुल में भगवान प्रतिदिन बड़े होने लगे। मन को प्रसन्न करने वाला उनका 'अन्न प्राशन' संस्कार हुआ। नंद ने स्वयं अपने

हाथों से शिशु के मुख में अन्न का स्पर्श कराया।

सद्यस्नात वदन छवि छलकि। तनु द्युति मोरचंद्र जिमि झलकी॥
भूषण वसन रुचिर पहिराये। कटि किंकिणि, गर हार सोहाये॥

अभी ही नहलाये जाने के कारण उनके मुख से शोभा मानों छलकने लगी और शरीर की आभा मोरचन्द्र के समान झलक उठी। उन्हें सुन्दर आभूषण और वस्त्र पहिनाये गये। कमर में करधनी और गले में हार शोभित हो रहे थे।

कंठ बघनखा कठुला राजत। श्याम शरीर पीत पट भ्राजत॥
शोभित शीश लाल चौतनिया। रुन झुन वजत पाँव पैंजनिया॥

कंठ में बघनखा और कठुला शोभा दे रहे थे। उनके श्याम शरीर पर पीला वस्त्र (पीताम्बर) बड़ा भला लगता था। शिर पर लाल टोपा खिल रहा था और पैरों में पैंजन रुन-झुन बज रहे थे।

मृदुल कपोल, लोल युग लोचन। भाल डिठौना, कल गोरोचन॥
लट लटकी विधु आनन छायी। पियत सुधा जनु राहु चोरायी॥

उनके गाल कोमल थे और नेत्रों में चंचलता विलस रही थी। मस्तक पर डिठौना और सुन्दर गोरोचन सुशोभित थे। बालों की लट उनके चन्द्रमा के समान मुख पर भूमकर छा गई थी, जिससे ऐसा जान पड़ता था, मानों राहु चोरी से अमृत पी रहा हो।

दोहा :— मोर चँद्रिका मनहरनि, नील नलिन तनु श्याम।
मेघ मध्य जनु इन्द्रधनु, नखत सहित अभिराम ॥ ५७ ॥

मन को हरनेवाली मोर–चन्द्रिका श्याम के नील कमल के समान शरीर पर ऐसी शोभा दे रही थी, मानों बादल के बीच में इन्द्र - धनुष सुन्दर नक्षत्रों के सहित उदित हुआ हो।

कहहिं अटपटी कलवल बतियाँ। दमकहिं अरुण अधर दुइ दतियाँ॥
उदित बाल रवि-छवि पै प्राची। दामिनि दमकि दमकि जनु नाचे॥

वे जब अटपटी मधुर वाणी बोलते थे तब लाल अधरों में दो दाँत ऐसे चमक उठते थे, मानों पूर्व दिशा में उदित बाल-सूर्य की छवि पर बिजली चमक कर नाच रही हो।

अंगुलि आभा मंजुल छायी। नख मिस मनहुँ बसेउ विधु आयी॥
बंधुक सुमन अरुण रुचि चरणा। घुटरुन चलत श्याम नँद-अँगना॥

उँगलियों में सुन्दर ज्योति सी छायी हुई थी। नख के बहाने तो मानों चन्द्रमा ही उन पर आ बसा हो। श्याम के सुन्दर चरण दुपहरिया के फूल के समान लाल थे। वे नन्द के आँगन में घुटनों के बल चलते फिरते थे।

इत यशुमति उत महर बोलावत। दोउ परस्पर होड़ लगावत।
चतुर श्याम पितु मातु रिझावहिं। बारी बारी दुहुँ दिशि धावहिं॥

एक ओर यशोदा और दूसरी ओर नंद उन्हें बुलाते थे और दोनों आपस में होड़ लगाते थे कि देखो कृष्ण किस के पास आते हैं। चतुर श्याम माता और पिता दोनों को रिझाते थे और बारी

बारी से दोनों की ओर दौड़ते थे ।

प्राँगण पार द्वार लगि आयी । लखि देहरी अटकहिं अकुलायी ॥
नाँघन चहहिं नाँघि नहिं पावहिं । गिरहिं धरणि बहु रुदन मचावहिं ॥

आँगन पार कर दरवाजे तक आते , पर देहली देख कर रुक जाते और व्याकुल हो उठते । वे देहली पार करना चाहते , पर पार नहीं कर पाते । अतएव पृथ्वी पर गिर पड़ते और बहुत रोते ।

दोहा :— जेहि बल कीन्हेउ जग निखिल , तीनिहि चरण प्रमाण ।
तेहि बल यशुदा देहरी , चढ़ि न सकत भगवान ! ५८ ॥

(कैसा आश्चर्य है कि) जिस बल से भगवान ने समस्त जगत् को तीन ही चरणों (डगों) में नाप लिया था , उसी बल से वे यशोदा की देहली पर चढ़ने में ही अपने को असमर्थ पाते हैं !

बाढ़े औरहु कछुक कन्हाई । लागे कहन यशोदहिं माई ॥
नँदहिं बाबा , बंधुहिं भैया । लै लै नाम बोलावहिं गैया ॥

कृष्ण जब तनिक और बड़े हुए , तब यशोदा को 'माई' , नन्द को 'बाबा' , बड़े भाई को 'भैया' कहने लगे और गायों को उनका नाम ले लेकर बुलाने लगे ।

सीखेउ रोटी माखन माँगन । मिलत देर मचलहिं गिरि आँगन ॥
लेहिं बहुरि बलराम बोलाई । घेरहिं जननिहिं दूनहु भाई ॥

उन्होंने माखन-रोटी माँगना सीख लिया और जब इनके मिलने में विलम्ब हो जाता तो वे आँगन में गिरकर मचलने लगते । फिर वे बलराम को बुला लेते और दोनों भाई मिलकर यशोदा माता को घेर लेते ।

कर्षत संकर्षण इत सारी । अइँचत वेणी कृष्ण पछारी ॥
आये ताहि समय नँदरायी । हँसत कहत — "भल कीन्ह कन्हाई !

एक दिन बलराम एक ओरसे उनकी साड़ी और पीछेसे कृष्ण चोटी खींच रहे थे । उसी समय वहां नन्द बाबा आगये और हँस कर कहने लगे -- "कान्ह ! तुमने यह बहुत ही अच्छा किया ।

यशुदा कृपण , कृपण--उपजायी । मोर अभाग ब्याहि घर आयी ॥
यहि भरि जन्म तात ! तरसावा । कबहुँ न माखन मोहिं खवावा ॥

यशोदा बड़ी कंजूस है । इसके माँ बाप भी कंजूस थे । मेरा दुर्भाग्य ही है कि इससे मेरा ब्याह हुआ और यह मेरे घर आई । बेटा ! इसने मुझे जन्म भर तरसाया है। मुझे कभी माखन नहीं खिलाया ।

दोहा :— कीन्ह सिखावन तुम उचित , चिरजीवहु दोउ भाय । "
दीन्ह महर अस कहि हरिहिं , माखन स्व-कर खवाय ॥ ५६ ॥

तुमने इसे उचित ही शिक्षा दी है । तुम दोनों भाई चिरजीवी हो । " ऐसा कहकर महर बाबा ने अपने हाथों से कृष्ण को माखन खिला दिया ।

महरि हृदय नहिं हर्ष समायी । सुतहिं सुनाय कहति मुसकायी —
"माखन खाये बढ़ति न चोटि । होति लाल ! पय पियतहिं मोटी ! "

नंद के विनोदको सुनकर यशोदा के हृदय में हर्ष नहीं समाता था । वे मुस्कुराती हुई कृष्ण को

सुला कर कहने लगीं, — " माखन खाने से चोटी नहीं बढ़ती। वह तो मेरे लाल ! दूध पीने से ही मोटी होती है। "

सुनतहि फेंकेउ कर ते माखन। चोटी गहि लागे पय माँगन —
"देहि अबहिं मोहिं दूध पियायी। कबहुँ न खैहों माखन माई !"

यशोदा की यह बात सुनते ही कृष्ण ने हाथसे माखन फेंक दिया और चोटी पकड़कर दूध माँगने लगे, — " मुझे अभी दूध पिला दे माई ! अब मैं कभी भी माखन न खाऊँगा।"

पियेउ घूँट दुइ दूध कन्हैया। कहत — "न बाढ़ी चोटी मैया !"
रोवत सुतहिं मातु बहरावा। अंक उठाय मयंक दिखावा॥

कृष्ण ने दो घूंट दूध पिया और तुरन्त ही कहने लगे, — " मा ! चोटी तो नहीं बढ़ी !" माँ ने रोते हुए पुत्र को बहला लिया। गोद में उठा कर उन्होंने उसे चन्द्र दिखाया।

निरखत कहत — "मीठ यह माई ! खैहों चंदा देहि मँगायी॥"
मातु विविध पकवान मँगाये। हठी कान्ह सब फेंकि बहाये॥

चन्द्रमा को देखकर कृष्ण कहने लगे, — " माँ ! यह तो मीठा है। मैं चन्द्र को खाऊँगा। तू उसे मँगा दे !" माँ ने अनेक प्रकार के पकवान मँगाये, परन्तु हठी कृष्ण ने सबको फेंक दिया।

दोहा :—उड़त चिरैयाँ कान्ह कहँ, दरसायीं बहु मात।
मानत एकहु बाल नहिं, अधिक अधिक बिरुझात — ६०॥

तब माँ ने बहुत सी उड़ती हुई चिड़ियाँ कृष्ण को दिखलाईं, परन्तु बालक कृष्ण किसी प्रकार भी नहीं माने; और भी अधिक मचलने लगे।

"लाउ मातु ! मैं चंदा लैहों। भूख लागि, मैं चंदहि खैहों॥"
खसकि अंक ते सुसकहि खीझहि। माँगत चंद्र कहाँ ते दीजहि !

" माँ ! लाओ मैं 'चन्दा' लूंगा। मुझे भूख लगी है। मैं 'चन्दा' को ही खाऊँगा ! " — ऐसा कह कर कृष्ण माँ की गोद से खिसक कर सिसकने और खीझने लगे। माँ बेचारी चिन्तित थीं कि बालक चन्द्रमा माँग रहा है। मैं उसे कहाँ से लाकर दूँ ?

मातु मनहि मन युक्ति दृढ़ायी। जल भरि थार धरेउ मँगवायी॥
"आउ रे चन्दा ! कान्ह बोलावहि। आउ ! लाल तोहि संग खेलावहि॥

मा ने मन ही मन एक उपाय सोचा। उसने पानी भरे थाल को मँगा कर (सामने) रख दिया और कहने लगी, — " रे चन्दा ! आ, तुझे कन्हैया बुला रहा है। आ, तुझे भैया अपने साथ खेलायेगा।

मधु, मेवा, पकवान मिठाई। तोहि खवावहि कुँवर कन्हाई !"
जननी जल - प्रतिबिंब देखावा — "देखु लाल ! चन्दा यहु आवा !"

शहद, मेवा, पकवान और मिठाई तुझे मेरा कुँवर कन्हाई खिलायेगा।" ऐसा कहकर माता ने कृष्णको जलमें चन्द्र का प्रतिबिम्ब दिखलाया और कहा, — " देख लाल ! यह चन्दा आ गया।"

गहन चहत जल हाथ चलावत। पकरत शशधर हाथ न आवत॥
"यह तौ झलमलात अकुलायी। इत पकरहुँ उत जात परायी !"

कृष्ण उसे पकड़नेके लिए पानी में हाथ फैलाते थे। वे चन्द्रको पकड़ना चाहते थे, पर वह हाथ

में नहीं आता था । तब वे कहने लगे कि यह तो घबरा कर झलमला रहा है । मैं उसे इधर पकड़ता हूँ तो वह उधर भाग जाता है । "

दोहा :— कहति यशोमति—"इंदु अति, तुम ते लाल ! डेरात।
जान देहु अब गेह निज, साँचहु यह अकुलात ॥ " ६१॥

तब यशोदा ने समझाया, — " लाल ! तुमसे चन्द्रमा बहुत डरता है । इसे अब अपने घर जाने दो । सचमुच यह घबरा रहा है । "

गहत हिमांशु नयन अलसाने । अंग मोरि फिरि फिरि जमुहाने ॥
लाय मातु पलना पौढ़ाये । थपकि थपकि लालन दुलराये ॥

चन्द्रमा पकड़ते पकड़ते उनके नेत्र अलसा गये । वे अङ्गों को मोड़ कर बार-बार जम्हाई लेने लगे । माँ ने उन्हें ले जाकर पलने में सुला दिया और थपकी दे देकर अपने " लाल " को वे दुलराने लगीं ।

पुनि कछु कथा कही सुखकारी । गये सोय हरि देत हुँकारी ॥
सोवत झझके जब पर्यंका । विकल जननि उपजी उर शंका —

फिर कृष्ण को अच्छी लगने वाली कोई कहानी उन्होंने सुनाई, जिससे कृष्ण 'हाँ' हाँ' कहते - कहते सो गये । जब पलने में सोते - सोते वे चौंके तो माँ विकल हो उठीं और उनके हृदय में शङ्का पैदा हो गई ।

साँझहि ते बालक बिरुझाना । बहु समुझायेउँ कहा न माना ॥
अतिशय बिलखेउ आजु कन्हाई । खेलत कोउ कुदीठि लगायी ॥

वे मन ही मन कहने लगीं, — आज साँझ से ही बालक मचला है । मैंने उसे बहुतेरा समझाया, पर उसने मेरा कहना नहीं माना । आज 'कन्हाई' बहुत ही मचला - रोया है । जान पड़ता है, खेलते समय उसे किसी ने नजर लगा दी है ।

ले ले राई नोन उतारति । कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति ॥
दोउ कर जोरि शीश लगि लावति । सजल नयन कुल-देव मनावति—

तब माँ राई और नमक ले लेकर कृष्ण की 'नजर' उतारतीं और कुछ पढ़ - पढ़ कर शरीर की बाधा को दूर करने लगीं । वे दोनों हाथ जोड़ कर अपने शिर से लगातीं और आँखों में आँसू भर कर अपने कुल - देवता को मनाती थीं कि.........

दोहा:-- "मेटहु मोरे बाल के, रोग दोष जंजाल।"
बार बार यशुमति कहेउ, सुख सोये नँदलाल ॥ ६२ ॥

"मेरे बालक के सब रोग, बाधा और कष्टों को दूर कर दो।" उन्होंने जब इस प्रकार बार-बार देवता से प्रार्थना की तब कृष्ण सुख से सोये ।

होत प्रभात जननि पुनि जागी । सुतहिं जगावति अति अनुरागी—
" विगत निशा, शशधर छवि छीणा । दुरे नखत, दीपक द्युति - हीना ॥

भोर होते ही माँ फिर से जाग गई और अत्यन्त प्रेम में भर कर पुत्र को जगाने लगीं,

—"रात बीत गई है, चन्द्रमा की छवि मलीन पड़ गई है। नक्षत्र छिप गये हैं और दीपक का प्रकाश मंद पड़ गया है।

मुँदे कुमुद-दृग, कुवलय फूले। अलि मिलि वायु-दोल हँसि झूले॥
पिक गावत, खग बोलत वाणी। जागहु! जागे सब वन प्राणी॥

कुमुदिनी मुरझा गई है। कमल खिल उठे हैं और भौरों से मिल कर हवा के झोकों में झूल-झूल कर हँस रहे हैं। कोयल गा रही है, पक्षी चहचहा रहे हैं। वन के सब प्राणी जाग उठे हैं। (हे लाल!) तुम भी जागो!

बाजी वेणु, धेनु वन जाहीं। बिछुरत वत्स विलोकि रँभाहीं॥
प्रांगण दिनमणि किरण प्रकाशी। जागहु! जागे सब ब्रज वासी॥

बंशी बज रही है, गौयें वन को जा रही हैं। अपने बछड़ों से बिछुड़ते समय उन्हें देखकर वे रँभा रही हैं। आँगन में सूर्य की किरणें चमक रही हैं। जागो, सब ब्रजवासी जाग चुके हैं।

आये द्वार सखा सब खेलन। जागहु! जागहु! कमल-दलेक्षण!"
'सखा' शब्द सुनतहि भगवाना। त्यागेउ विहँसि वदन-परिधाना॥

तुम्हारे सब सखा खेलने के लिये द्वार पर आ गये हैं। हे कमल के समान नेत्र वाले मेरे पुत्र! तुम भी जागो!" श्री कृष्ण ने ज्योंही माँ के मुख से 'सखा' शब्द सुना, त्योंही उन्होंने मुस्करा कर अपने मुख पर पड़े हुए वस्त्र को हटा दिया।

दोहा:—प्रात समय प्रभु मुख लखेउ, प्रमुदित यशुदा नंद।
मथत सिंधु जनु फेन फटि, निकसेउ पूरन चंद॥ ६३॥

नंद-यशोदा ने सवेरे भगवान के मुख का प्रसन्नता से दर्शन किया। उनका वह मुख ऐसा लगता था, मानों सिन्धु के मथे जाते समय फेन को चीर कर पूर्ण चन्द्र प्रकट हुआ हो।

धोय वदन विधु कीन्ह कलेवा। खेलन चले संग बलदेवा॥
ऊँचे चढ़ि यशुमति गोहरावहि—"दूरि लाल! जनि खेलन जावहि॥"

कृष्ण ने अपने चन्द्रमा के समान मुख को धोकर 'कलेवा' किया और फिर बलराम के साथ खेलने चल पड़े। जब कृष्ण कुछ दूर चले, तब ऊँचे स्थान पर चढ़ कर यशोदा चिल्लाने लगीं,—"लाल! दूर खेलने मत जाना।"

खेलत सुबल सुदामा साथा। होड़ा-होड़ी मारत हाथा॥
खेलत खेलत बाढ़ी रारी। हारे श्याम रोष उर भारी॥

वे सुबल-सुदामा के साथ खेलते थे और होड़ लगा कर हाथ पर हाथ मारते थे। खेलते खेलते झगड़ा हो गया। श्याम हार गये तो उनका मन भारी क्रोध से भर गया।

लखि कह हलधर हरिहिं खिझायी—"जन्मे बिनु पितु मातु कन्हाई!"
रंग भंग सुनि व्यंग रिसाने। मातु समीप आय बिलखाने—

कृष्ण की यह दशा देख कर बलराम उन्हें खिझा कर कहने लगे,—"कृष्ण! तुम तो बिना माता-पिता के पैदा हुए हो।" बलरामका ताना सुनते ही क्रोध और भी बढ़ गया। रंग में भंग हो गया। कृष्ण माता के पास आकर बिलखने लगे—

"मैया! दाऊ बहुत खिझावा। कहत—'बबा तोहि हाट बिसावा'॥
पूछत सखा—'कहाँ तव ताता'? सब मिलि कहत तुमहु नहिं माता!

"माँ, दाऊ ने बहुत खिझाया है। वे कहते हैं कि "बाबा ने तुझे बाजार में खरीदा

है ।" दूसरे सखा भी पूछते हैं कि 'तेरा पिता कहाँ है ?' सब मिल कर कहते हैं कि तुम भी मेरी माँ नहीं हो ।

दोहा :— नँद यशोदा गौर तनु। तुम कत श्याम शरीर' ?
चुटकी दै पूछत सखा, सिखै देत बलबीर ॥" ६४ ॥

वे यह भी कहते हैं कि नंद-यशोदा का शरीर तो गोरा है। फिर तुम्हारा शरीर कैसे श्याम है ? — बलराम उन्हें सिखा देते हैं। इसी से सब सखा चुटकी बजा-बजा कर मुझसे यह सब पूछते हैं।"

सुसकत श्याम कहत, अति खीझत। रोष विलोकि मातु मन रीझत ॥
" सुनहु कान्ह ! बलराम चवाई। को अस गोकुल तेहि पतियायी ?

श्याम यह कहते कहते सिसकते और खीझते जाते हैं। माँ उनका रोष भरा मुख देख मन ही मन रीझ उठतीं हैं और समझातीं हैं "कान्ह ! सुनो, बलराम तो इधर की उधर लगाने वाला है। गोकुलमें ऐसा कौन है ,जो उसकी बात पर विश्वास करता हो ?

गोधन सौं सुनु साँच कन्हैया ! मोहन पूत, यशोमति मैया ॥
कहत कार जो तोहिं लवारा। विधु ते अधिक वदन उजियारा ॥"

मैं गोधन की शपथ खाकर कहती हूँ और कन्हैया , तुम मेरी यह बात सच मानना कि "मोहन पुत्र है और यशोदा उसकी माता है।" जो तुझे काला कहते हैं वे झूठे हैं। तेरा मुख तो चन्द्रमा से अधिक उज्ज्वल है।

सुनि विहँसे हलधर दिशि हेरे। जेंवन हेतु तबहिं नँद टेरे ॥
यशुदा प्रमुदित पाँय पखारे। बैठे नँद सँग दोउ बारे ॥

यशोदा की बात सुन कर श्री कृष्ण मुस्कराये और उन्होंने बलराम की ओर ताका । उसी समय भोजन के लिए नंद ने उन्हें बुलाया। यशोदा ने प्रसन्न होकर उनके पैर धोये और तब नंद के साथ दोनों बालक (भोजन करने के लिए) बैठ गये।

थोरहि खात, बहुत लपटावत। आपु न खात, नँद - मुख नावत ॥
विहँसत पितु कछु कौर खवाये। लागि मिरि लोचन भरिच आये ॥

कृष्ण खाते तो कम थे, किन्तु शरीर पर लिपटाते अधिक थे। आप स्वयं तो खाते न थे , नंद के मुख में ही डालते थे। पिता ने हँस-हँस कर कुछ कौर उन्हें खिलाये। मिर्च का तीखापन लग जाने से कृष्ण की आँखें आँसुओं से भर गईं।

दोहा :— रोवत भागे द्वार दिशि, गोद रोहिणी लीन्ह।
फूँकति पुनि - पुनि शिशु वदन, मधुर कौर फिरि दीन्ह ॥ ६५ ॥

वे रोते हुए दरवाजे की ओर दौड़े, परन्तु बीच ही में उन्हें रोहिणी ने गोद में ले लिया। वे बार-बार बालक का मुँह चूमने लगीं और फिर उन्होंने उनके मुख में मीठा कौर दिया।

एक दिवस मनसुखा सुदामा। लाये हरिहिं बाँह गहि धामा ॥
कहेउ यशोदहिं हुहुन सुनायी — "हम देखेउ हरि माटी खायी ॥"

एक दिन मनसुखा और सुदामा श्रीकृष्ण को बाँह से पकड़कर घर ले आये और उन दोनों

ने यशोदा से यह सुना कर कहा कि हमने हरि को मिट्टी खाते देखा है । "

कह हरि— " खेल हारि ये रूठे । लाये दँड दिवावन झूठे ॥ "
यशुमति कीन्ही पुत्र प्रतीती । खेलन पठये श्याम सप्रीती ॥

तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि ये खेल में हार जाने के कारण मुझसे रूठ गये हैं, इसलिए झूठ बोल कर मुझे दंड दिलाने के लिए यहाँ ले आये हैं। " यशोदा ने पुत्र के वचनों पर विश्वास कर श्याम को प्रेम से फिर खेलने भेजा ।

सखन संग खेलत सुखदानी । निरखति सुतहिं सजग नँदरानी ॥
सहसा पुनि हरि माटी खायी । देखत महरि रोष करि धायी ॥

सुख देने वाले श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ खेल रहे थे और नन्दरानी यशोदा माता सावधानी से अपने पुत्र को ताक रही थीं । इसी बीच श्रीकृष्ण ने अचानक फिर मिट्टी खायी । यह देख कर माता क्रोध कर के दौड़ी ।

पकरेउ भुज, लीन्ही कर साँटी । पुनि पुनि कहति – " निकारहु माटी !
कैसे अब तुम मोहिं झुठैहौ । खोलहु मुख अब कहाँ दुरैहौ ? "

उसने हरि की भुजा पकड़ ली और अपने हाथ में छड़ी लेकर उनसे बार बार कहने लगीं- " मिट्टी निकालो ! अब तुम मुझे कैसे झूठा बना सकोगे ? मुँह खोलो; अब मिट्टी कहाँ छिपाओगे ? "

दोहा :— सुनत श्याम यशुमति वचन, कीन्ह वदन विस्तार ।
विकल मातु शिशु मुख लखेउ, कोटिन विश्व प्रसार ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्ण ने यशोदा के वचन सुनकर अपने मुख को फैलाया । माता शिशु के मुख में करोड़ों विश्वों का विस्तार देखकर घबड़ा गईं ।

देखे व्योम असीम अपारा । देखे अगणित रवि, शशि, तारा ॥
देखे स्वर्ग, नरक, पाताला । देखे दनुज, मनुज, सुर, व्याला ॥

उसने श्रीकृष्ण के मुख में अपार आकाशों को देखा, अनगिनती सूर्य, चन्द्रमा और तारों को देखा; स्वर्ग, नरक और पातालों को देखा ; राक्षस, मनुष्य, देवता और सर्पों को देखा ;

देखे नदि, नद, सर, वन नाना । देखे सिंधु, सुमेरु महाना ॥
कर ते साँटि गिरत नहिं जानी । मूँदे नयन जननि अकुलानी---

अनेक नदियों, नदों, सरोवरों और भांति भांति के वनों को देखा और विशाल समुद्रों तथा सुमेरु पर्वतों को देखा । माँ ने घबराकर दोनों हाथोंसे अपने नेत्र बन्द कर लिये । उसे यह भी पता न चला कि उसके हाथ से छड़ी छूटकर कब गिर गयी ।

" पाहि ! पाहि ! मैं पाहि ! कन्हाई ! मूँदहु वदन मातु वल जायी ॥
हरि निज माया वेगि दुरायी । कहत — " नाहिं मैं माटी खायी ॥

वह चिल्लाकर कहने लगी – ' कृष्ण, मेरी रक्षा करो ! रक्षा करो ! मां बलैया लेती है, अपना

मुँह बन्द करो।" श्रीकृष्ण ने माँ को दुःखी जानकर अपनी माया को शीघ्र ही छिपा लिया और साधारण बालक के समान कहने लगे, – "मा ! मैंने मिट्टी नहीं खाई !"

तोहु निशिदिन दोष लगावति। जब देखहु साँटी लै धावति॥"
सुनत बैन मृदु नैन उघारे। खेलत देखेउ बाल दुआरे॥

तुम भी दिनरात मुझ पर दोष लगाया करती हो और जब देखो तब डंडा लेकर दौड़ पड़ती हो।" श्रीकृष्ण के ये मधुर वचन सुनकर जब यशोदा ने अपनी आँखें खोली तो उन्हें कृष्ण द्वार पर खेलते हुए दिखाई पड़े।

दोहा :— कथा सुनायी सब पतिहिं , चकित चित्त नँदरानि।
कहत महर — "फलिहै सकल, गर्ग कही जो बाणि॥" ६७॥

नंदरानी यशोदा ने अपने पति को श्रीकृष्ण के मुख-दर्शन की जब सब कथा सुनाई तो वे कहने लगे कि गर्ग ने जो कुछ भविष्य-कथन किया था, वह सब सत्य सिद्ध होगा।

गोपी एक नंद-गृह आयी। देखे माखन खात कन्हाई॥
मन हीं मन अभिलाष बढ़ावै। कबहुँ श्याम मोरे दधि खावै॥

एक गोपी नंद के घर आयी और उसने कृष्ण को माखन खाते देखा। वह मन ही मन यह अभिलाषा करने लगी कि कैसा अच्छा हो यदि श्याम मेरे यहाँ आकर दही खायें !

गुनि वत्सलता तासु रसेशा। कीन्ह प्रात उठि भवन प्रवेशा॥
प्रमुदित गोपी लखत लुकानी। पहुँचे हरि जहँ धरी मथानी॥

रस-श्रेष्ठ भगवान श्रीकृष्ण ने उस गोपी के हृदय का वात्सल्य-भाव परख लिया और दूसरे दिन प्रातःकाल ही उठ कर उसके घर में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण को अपने यहाँ आया देख कर गोपी प्रसन्न हो छिपकर उनकी 'लीला' देखने लगी। हरि भी जहाँ मथानी रखी हुई थी, वहाँ पहुँच गये।

पायी माखन भरी कमोरी। खान लगे प्रभु चोरी चोरी॥
चितवत चहुँ दिशि कहुँ कोउ नाहीं। लखी खम्भ आपनि परिछाहीं॥

श्रीकृष्ण भरी हुई कमोरी पाकर उसमें से मक्खन चुरा चुराकर खाने लगे, परन्तु साथ ही चारों ओर यह भी देखते जाते थे कि कहीं कोई है तो नहीं ! इतने ही में उन्होंने खम्भे में अपनी परछाईं देखी।

पूछत, "को तुम ? कवन पठावा ? अब लगि केतिक माखन खावा ?"
हँसी ठठाय सुनत व्रजबाला। भागे भय-विह्वल नँदलाला॥

अपनी परछाईं को देखकर वे उससे पूछने लगे कि "तुम कौन हो ? तुम्हें किसने भेजा है ? अब तक तुमने कितना मक्खन खाया है ?" यह सुन कर गोपी खिल खिलाकर हँस पड़ी, जिसे सुनते ही भय से घबड़ा कर नंदलाल श्रीकृष्ण भाग गये।

दोहा :— फैली गोकुल बात जब, चोरत माखन श्याम।
व्रज-वनिता घर-घर कहहिं, कब अइहैं सुख-धाम॥ ६८॥

जब गोकुल में यह बात फैली कि श्याम माखन चुराकर खाते हैं तो घर घर गोपियाँ कहने लगीं कि सुख देने वाले श्रीकृष्ण कब हमारे घर आकर मक्खन चुराकर खायेंगे ?

हरिहु भवन प्रति रस बरसावा । गोप-बधुन सुख-सिंधु नहावा ॥
सखा सकल सँग लेहिं बोलायी । शून्य सदन प्रभु पैठहिं धायी ॥

हरि ने भी घर घर जाकर 'माखन-चोरी' की लीला कर रस बरसाया और गोपियों को सुख के सागर में नहलाया । प्रभु सभी सखाओं को बुला लेते और सूने घर में दौड़कर घुस जाते थे ।

माखन खाहिं, दूध ढरकावहिं । दही काढ़ि मुख अंग लगावहिं ॥
गृह भाजन सब डारहिं फोरि । देहिं धेनु बछरन कहँ छोरी ॥

वे घर में जाकर माखन खा जाते और दूध के बर्तन को लुढ़का देते थे तथा दहीको निकालकर मुख और अन्य अंगों में लगा लेते थे । (इतने से ही वे संतुष्ट न होते थे) वे घर के सब बर्तनों को भी फोड़ डालते और गायों तथा बछड़ों को छोड़ देते थे ।

दरस-परस-सुख, बतरस लागी । सहहिं सकल उत्पात सभागी ॥
गहि सस्नेह हृदय भरि लेहीं । छटपटाहिं पै जान न देहीं ॥

वे भाग्यवान गोपिकायें भगवान के दर्शन और स्पर्श का सुख लूटने तथा उनकी बातों के रस के लोभ में उनके सब उपद्रवों को सहती थीं । वे प्रेम से उन्हें पकड़ कर हृदय से लगा लेतीं और उनके छटपटाने पर भी जाने न देती थीं ।

भागहिं हरिहु हाथ झकझोरी । कंचुकि फारि हार गर तोरी ॥
खीझहिं गोपी पाछे धावहिं । उरहन लै यशुमति ढिग आवहिं—

हरि भी गोपियों के हाथ को झटक, उनकी चोली फाड़ तथा गले का हार तोड़कर भाग जाते थे । इन व्यापारों से खीझकर गोपियाँ उनके पीछे दौड़ती थीं और उलहना लेकर यशोदा के पास पहुँचती थीं ।

दोहा :— "उपजायेउ अद्भुत तनय, अरी यशोमति मात !
को बसिहै नँद-गाँव अब, सहि नित के उत्पात ॥ ६६ ॥

वे यशोदा से कहतीं—"माता ! तुमने अनोखा पुत्र पैदा किया है । इसके रोज रोज के उत्पात सहकर अब कौन नंद के गाँव में बसेगा ?

दिन प्रति करत दूध-दधि हानी । कब लगि सहहिं कानि नँद मानी ॥
सीखेउ चढ़ब सखन के काँधे । बचत न भाजन छींके बाँधे ॥

यह प्रतिदिन दूध-दही का नाश करता है । नंदबाबा का लिहाज करके हम कब तक इसका उपद्रव सहें ? बर्तनों को सीकों पर बांध कर रख देने पर भी दूध-दही नहीं बच पाता, क्योंकि इसने अपने सखाओं के कन्धों पर चढ़ना सीख लिया है ।

भवन एक हरि हँसत ठठायी । परत गान गृह अन्य सुनायी ॥
करत व्यंग गृह तीसर श्यामू । एकहि क्षण प्रविशत बहु धामू ॥"

एक घर में हरि खिलखिलाकर हँसता है, दूसरे घर में उसका गाना सुनाई पड़ता है और तीसरे घर में वह ठठोली करता पाया गया है । इस प्रकार एक ही समय में कृष्ण अनेक घरों में घुस जाता है ।"

सुनि अनहोनी महरि रिसानी । मन मुसकाय कही हरि बानी —
"मया ! ये सब मोहिं बोलावहिं । मैं भागउँ गहि कंठ लगावहिं ॥

यशोदा इस प्रकार की अनहोनी बातें सुनकर जब कोपित हो उठीं तो मन ही मन मुस्कुराकर

श्रीकृष्ण कहने लगे कि "मा ! ये सब मुझे बुलाती हैं और जब मैं भागता हूँ तो मुझे पकड़ गले से लगा लेती हैं।

तुइ इनके नहिं गुन कछु जानति। जो ये कहहिं साँच सोइ मानति !"
सुनत वचन गोपिन हँसि दीन्हा। बाल कृष्ण तन मन हरि लीन्हा ॥

तू इनकी करतूतों को तनिक भी नहीं जानती, इसीलिये तो ये जो कुछ कहती हैं तू सब को सच मान लेती है।" श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर गोपियाँ हँस पड़ीं। उनकें बाल-रूप ने सबका तन-मन हर लिया था।

दोहा :—कहति यशोमति—"गोपिका, मदमाती इतराहिं।
काहे चोरहिं श्याम दधि, घर माखन नहिं खाहिं॥" ७०॥

यशोदा कहतीं,—मतवाली गोपियें यों ही इतराती हैं। भला श्याम दही चुराने उनके घर क्यों जायगा ? वह तो अपने घर का ही माखन नहीं खाता।"

श्याम चरित लखि ब्रज जन रीझहिं। चोरी सुनि सुनि यशुमति खीझहिं॥
गोपी कछुक उरहने आयीं। गहि हरि हाथ साथ निज लायीं॥

श्याम के बाल-चरित्रों को देख कर ब्रजवासी प्रसन्न होते और उनकी चोरियों का उपालंभ सुन सुनकर यशोदा खीझतीं। एक दिन कुछ गोपियां उलाहना लेकर उनके पास आईं और कृष्ण को भी हाथ पकड़कर अपने साथ लायीं।

"लखहु महरि यहि को उपजावा ? कवन पिता कर पूत कहावा ?
चोरी करत मिलेउ घर माहीं। तनय तुम्हार होय की नाहीं ?"

वे यशोदा से कहने लगीं, — "देखो मालकिन, इसे किसने पैदा किया है और यह किस पिता का पुत्र कहलाता है ? यह घर में चोरी करते पाया गया है ! पहचान कर देखो, यह तुम्हारा बेटा है कि नहीं ?

गोपिन-उपालंभ सुनि माता। उर रिस-ज्वाल, जरे जनु गाता॥
ढूँढ़ि कहूँ ते डोरी लाई। लागी बाँधन पकरि कन्हाई॥

गोपियों के उलहने सुनकर माता के हृदय में क्रोध की ज्वाला उठी, जिससे उनका सारा शरीर जैसे जलने लगा। वे कहीं से रस्सी ढूंढ़ लाईं और कृष्ण को पकड़कर बाँधने लगीं।

दुइ आँगुर नहिं पूरति डोरी। माँगि माँगि घर-घर ते जोरी॥
हरिहु विलोकि अंब-विकलाई। लीन्ह सकौतुक अंत बँधायी॥

बाँधते समय दो अंगुल रस्सी कम पड़ गई। यशोदा ने उसे पूरी करने के लिये घर घर से डोरी माँगकर जोड़ी। फिर भी वह पूरी नहीं हुई। हरि ने जब माता की विकलता देखी तो अंत में खेल खेल में अपने को बँधा लिया।

दोहा :—यमलार्जुन तरु जहँ अजिर, लै आयी गहि मात।
ऊखल ते बाँधेउ जबहिं, डोले तरुवर पात॥ ७१॥

जहाँ पुराने दो अर्जुन के पेड़ थे, वहाँ वह उनके हाथ पकड़कर ले गईं और ज्योंही उसने उन्हें ऊखल से बाँधा, त्योंही उन वृक्षों के पत्ते हिलने लगे।

विटप विलोकत प्रभु पहिचाने । दोउ कुबेर-सुवन मन जाने ॥
नल, कूबर कैलास-निवासी । शिव-प्रसाद पायी धन-राशी ॥

वृक्षों को देखते ही प्रभु ने पहिचानकर मन में विचारा कि ये दोनों कुबेर के पुत्र हैं। कैलाशवासी नल और कूबर ने शिवजी के वरदान से अपार धन प्राप्त किया था ।

वार-वधू अप्सरन समेतू । गवने कानन क्रीड़ा हेतू ॥
सुरसरि-तीर कीन्ह मद पाना । धँसे करन जल नग्नस्नाना ॥

एक दिन वे वेश्याओं और अप्सराओं के साथ वन में विहार करने गए थे । गंगा के किनारे पहुँचकर उन्होंने सुरा का पान किया और नंगे होकर स्नान करने के लिए पानी में उतरे ।

मुनि नारद आये तेहि काला । पहिरे वस्त्र लजानीं बाला ॥
सकुचे पै नल, कूवर नाहीं । अचल, विहीन वसन जल माहीं ॥

उसी समय नारदमुनि वहाँ पहुँच गये , जिन्हें देखकर स्त्रियों ने, लजाकर वस्त्र धारण कर लिये , परन्तु नल और कूबर को संकोच नहीं हुआ । वे बिना वस्त्र के ही जल में स्थिर खड़े रहे ।

कोप भयंकर मुनिवर कीन्हा । शाप कुबेर-सुतन कहँ दीन्हा—
"रहे अचल जल तुम अविचारी । होहु विटप व्रज-मण्डल भारी ॥

तब नारद मुनि ने भयंकर क्रोध किया और उन दोनों कुबेर-पुत्रों को शाप दिया कि "तुम मूर्ख! जल में नग्न ही खड़े रहे, इसलिए व्रजमण्डल में जाकर भारी वृक्ष हो जाओ ।"

दोहा :— द्वापर युग चौथे चरण, जब श्रीहरि अवतार ।
बाल कृष्ण निज कर कमल, करिहैं मोद तुम्हार ॥" ७२ ॥

द्वापर युग के चौथे चरण में जब श्री हरि कृष्णावतार धारण करेंगे, तब बालकृष्ण के कर-कमलों से तुम्हारी मुक्ति होगी । "

यमलार्जुन ये तरुवर सोई । डोले गुनि विमुक्ति जनु दोई ॥
यह रहस्य नहिं यशुमति जाना । बाँधे कसि ऊखल भगवाना ॥

ये वे ही दो अर्जुन के वृक्ष थे । ये दोनों अपनी मुक्ति निकट समझकर ही मानों प्रसन्नता से हिल उठे । यशोदाने इस गूढ़ बातको नहीं जाना । उन्होंने तो भगवानको ऊखलसे कसकर बाँध दिया ।

कहति—"न अब उरहन मैं सहिहौं । चोरी साँटी मारि भुलइहौं ॥
लागहिं अगणित यहि घर गइया । सेवक गोप असंख्य दुहैया ॥

वे कहने लगीं कि अब मैं और उलहने नहीं सहूँगी । तेरी चोरी भी छड़ी की मार से भुला दूंगी । इस घर में अगणित गायें लगती हैं और उनको दुहनेवाले असंख्य गोप सेवक हैं ।

चलहिं महर घर सहस मथानी । सीखी सुत चोरी कै बानी ॥
कोउ छोरै जनि ढीठ कन्हैया"— अस कहि गयी काज-हित मैया ॥

नंद के घर (माखन निकालने के लिए) हजारों मथानी चलती हैं, फिर भी पुत्र ने चोरी की आदत सीखी है । कोई इस ढीठ कृष्ण को आकर बँधन से न छोड़े ।"—ऐसा कह कर माता गृह-कार्य करने चली गई ।

माखन-कण शशि-मुख छवि छाजत । लोचन लोल अश्रु-कण राजत—
उडुगण सहित निशा-मन मोहत । शशधर स्रवत सुधा जनु सोहत ॥

श्रीकृष्ण के चन्द्रमा के समान मुख पर मक्खन के कण और चंचल नेत्रों में आँसू के बूंद इस

प्रकार शोभित हो रहे थे, मानों रात के मन को मोहने वाले तारों के साथ चन्द्रमा अमृत टपका रहा हो।

दोहा—त्रास-चपल गोलक विमल, सजल विलोचन छोर।
वंशी-वेधी मीन जनु , करति वारि झकझोर ॥७३॥

उनकी निर्मल पुतलियाँ भय के कारण चँचल थीं और आँखों के कोने आँसुओं से भरे हुए थे। वे चँचल पुतलियाँ उन आँसुओं सहित ऐसी लगती थीं, मानों वंसी से बिंधी दो मछलियाँ पानी में झकझोर कर रही हों।

देखि दशा गोपी पछितानी। यशुमति ढिग आयीं अकुलानी॥
"पाँय परहिं हम छोरहु माई। हिचकिनि रोवत कुँवर कन्हाई॥

श्रीकृष्ण की ऐसी दशा देखकर गोपियाँ पछताने लगीं (कि उन्होंने यशोदा को व्यर्थ क्यों उलहना दिया) और व्याकुल होकर यशोदा के पास पहुँच कहने लगीं --"माता! हम आपके पैरों पड़ती हैं। कन्हैया हिचकी भर-भर कर रो रहा है। तुम उसे छोड़ दो!

औरहु घर ते माखन लावहिं। हम अपने कर हरिहिं खवावहिं॥
सुत कुल-दीपक शुचि मणि धामा। वारिय तेहि पै गोधन ग्रामा॥"

हम अपने घर से और माखन ले आती हैं और अपने ही हाथों उन्हें खिलायेंगी। पुत्र तो कुल का दीपक होता है और निर्मल मणियों की खान, उस पर गो-धन और गाँव भी निछावर किये जा सकते हैं।"

सुनि यशुमति औरहु बिरुझानी। भागीं गोपी, महरि रिसानी —
"तनिक तुम्हार कान्ह दधि खावा। घर - घर गोकुल नाम धरावा॥

गोपियों के ये वचन सुन कर यशोदा और बिगड़ उठीं, जिससे गोपियाँ तो भागने लगीं और यशोदा क्रोधित हो कहने लगीं—"कान्ह ने तुम्हारा थोड़ासा दही खा लिया तो तुमने गोकुल के घर घर में उसको बदनाम किया।

सही न रंच श्याम-लरिकाई। अब मोहिं माखन देत मँगाई॥
तब मन तनिक न धीरज आना। अब मोहिं चलीं सिखावन ज्ञाना॥"

तुमने पहिले तो श्याम के बचपन को तनिक भी सहन नहीं किया और अब मुझे माखन मँगाकर दे रही हो! उस समय तो मन में तनिक भी धैर्य न रखा और अब मुझे बड़ा ज्ञान सिखाने चली हो!"

दोहा—छोरे यशुमति श्याम नहिं, भयी दुपहरी बेर।
गोपिन तब बलभद्र ढिग, जाय सुनायी टेर — ७४॥

जब दोपहर का समय हो जाने पर भी यशोदा ने श्याम को नहीं छोड़ा, तब गोपियों ने बलराम के पास जाकर पुकार की।

"भोरहि ते तुम्हार लघु भैया, बाँधेउ ऊखल यशुमति मैया।"
सुनतहि हलधर व्याकुल धाये, लखत बन्धु लोचन भरि आये॥

वे उनसे कहने लगीं,—"सबेरे से ही तुम्हारे छोटे भैया को यशोदा माता ने ऊखल से बाँध रखा है।" यह सुनते ही बलराम व्याकुल होकर वहाँ दौड़ गये, जहाँ श्रीकृष्ण बँधे हुए थे। अपने

भाई को उस दशा में देखकर उनकी आँखों में आँसू भर आये ।

जननि-समीप कहत कर जोरी—"देहि मातु ! अब भैयहिं छोरी ॥
काहे हरिहिं दीन्हि अस त्रासा, गोरस केहि कर केतिक नासा ?"

उन्होंने माता के पास पहुँच हाथ जोड़कर कहा,----"मा ! अब भैया को छोड़ दो । तुमने हरि को इतना कष्ट क्यों दिया ? उसने किसका कितना गोरस नष्ट किया है ?"

उत लीलापति अवसर पायी । ऊखल यमल विटप अटकायी ॥
झटकेउ हठि, तरु गिरे विशाला । व्याप्त ओर चहुँ रोर कराला ॥

उधर लीलापति श्रीकृष्ण भगवान ने अवसर पाकर ऊखल को दोनों पेड़ों में फँसाकर ज़ोर से झटका दिया । वे विशाल वृक्ष गिर पड़े और उनके गिरने से चारों ओर भयंकर शब्द छा गया ।

भँजि वृक्ष नल-कूबर तारे । पाय मोक्ष निज लोक सिधारे ॥
दौरि परे इत ब्रज नर-नारी । महर-दुआर भीर भइ भारी ॥

वृक्षों को उखाड़कर उन्होंने नल और कूबर का उद्धार किया, जो मुक्त होकर अपने लोक को चले गये । इधर ब्रज के स्त्री-पुरुष वृक्षों के गिरने की आवाज सुनकर दौड़ पड़े और नंद के दरवाजे पर भारी भीड़ इकट्ठी हो गई ।

दोहा—निरखेउ यशुमति अजिर-दिशि, दिखे नाहिं घनश्याम ।
दिखेउ उलूखल नाहिं कहुँ, दिखी नाहिं कहुँ दाम ॥ ७५ ॥

यशोदा ने जब आँगन की ओर देखा तो उन्हें न कहीं श्याम दिखाई दिए, न कहीं ऊखल और न कहीं रस्सी ही दीख पड़ी ।

बिलखी यशुदा बोध बिसारा—"मैं कस बाँधेउँ प्राण-अधारा !"
रहे घरिक चकृत ब्रजवासी । हरि--गति अगम न मानस भासी ॥

यशोदा सुधबुध भूलकर विलाप करने लगीं—"मैंने अपने प्राणाधार को क्यों बाँधा ?" ब्रजवासी क्षण भर तक भौंचक्के से रह गये । हरि की अगम लीला का अनुमान कोई न कर सका ।

कोउ गगन तकि दृष्टि लगायी । हेरत विटपन कोउ शिर नायी ॥
"बही न तनिकहु कतहुँ बयारी । कस ये गिरे महीरुह भारी !"

कोई आकाश की ओर एकटक दृष्टि जमाए हुए था, तो कोई शिर झुकाए वृक्षों को देख रहा था । वे परस्पर कह रहे थे कि "तनिक भी कहीं हवा नहीं चली और ये भारी पेड़ उखड़कर कैसे गिर गये ?"

लखे द्रुमन-बिच पुनि घनश्यामा । वैसहि ऊखल, वैसिहि दामा ॥
त्रस्त, प्रीत, विस्मित नँदरायी । छोरेउ धाय यशोमति माई ॥

फिर उन्होंने उन वृक्षोंके बीच श्रीकृष्ण को ऊखल और रस्सीसे पहिले की तरह बँधे हुए देखा । नंद प्रेम-विह्वल और आश्चर्य चकित हो गये तथा यशोदा माता ने दौड़कर बँधे हुए कृष्ण की रस्सी छोड़ दी ।

कहत कान्ह—"मैं गयेउँ डेरायी । लुकेउँ विकल ऊखल तल जायी !"
सुनि शिशु वचन हँसे नर-नारी । गवने गृह विस्मय हिय धारी ॥

कृष्ण कहने लगे—"पेड़ों के गिरने से मैं डर गया, और इसलिए घबरा कर ऊखल के नीचे

छिप गया।" बालक के यह वचन सुनकर स्त्री-पुरुष हँस पड़े। वे आश्चर्य भरे हृदय से अपने अपने घर गये।

दोहा:—"वज्र देह हरि कै"—कहहिं, जहाँ तहाँ ब्रज लोग।
"नित उठि परति विपत्ति नव, नित्य बचत विधि-योग॥" ७६॥

ब्रजवासी यहाँ-वहाँ यह कहते थे कि "हरि की देह वज्र की है। नित्य नई-नई आपदायें आती हैं और नित्य ही भाग्य-वश वे बच जाते हैं।"

गोकुल निरखि उपद्रव नाना। खोजेउ ब्रजजन अन्यस्थाना॥
वृन्दावन शोभन सुखकारी। प्रचुर वारि तृण, गो-हितकारी॥

गोकुल में अनेक प्रकार के उपद्रव होते देख कर ब्रजवासियोंने रहने के लिए एक दूसरा स्थान खोज लिया। वह स्थान था सुन्दर, सुखद वृन्दावन, जहाँ गाय़ों के अनुकूल पर्याप्त पानी तथा चारा था।

कहेउ महर, गोपन मन माना। गृह-गृह सबन सजाये याना॥
चले समोद शकट चढ़ि गावत। श्याम चरित इक एक सुनावत॥

नंद महर की वृन्दावन में बसने की बात गोपों के मन को भा गई। घर घर सभी ने छकड़ोंको सजाकर प्रस्थान की तैयारी की और वे उन पर चढ़कर प्रसन्नता के साथ गाते और आपस में एक दूसरे से कृष्ण-चरित्र की चर्चा करते हुए चले।

विरमि कीन्ह वृन्दावन वासा। विरचे लखि सुपास आवासा॥
चंद्राकृति इक खरिक बनावा। बाँधे धेनु वत्स सुख छावा॥

ठहरकर उन्होंने वृन्दावन में वास किया और सब प्रकार की सुविधा देखकर अपने गृह बनाये। उन्होंने चन्द्र की आकृति की एक गो-शाला बनाकर उसमें अपनी गौयें तथा बछड़े बाँधे। इस प्रकार अपने तथा गौओं के रहने का प्रबन्ध हो जाने पर सबके मन में सुख छा गया।

गहन अरण्य चरहिं नित गाई। ग्वाल बाल खेलहिं हर्षायी॥
बैठहिं सब कदंब तरु छाहीं। वृन्दावन सम वन कहुँ नाहीं॥

गायें नित्य घने वन में चरती थीं और ग्वाल-बाल प्रसन्नता के साथ वहाँ खेलते थे। वे सब कदंब तरु की छाया में बैठा करते और कहते कि वृदावन के समान रमणीय वन अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

दोहा:—परम रम्य यमुना वहति, स्वच्छ, सुशीतल नीर।
बहत वेणु श्रृंगी-स्वरित, मंद, सुगन्ध समीर॥ ७७॥

यहाँ अत्यन्त सुन्दर यमुना बहती है, जिसका स्वच्छ और अत्यंत शीतल जल है। यहां धीमी-धीमी सुगन्धित वायु बहती है, जिसमें वंशी और श्रृंगी (सींगसे बना हुआ एक प्रकार का बाजा) का स्वर सुन पड़ता है।

लखी विकीर्ण विपिन प्रभु शोभा। उपजेउ उर गोचारण-लोभा॥
चले प्रभात विपिन जब ग्वाला। चले लागि पाछे नँदलाला॥

जब भगवान श्रीकृष्ण ने वन में बिखरी हुई शोभा देखी तो उनका जी गौ चराने के लिए

ललच उठा। एक दिन प्रातः काल जब गोप वन की ओर जाने लगे तो वे भी उनके पीछे पीछे हो लिए।

निरखि यशोमति आतुर धाई—"कान्ह! कान्ह!" कहि टेर लगायी॥
भागे हरि कहि—"धेनु चरइहौं। भयेउँ सयान न मातु डेरइहौं॥

उन्हें वन की ओर जाते देख यशोदा घबरा कर दौड़ पड़ीं और उन्होंने 'कान्ह! कान्ह!' की टेर लगा दी। हरि यह कह कर भाग गये कि "मैं गाय चराऊँगा। माँ! मैं बड़ा हो गया हूँ। डरूँगा नहीं!

जाय जमुन-जल पैठि नहइहौं। भूख लगे मैं वन-फल खइहौं॥"
माता विविध भाँति समुझावा। कहति-"आजु वन हाऊ आवा॥"

यमुना के जल के भीतर पैठ कर नहाऊँगा और भूख लगने पर वन के फल खालूँगा।" माता ने बहुत प्रकार से समझाया कि कृष्ण वन में न जायें और वे न माने तो उन्हें डराने के लिए कहने लगीं,—"वन में आज 'हाऊ' आया है!"

एकहु जब न सुनी घनश्यामा। पकरि हाथ सौंपे बलरामा—
"देखत रहेहु, कान्ह मम बारे। लौटेहु आजु विशेष सवारे॥"

जब श्रीकृष्ण किसी उपाय से भी न रुक सके--उन्होंने माँ की एक बात भी न सुनी-तब माँ ने उनका हाथ पकड़ कर बलराम को सौंप दिया और कहा—"मेरा कान्ह अभी छोटा है, इसलिए इसे ताकते रहना और आज जल्दी ही लौट आना।"

दोहाः—शृंगी फूँकत गोप सब, श्याम बजायी वेणु।
गो बछरा उछरत चले, चली उड़ति पथ रेणु॥ ७८॥

सब गोपों ने शृंगी और श्याम ने वेणु बजाई। गौ और बछड़े उछलते हुए चले जा रहे थे और मार्ग में धूल उड़ती जाती थी।

सजल जलद छवि श्याम शरीरा। शोभित तड़ित-कांति कटि चीरा॥
कंध, वक्ष, युग बाहु विशाला। हृदय पदिक, सर्वाङ्गन माला॥

श्याम का शरीर जल भरे बादल के समान सुन्दर था, जिस पर कमर का पीताम्बर बिजली की आभा की तरह शोभा बढ़ा रहा था। उनके कंधे, वक्षस्थल और दोनों बाहु विशाल थे। वे हृदय पर पदिक पहने थे और गले से पदों तक लम्बी माला।

कुंडल युगल लोल अभिरामा। मंजुल मृदु कपोल छवि धामा॥
भव्य ललाट रेख गोरोचन। ललित चंद्रिका, तरल विलोचन—

कानों में सुन्दर कुण्डल झूल रहे थे। उनके कोमल कपोल सौन्दर्य की खानि थे। भव्य ललाट पर गोरोचन की रेख थी। शिर पर सुन्दर चन्द्रिका सुशोभित थीं। चंचल नेत्र ऐसे लगते थे मानों.........

कुवलय दल अलि-बाल बँधाये। चहत उड़न जनु उड़न न पाये॥
अरुण अधर दशनन द्युति सोही। धरे लालमणि मुक्ता पोही॥

....कमल दल से नन्हें भौंरे बँधे हुए हैं, जो उड़ना तो चाहते हैं पर उड़ नहीं सकते। लाल होठों में दाँतों की चमक ऐसी शोभा दे रही थी, मानों लाल मणियों में मोती पिरोये गए हों।

बोलत बैन सुमन बरसावत। स्रवत सुधा हँसि वेणु बजावत॥
काँधे कामरि लकुटी सोही। गो चारत हरि विश्व विमोही॥

वे जब बोलते थे, तो ऐसा लगता था, मानों फूल बरसा रहे हैं और जब हँस कर वेणु बजाते थे तो ऐसा प्रतीत होता था मानो अमृत चू रहा है। उनके कन्धे पर कमली और 'लकुटी' सुशोभित थीं। अपने रूप से विश्व को मोहते हुए हरि गो चराते थे।

दोहा:—सखन-संग खेलत कबहुँ, कबहुँ चरावत गाय।
नाचत कबहुँ कदम्ब-तल, मुरली मधुर बजाय॥ ७९॥

वे कभी सखाओं के साथ खेलते, कभी गाय चराते, कभी कदम्ब-तरु के नीचे मधुर मुरली बजा बजाकर नाचते थे।

खेलत ग्वालन संग कन्हैया। बगरे विपिन वत्स अरु गैया॥
इतनेहि महँ वत्सासुर आयी। वत्स-वृन्द महँ गयेउ समायी॥

जब ग्वालों के साथ कृष्ण खेल रहे थे तब गाय और बछड़े जंगल में यहां वहां फैल गये। इतने ही में वहां वत्सासुर आकर बछड़ों में मिल गया।

जानि दैत्य-कैतव बनवारी। पहुँचे क्रम-क्रम तासु पछारी॥
सहसा कर खल-पूँछ लगायी। हतेउ पटकि तरु-मूल कन्हाई॥

वन विहारी श्रीकृष्ण उस असुर का छल जानकर धीरे धीरे उसके पीछे पहुँच गये और हाथ से उस दुष्ट की पूंछ पकड़कर उन्होंने उसे पेड़ की जड़ पर पटक कर मार डाला।

घहरेउ कानन, जीव डेराने। चकित सखा, गो-वत्स पराने॥
पहुँचे साँझ जबहिं व्रज माहीं। कहेउ वृत्त हरि यशुमति पाहीं—

उसके पछाड़ खाने से विपिन घहर उठा और वन के जीव जन्तु डर गये। कृष्ण के सखा चकित हो गए तथा गो-बछड़े भाग गए। सायँकाल को जब हरि ब्रज में पहुँचे तो उन्होंने यशोदा से यह समाचार कहा, —

"निकसेउ वन ते जैसेहि हाऊ। भागे मोहिं छाँड़ि बलदाऊ॥
मइया! दीन्ह न कोउ सहारा। सुमिरि तोहिं मैं हाऊ मारा॥"

"जैसे हा वन से 'हाऊ' निकला, बलदाऊ मुझे छोड़कर भाग गये। मैया! मुझे जब किसी ने सहारा न दिया तो मैंने तेरे नाम का स्मरण कर उस 'हाऊ' को मार डाला।

दोहा:—लेति बलैया मातु सुनि, पुनि पुनि हृदय लगाय—
"बरजेउ केतिक कान्ह! मैं, गो चारण जनि जाय॥" ८०॥

कृष्ण के ये वचन सुनकर माँ ने उनकी बलैया ली। बार बार उन्हें छाती से लगाया और कहने लगीं,—"कान्ह! मैंने तुझे कितनी बार रोका था कि गौ चराने मत जा!"

नित वन फिरत चरावत धेनू। संग विपुल व्रज-बालन-सेनू॥
एक दिवस सुरभिन तन हेरा। वेणु बजाय सखन कहँ टेरा॥

कृष्ण नित्य वन में धेनु चराते फिरते थे। उनके साथ व्रज-बालकों की बड़ी टोली रहती थी। एक दिन उन्होंने गौवों की ओर देखा और वंशी बजाकर सखाओं को बुलाया।

"घेरि धेनु जमुना-तट लावहु। भयीं तृषित सब वारि पियावहु॥"
चले श्याम जस सखन लेवायी। बसेउ बकासुर तेहि मग आयी॥

उनके आ जाने पर उन्होंने कहा,—गौओं को घेरकर यमुना तट पर ले जाओ, क्योंकि ये सब प्यासी हो गई हैं। इन्हें पानी पिलाओ।" सखाओं को लेकर ज्योंही श्याम चले, त्योंही बकासुर उस मार्ग में आ बैठा।

चंचु अवनि-तल एक लगायी। अंबर माहिं द्वितीय समायी॥
आवत ग्वाल वाल जो आगे। कहन सभीत श्याम सन लागे—

उसकी चोंच का नीचे का हिस्सा पृथ्वी थल पर लगा था और दूसरा आकाश में समाया हुआ था। जो ग्वाल वाल आगे चल रहे थे, वे डर कर श्याम से कहने लगे,—

"धावहु! निरखहु! आय कन्हाई! निवसेउ मार्ग जंतु कछु आयी॥
आवत नित हम गैयन संगा। लखेउ न वन अस कवहुँ विहंगा!"

"कृष्ण! दौड़ो, आकर देखो! मार्ग में कोई जन्तु आकर बैठ गया है। हम नित्य गौओं के साथ आते हैं परन्तु हमने ऐसा पक्षी कभी नहीं देखा।"

दोहा:— पहुँचे हरिहु विहंग ढिग, लखेउ वदन विस्तार—
इत धरणी, उत व्योम बिच, विकट गुहा आकार॥ ८१॥

सखाओं के वचन सुनकर हरि भी उस पक्षी के निकट पहुँचे और उन्होंने उसके मुख का ऐसा विस्तार देखा, मानों धरती और आकाश के बीच में कोई भयंकर गुफा हो।

निदरत दैत्य बढ़े हरि आगे, 'हा! हा!'—करत सखा सब भागे—
"तनिकहु शेष न जीवन आशा। करिहै खग निश्चय हरि ग्रासा॥"

हरि उस दैत्य की उपेक्षा कर जब आगे बढ़े तो 'हाहाकार' करते हुए सब सखा पीछे भाग गये और कहने लगे कि हरि के जीवन की अब तनिक भी आशा नहीं है। वह पक्षी उनको अपने मुंह का कौर अवश्य बना लेगा।"

मूँदेउ चंचु खगहु अघ-खानी। लीलेउ विभुहिं वाल लघु जानी॥
प्रविशे हरिहु उदर बनि आगी। जरी ज्वलंत फैलि तनु लागी॥

उस पाप की खानि पक्षीने भी अपनी चोंच बन्द कर ली और भगवानको छोटा बालक जानकर निगल गया। हरि भी उसके उदर में आग बनकर प्रविष्ट हो गये, जो उसके शरीर में जलकर ज्वाला सी फैल गयी।

उगिलेउ आकुल, हरि ललकारा। पकरि चंचु बक फारि पँवारा॥
बधेउ पलहि महँ खल नँदलाला। पतित मही मृत, शब्द कराला॥

तब उसने घबराकर जैसे ही हरि को उगला, वैसे ही उन्होंने उसे ललकारा और उस 'बक' को चोंच पकड़ कर चीर फेंका। पल भर में नंदलाल ने उस दुष्ट का वध कर डाला। जब वह मृत होकर पृथ्वी पर गिरा तो चारों ओर भयंकर नाद गूंज उठा।

सुनि स्वर कहत सखन बलरामू—" निहति बकासुर आवत श्यामू ॥ "
परी श्रवण तेहि क्षण हरि वाणी—" घेरि पियावहु गैयन पानी ॥ "

विकराल स्वर सुनकर बलराम सखाओं से कहने लगे कि, —"बकासुरको मारकर श्याम आते ही हैं। इतने ही में हरि की यह वाणी सुन पड़ी,—" गौओं को घेर कर पानी पिलाओ।"

दोहा :— मिलत सखन प्रमुदित हृदय, धेनु पियावत नीर।
पुनि पुनि भेंटत भरि भुजन, ग्वाल-बाल बलवीर ॥ ८२ ॥

हरि प्रसन्न हृदय से सखाओं से मिले और गौओं को पानी पिलाया। वे बलराम और ग्वाल बालों को भुजाओं में भर कर उनसे बार बार भेंट कर रहे थे।

राखीं धेनु सघन तरु छाहीं। मज्जत मुदित जमुन-जल माहीं ॥
उत यशुमति इक गोप पठावा। छाक लिए वृन्दावन आवा ॥

गौओं को पेड़ों की सघन छाया में कर वे हर्षित हो यमुना जल में स्नान करने लगे। उधर यशोदा ने एक गोप को भेजा जो * 'छाक' लिए वहां आया।

तोरि तमाल द्रोण निरमाये। उत्पल-पल्लव शिला बिछाये ॥
व्यंजन वनफल संग सजाये। हास हुलास सखन सँग खाये ॥

कृष्ण ने तमाल के वृक्ष के पत्ते तोड़कर दोने बनाये और कमल के पत्ते शिला पर बिछा दिये। वन-फलों के साथ पकवानों को सजाकर श्रीकृष्ण ने सखाओं के साथ भोजन किया।

गवनीं बहुरि चरन वन गैया। लागे खेलन खेल कन्हैया ॥
भयी साँझ मधु बाजेउ वेणू। चलीं रँभात भवन-दिशि धेनू ॥

उधर गायें पुनः वन में चरने चली गईं और इधर कृष्ण खेल खेलने लगे। साँझ होने पर वेणु बजी और गायें रँभाती हुई घर की ओर चलीं।

ताही समय अघासुर आयी। हरि-पथ बसेउ वदन फैलायी ॥
असुर-प्रपंच समुझि विश्वेशा। कौतुक ही मुख कीन्ह प्रवेशा ॥

उसी समय अघासुर आकर, जिस मार्ग से हरि जा रहे थे, उसी पर अपना मुँह फैला कर बैठ गया। विश्वेश्वर श्रीकृष्ण असुर छल को समझ कर खेल खेल ही में उसके मुँह में चले गये।

दोहा :— प्रविशीं सुरभी वत्स सह, ग्वाल बाल, बलराम।
अघासुरहु मूँदेउ वदन, निरखि पूर्ण निज काम ॥ ८३ ॥

बछड़ों सहित गौयें तथा ग्वाल-बाल और बलराम भी उसके मुख में प्रविष्ट हो गये। अघासुर ने भी अपना मनोरथ पूर्ण जान कर मुँह बन्द कर लिया।

मूँदत मुख उपजी अँधियारी। निशि जनु घिरी बादरी कारी ॥
सूझत नहिं कछु हाथ पसारे। "त्राहि! त्राहि!" सब हरिहिं पुकारे—

उसके मुख मूँदते ही अँधियारी छा गई और ऐसा भासने लगा, मानों रात में काली घटा

* 'छाक' दोपहर को वन में किया जाने वाला भोजन—'कलेवा'

घिर आई हो। हाथ फैलाने पर कुछ भी नहीं सूझता था। सब "त्राहि, त्राहि" कर हरि को पुकारने लगे—

"कहँ हलधर ? कहँ कुँवर कन्हाई ? कहाँ परे हम केहि वश आयी ?"
कह हरि विहँसि — "गुहा यह नाहीं, हम सब परे असुर-मुख माहीं॥

"हलधर कहाँ हैं ? हमारे 'कुँवर कन्हाई' कहाँ हैं ? किसके फेर में हम कहाँ आ पड़े हैं ?" गोपों की पुकार सुन हरि ने हँस कर कहा, —"यह कोई गुफा नहीं है। हम सब असुर के मुँह में पड़े हैं।

धीरज धरहु तो होय उवारा। तनिक तनिक सब करहु सहारा॥"
अस कहि हरि निज देह बढ़ायी। बढ़त बढ़त बहुतै बढ़ि जायी॥

यदि तुम सभी धैर्य रख कर थोड़ा थोड़ा सहारा दो तो उद्धार हो जाय।" ऐसा कहकर हरि ने अपनी देह फैलाई जो बढ़ते बढ़ते बहुत ही बढ़ गई।

अंधकार, कछु सखन न जाना। बढ़त भये हरि असुर समाना॥
बाढ़ी अघासुरहु विकलाई। बहुत बढ़े हरि सहि नहिं जायी॥

अंधकार होने से सखाओं को कुछ पता भी न चला और कृष्ण बढ़ते बढ़ते असुर के समान हो गये। इससे अघासुर की भी विकलता बढ़ गई। हरि इतने बढ़े कि वह सह नहीं सका।

दोहा :— ब्रह्मरंध्र अघ कर फटेउ, निकसे हरि तेहि द्वार।
कहत टेरि —"निकसहु सखा, ईश कीन्ह उद्धार!" ८४॥

उस पापी का ब्रह्मरंध्र फट गया, जिसके द्वार से हरि बाहर निकले और पुकार कर कहने लगे— "सखा ! निकलो। परमात्मा ने हम सबका उद्धार किया।"

मरत असुर विनसेउ अँधियारा। चौंधे दृग विलोकि उजियारा॥
दैत्य देह लखि सूखे प्राणा। "बचे आजु साँचहु हम जाना॥

असुर के मरते ही अँधकार नष्ट हो गया। प्रकाश को देखकर सखाओं की आँखों में चकाचौंधी छा गई, पर जब उन्होंने उस दैत्य की देह देखी तो उनके प्राण सूख गये और वे कहने लगे, "अब हमने जाना कि आज सचमुच बच ही गये !

धन्य ! धन्य ! तुम धन्य मुरारी ! अब जानेउँ हम तुम अवतारी॥"
कहत विहँसि हरि बात बनायी। "मारेउँ मैं, तुम भये सहायी॥"

हे मुरारी ! तुम धन्य हो ! अब हमने जाना कि तुम अवतारी पुरुष हो।" हरि बात बनाते हुए हँस कर बोले, —"जब तुमने सहायता दी, तब कहीं मैं उसे मार पाया।"

प्रमुदित सकल चले व्रज ओरा। हरिहिं सराहत नेह न थोरा॥
उत ब्रह्मा मन माहिं विचारत। को यह कृष्ण असुर संहारत ?

इसके बाद सब प्रसन्न हो हरि को खूब प्रेम से सराहते हुए ब्रज की ओर चले। उधर ब्रह्मा मन में सोचने लगे कि यह कौन कृष्ण है जो असुरों का संहार कर रहा है ?

चहत जहाँ तहँ करत प्रवेशू। धारत रहत नित्य नव वेषू॥
रहेउ सृष्टि-मर्याद मिटायी। लेहौं शक्ति-थाह ब्रज जायी॥

वह जहाँ चाहता है, प्रविष्ट हो जाता है और नित्य नए वेश धारण करता रहता है। यह सृष्टि की मर्यादा नष्ट कर रहा है। मैं ब्रज जाकर उसकी शक्ति की थाह लूँगा।

दोहा:—सृजन समय नहिं जो सकेउ, नापि कमल निज गेह।
नापन चाहत आजु सोइ, विश्वाधार सदेह॥ ८५॥

सृष्टि के समय जो अपने निवास-स्थान कमल को भी नहीं नाप सका, वही साकार विश्वाधार भगवान को नापना चाहता है!

कृत-निश्चय चतुरानन आये। चारत सुरभिन हरि वन पाये॥
ग्वाल-बाल वत्सहु सब गाईं। ब्रह्मलोक लै गये चोरायी॥

निश्चय कर ब्रह्मा ब्रज पहुँचे; जहाँ उन्होंने वन में हरि को गौयें चराते हुए पाया। ब्रह्मा सब ग्वाल-बाल, धेनु और बछड़ों को चुराकर ब्रह्मलोक ले गये।

बिछुरे बालक धेनु हेरानी। विधि करतूति हृदय हरि जानी॥
कीन्हेउ कौतुक द्रुत बनवारी। विरचे वैसेहि सकल सँवारी॥

गोप बालक बिछड़ गये और गौएं गुम हो गईं। हरि ने मन ही मन ब्रह्मा की करतूत जान ली। तब वनमाली ने शीघ्र ही एक कौतुक (खिलवाड़) किया। वह यह कि ब्रह्मा जो गो-बालक और धेनु वत्स ले गए थे, वैसे ही गो-बालक, धेनु और बछड़ों की उन्होंने रचना कर डाली।

वैसेहि रूप, वाहि सब रँगा। वैसिहि प्रकृति, वाहि बल अंगा॥
वैसेहि साज, वाहि सब नामा। वैसेहि साँझ चले सब ग्रामा॥

उनके वही रूप, वही रंग, वही स्वभाव, वही शरीर-बल, वही साज और वही सब नाम थे। साँझ होने पर वे सब उसी प्रकार ग्राम की ओर चले।

वैसेहि गोपद धूरि उड़ावत। वैसेहि सखा बजावत गावत॥
वैसेहि सर्व सदन हरि आने। चकित चतुर्मुख हृदय लजाने॥

गायों के पैरों से वैसी ही धूल उड़ती जा रही थी और सखा भी उसी प्रकार बजाते-गाते थे। हरि सब को पूर्ववत् घर ले आये। यह देखकर ब्रह्मा आश्चर्य में पड़ गए और हृदय में बड़े लज्जित हुए।

दोहा:—छण विधि ब्रज-छण लोक निज, छण आवत, छण जाय।
दुइ दुइ देखत दोउ थल, गोप, वत्स अरु गाय॥ ८६॥

ब्रह्मा क्षण में ब्रज, क्षण में अपने लोक जाते-आते और दोनों स्थानों पर उसी प्रकार के दो दो गोप, बछड़े और गायें देखते थे।

आवत जात वर्ष इक बीता। भयेउ मनहिं मन विधिहु सभीता॥
प्रकटेउ प्रभु ब्रह्मा मन ज्ञाना। मिटेउ मोह, विनसेउ अभिमाना॥

इस प्रकार आते-जाते पूरा एक वर्ष बीत गया। ब्रह्मा मन ही मन भयभीत हो गए।

भगवान ने ब्रह्मा के मन में ज्ञान पैदा किया,जिससे उनका मोह और अभिमान दूर हो गया।

लै सँग बालक, बछरा, गाई। आयेउ गोकुल हरि शरणाई॥
"धिक! धिक! मोहिं उपजेउ अस मोहा। कीन्हेउ चौर-कर्म, प्रभु-द्रोहा॥

वे अपने साथ बालक, बछड़े और गौओं को लेकर गोकुल हरि की शरण में पहुँचे और कहने लगे, – "मुझे धिक्कार है कि मेरे मन में ऐसा मोह उत्पन्न हुआ, जिससे मैंने चोरी का कर्म किया और प्रभु से द्रोह भी किया।

मैं विधि एक लोक निर्माता। रोम रोम प्रभु बँधे विधाता॥
प्राकृत नरहु योग अपनायी। चमत्कार बहु सकत देखायी॥

मैं ब्रह्मा तो एक ही लोक का बनाने वाला हूँ और प्रभु के रोम रोम में ब्रह्मा बँधे हुए हैं। साधारण मनुष्य भी योग सीख कर अनेक चमत्कार दिखा सकता है।

तुम योगेश, योग साकारा। योग शक्ति सिरजत भव सारा॥
यह नहिं तनिकहु नाथ बड़ाई। विरचे कछुक गोप-सुत गाई॥

परन्तु आप योगेश हैं; स्वयं योग-मूर्ति हैं और 'योग-शक्ति' ही सारे विश्व की सृष्टि करती हैं। तब नाथ! यह आपके लिए कौन बड़ी बात है कि आपने कुछ गोप-बाल, और गौओं की रचना कर डाली।

दोहा:—संसृति-अणु अणु व्याप्त तुम, प्राण रूप भगवान।
चीन्हेउँ प्रभुहिं न वेष यहि, छमहु मोर अज्ञान॥" ८७॥

हे भगवान! आप संसार के अणु अणु में प्राण रूप में व्याप्त हैं। मैंने आपको इस वेश में नहीं पहिचाना। इसलिये मेरे अज्ञान को क्षमा करें।"

उत ब्रह्मा निज लोक सिधारे। इत हरि अन्य चरित विस्तारे॥
एक दिवस खेलत ब्रज खोरी। देखी श्याम राधिका भोरी॥

उधर ब्रह्मा अपने लोक को चले गये और हरि ने इधर अन्य चरित्रों का विस्तार किया। एक दिन ब्रज की गली में खेलते समय श्याम नें भोली राधिका को देखा।

जनु कछु क्षीर-सिंधु सुधि आयी। औचक मोहित भये कन्हाई॥
पूछत श्याम,–" काह तुव नामा? को तुव पिता? कवन तुव ग्रामा?

उसे देखते ही वे सहसा उस पर मोहित हो गये,मानों उन्हें क्षीर सागर की कुछ याद हो आई। वे उससे पूछने लगे, "तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम किस ग्राम में बसती हो?

पहिले कबहुँ न परी लखायी। आजु कहाँ ब्रज खेलन आयी?"
"पितु वृषभानु विदित ब्रजनामा। बरसाना कछु दूरि न ग्रामा॥

"पहिले तो तुम कभी नहीं दिख पड़ीं। आज ब्रज में कैसे खेलने चली आई?" श्याम के

प्रश्नों के उत्तर में राधिका बोलीं, "मेरे पिता वृषभानु का नाम ब्रज में सर्वत्र प्रसिद्ध है। मैं बरसाना गाँव की रहने वाली हूँ, जो कुछ भी दूर नहीं है।

राधा मैं, तुम कहँ भल जाना, चोर! चोर! कहि जग पहिचाना!"
मुदित श्याम कह मधु मुसकायी—"लीन्हेउँ काह तुम्हार चोरायी?"

मैं राधा हूँ। तुमको खूब जानती हूँ। संसार तुम्हें 'चोर' के नाम से जानता है।" (यह सुन कर) श्याम ने प्रसन्न हो मुस्कुराते हुए पूछा,—"भला मैंने तुम्हारा क्या चुरा लिया है?"

दोहा :— समुझे वचन न राधिका, लखति हरिहिं अनिमेष।
बूड़ति उबरति दृष्टि जनु, सुषमा-सिंधु अशेष॥ ८८॥

राधिका ने कृष्ण के व्यंग-वचन नहीं समझे, वह हरि को अपलक नेत्रों से देखती रही। उस समय ऐसा लगता था, मानों उसकी दृष्टि अपार सुन्दरता के सिन्धु में डूबती-उतराती हो।

हर्षित हरि भाषेउ पुनि सैनन, "आयेउ साँझ खरिक सँग खेलन॥"
"अइहौं"— कहेउ प्रकट हँसि बाला, गवनी भवन वियोग विहाला॥

फिर हरि ने प्रसन्न हो उसे आँखों से संकेत करके कहा,—"शामको गो-शाला में साथ खेलने के लिये आना।" उस बाला ने भी प्रकट रूप से (सरलता-पूर्वक) हँसकर उत्तर दिया कि "आऊँगी।" और वियोग से व्याकुल होकर घर चली गई।

"साँझ भयी दोहनी दे मैया! खरिक जाय दुहिहौं निज गैया॥"
बरजति जननि कुँवरि नहिं मानी, श्याम मूर्ति हिय माहिं समानी॥

जब शाम हुई तो उसने अपनी माता से कहा कि, "माँ दोहनी दे। गो-शाला में जाकर अपनी गायों को दुहूँगी।" माँ रोकती रही पर बालिका नहीं मानी, क्योंकि श्याम की मूर्ति हृदय में समाई हुई थी।

आतुर पहुँची खरिक किशोरी, लखे न श्याम विकल मति भोरी।
कबहूँ इत कबहूँ उत डोलति, लेति उसास, कृष्ण मुख बोलति॥

वह किशोरी घबराई हुई सी गो-शाला में पहुँची। पर जब उस भोलीने वहाँ श्याम को नहीं देखा तो वह विकल हो गई। अतएव कभी यहाँ, कभी वहाँ जाती और उसासें भरकर मुख से 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करती थी।

नंद संग देखे हरि आवत, शीश मोर-पख, मुरलि बजावत।
लीन्ह महर राधहिं पहिचानी, बोलि श्याम सौंपे हित मानी—

इतने ही में उसने नंद के साथ मोरपंख शिर पर धारण किए और मुरली बजाते हुए हरि को आते हुए देखा। महर ने राधा को पहिचान लिया और बुलाकर श्याम को सप्रेम हवाले कर दिया।

दोहा :— "तुम वृषभानु-कुमारिका, खेलहु संग कन्हाय।
रहेउ विलोकत बाल मम, मारहिं जनि कोउ गाय॥ ८९॥

उन्होंने कहा,—"वृष भानु कुमारी! तुम 'कन्हाई के साथ खेलना और मेरे बालक को देखती रहना। उसे कहीं कोई गाय मार न दे।

जब लगि खरिक गनहुँ निज गाई, तब लगि लावहु कान्ह खेलायी॥"
गये नंद, आयी हरि पाहीं, कहति राधिका दै गल बाहीं—

जबतक मैं गो-शाला में अपनी गायें गिनता हूँ तब तक तुम कृष्ण को खेला लाओ।" यह

कहकर जब नंद चले गये तब राधा हरि के पास पहुँची और गलबाहीं देकर उनसे कहने लगीं—

"अब छाँड़हुँ नहिं जाणहु कन्हाई। सौंपेउ तुमहिं मोहिं नँदरायी॥"
नवल गोपाल, नवेली राधा। उमहेउ नवल सनेह अगाधा॥

"कन्हाई ! अब मैं तुम्हें क्षण भर को भी नहीं छोडूँगी। तुम्हें तो नंद बाबा ने मुझे सौंप दिया है।" गोपाल नवेले थे और राधा भी नवेली थी। अतः दोनों के हृदय में गहरा नवल स्नेह उमड़ उठा।

नवल पीत पट, नवलहि सारी। नवल कुंज क्रीड़त बनवारी॥
नवल जमुन-जल, नवल तमाला। नवल पुलिन, नव नव बनमाला॥

कृष्ण का नया पीताम्बर था और राधिका की नई साड़ी थी। नवीन उपवन में वनमाली क्रीड़ा कर रहे थे। यमुना का नवल जल बह रहा था, और सम्मुख नवल तमाल वृक्ष भी सुशोभित हो रहा था। नदी का कछार भी नवल था और नई नई वनमालाएँ थीं।

नवल अरण्य, नवल तरु शाखा। उपजी हृदय नवल अभिलाखा॥
राधा-माधव सँग सोहाये। नवल चँद्र पै नव घन आये॥

नया वन तथा नये तरु और शाखा थे। उन दोनों के हृदयों में नई अभिलाषा उत्पन्न हुई। राधा-माधव जब साथ साथ सुशोभित हुए तब ऐसा लगा, मानों नए चंद्र पर नया घन छा गया हो।

दोहा:—बरसत नव रस मेघ नव, भीजे तन मन प्राण।
मिले कामना काम दोउ, मिले भक्ति भगवान॥९०॥

वह नया मेघ नव-रस की मानों वर्षा कर रहा था, जिससे उनके तन, मन, प्राण भीग उठे। उनका मिलन ऐसा लगता था, मानों कामना और काम मिले हों अथवा भक्ति और भगवान का मिलन हुआ हो।

नंदराय इत ढूँढ़त आवत, "राधा! माधव!" कहि गोहरावत॥
कहत कान्ह — "बादर घिरि आवा, इन मोहिं लै यहि कुञ्ज दुरावा॥

इधर नंदराय जब उन्हें ढूँढते हुए और "राधा! माधव!" पुकारते हुए वहाँ पहुँचे तब कृष्ण ने कहा कि "बादल घिर आया था, जिससे इसने मुझे इस कुंज में छिपा रखा था —

मोहिं बचावत आपुहि भीजी," सुनत बैन राधा मन रीझी॥
महर कुँवरि घर हरि सँग आनी। राधा छवि लखि महरि लोभानी॥

मुझे बचाने में यह स्वयं भीग गई।" कृष्ण के यह वचन सुनकर राधा मन ही मन रीझ उठी। नंद महर हरि के साथ ही राधा को भी ले गये। राधा का रूप देख कर यशोदा लुभा गईं।

प्रकटी प्रीति पास बैठारी। वेणी गुहि, रचि माँग सँवारी॥
गोरे भाल बिन्दु इक कीन्हा। नील निचोल लाय नव दीन्हा॥

उनके हृदय में राधा के प्रति प्रेम जाग उठा और उन्होंने उसे अपने पास बैठा कर उसकी वेणी गूँथी और सुन्दर माँग सँवार दी। उसके गोरे मस्तक पर एक बिन्दी लगा दी और नयी नीली ओढ़नी लाकर उसे दी।

तिल, मेवा, चाँवरी, बतासा। धरे महरि लै राधा पासा॥
कहति बहुरि— "खेलहु हरि संगा"। सुनि राधा मन द्विगुण उमंगा॥

महरि ने राधा के पास तिल, मेवा, चाँवरी तथा बताशे लाकर रख दिए और फिर वे उससे

कहने लगीं,—"जाओ, हरि के साथ खेलो।" यह सुनते ही राधा के मन में दुगुनी उमंग छा गई।

दोहा :— खेलति खीझति श्याम सँग, धरति तजति हरि बाँह।
मनहुँ तड़ित प्रकटति दुरति, सजल घोर घन माँह ॥ ६१ ॥

वह श्याम के साथ खेलती-खीझती थी; कभी उनकी बाँह पकड़ती और कभी छोड़ देती थी। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानों सजल घने मेघ के बीच बिजली कभी प्रकट होती और कभी छिप जाती हो।

गयी भवन वृषभानु-कुमारी। गवने गो-चारन बनवारी ॥
पहिले धेनुक कंस पठावा। हलधर तेहि पल माहिं नसावा ॥

वृषभानुकुमारी राधा अपने घर गई और वनमाली श्रीकृष्ण गौ चराने चले गये। वहाँ पहिले कंस ने धेनुकको भेजा, जिसका बलराम ने पल भर में संहार कर डाला।

पुनि प्रलंब आयेउ वन माहीं। बनेउ सखा कोउ जानेउ नाहीं ॥
ताहू कहँ बलराम सँहारा। सुनेउ कंस उर ताप अपारा ॥

फिर प्रलंब वन में पहुँचा और उसने एक सखा का रूप धारण कर लिया जिससे उसे किसी ने नहीं पहिचाना। उसका भी बलराम ने संहार कर दिया। जब कंस ने यह समाचार सुना तो उसके हृदय में अपार दुःख छा गया।

सूझेउ नहि जब नृपहिं उपायी। पहुँचे नारद मधुपुर आयी ॥
कह मुनि — "बसत जमुन-जल व्याला, काली नाम महा विकराला ॥

जब राजा कंस को कुछ उपाय नहीं सूझ रहा था उसी समय नारद मथुरा जा पहुँचे और कंस से कहने लगे,—"यमुना के जल में काली नामक बड़ा भयंकर नाग रहता है।

सोवत जागत फणि फुफकारत। सतत प्रतप्त वारि विष झारत ॥
दूरि दूरि लगि जमुना माहीं। तेहिं भय जीव जन्तु नहिं जाहीं ॥

"वह सोते-जागते फुफकारता रहता है, जिससे विष झरा करता है और वहाँ का पानी सदा खूब गरम रहता है। उसके भय से दूर दूर तक यमुना में जीव-जन्तु नहीं जाते।

दोहा :— गरल-ज्वाल जरि जात सब, तट तरुवर तृण पात।
तप्त वात डोलत, लगत, उड़त विहग गिरि जात ॥ ६२ ॥

यमुना-तट के पेड़, तृण और पत्ते सब विष की लपटों से जल जाते हैं। वहाँ गर्म वायु चलती है। जब वह उड़ते हुए पक्षियों को लग जाती है तो वे नीचे गिर जाते हैं।

फूलत कमल तहाँ जल माहीं। व्यापत व्याल गरल तिन नाहीं ॥
अब लगि जीव न रचेउ विधाता। सकहि पाय जो दह-जलजाता ॥

"वहाँ जल में जो कमल खिलते हैं उन पर नाग के विष का प्रभाव नहीं पड़ता। अभी तक विधाता ने ऐसे प्राणी की रचना नहीं की जो 'कालीदह' के कमलों को प्राप्त कर सके।

नंद महर ढिग पठवहु पाती। माँगहु कमल मिटहि आराती ॥"
मोद कंस मन सुनि मुनि वाणी। भयेउ काज सोचत अज्ञानी ॥

"अतएव तुम नंद महर को पत्र लिख कर उस कमल की माँग करो। इससे तुम्हारे शत्रु का

नाश हो जायगा।" मुनि की वाणी सुनकर कंस का मन प्रसन्न हो गया। उस मूर्ख ने सोचा कि काम बन गया।

चतुर दूत पुनि भूप बोलायी। पाती महर समीप पठायी॥
उत लखि नृपति दूत नँद-धामा। सचकित व्रजजन, खरभर ग्रामा॥

फिर राजा ने चतुर दूत को बुलाकर उसके हाथ नंद महर को पत्र भेजा। उधर नंद के गृह नृप-दूत को आया देख कर व्रजवासी आश्चर्य में डूब गये और गाँव भर में खलबली मच गई।

पाती बाँचत महर डेराना। कंप शरीर, विकल मन प्राणा॥
भयी भीर बड़ि नंद-दुआरे। सोचत गोप-वृन्द मन मारे॥

कंस की चिट्ठी पढ़कर महर भयभीत हो गये। उनका शरीर काँपने लगा और उनके मन और प्राण में विकलता छा गई। नंद के द्वार पर बड़ी भीड़ लग गई। गोपोंके समूह उदास हो विचारमें डूब गये।

दोहा :— लिखेउ नृपति—"दिन तीनि महँ, मिलहिं कमल जो नाहिं।
नासहुँ जन गोधन सकल, बचै न कोउ व्रज माहिं॥" ६३॥

पत्र में राजा ने लिखा था कि यदि "तीन दिनोंके भीतर मुझे कमल न मिले तो मैं समस्त जन और गो-गोधन का नाश कर डालूंगा-व्रज में कोई भी जीवित नहीं बचेगा।"

करिय कहा अब कवन उपायी। को भूपहिं समुझावहि जायी॥
सकै तोरि जो गहि नभ तारा। सकै सोखि जो उदधि अपारा॥

गोपों को यही चिन्ता थी कि अब क्या किया जाय? किस उपाय से काम लिया जाय? कौन जाकर राजा को समझाये? वस्तुस्थिति तो ऐसी है कि जो आकाश के तारे को पकड़ कर तोड़ सकता है, जो अपार समुद्र को सोख सकता है—

सकै जो फूँकि सुमेरु उड़ायी। सकै सोउ नहिं कमलन लायी॥
कहत महर — "मोहिं नहिं निज शोचू। तनिकहु नहिं धन धाम सँकोचू॥

जो सुमेरु पर्वत को फूंक कर उड़ा सकता है, वह भी वहाँ के कमलों को नहीं ला सकता। महर कहते थे—"मुझे अपनी चिन्ता नहीं है, मुझे धन-धाम के नाश का भी विचार नहीं हो रहा है।

हतिहै सुतन कंस अघघाती। दहकति सोचि सोचि यह छाती॥"
सुनि बोले हरि—"कमलन लइहौं। जनि डरपहु, मैं सबहिं बचैहौं॥"

परन्तु पापी कंस मेरे बालकों का वध करेगा, यही सोच सोच कर मेरी छाती जल रही है।" महर के वचन सुनते ही हरि बोल उठे—"मैं कमलों को ले आऊँगा। आप लोग डरे नहीं, मैं सब को बचाऊँगा।"

बाल-वचन कोउ कान न दीन्हा। खेलन हेतु गमन हरि कीन्हा॥
श्रीदामा-गृह श्याम सिधारे। लै कंदुक सब सखा हँकारे॥

परन्तु उस समय बालक कृष्ण की बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। हरि खेलने के लिये

घर से बाहर चले गये । वे श्रीदामा के घर गये और गेंद लेकर उन्होंने सखाओं को बुलाया ।

दोहा :—व्रज बाहर जमुना-निकट । बाल मण्डली संग ॥
क्रीड़त मारत गेंद सब । ताकि एक इक अंग ॥ ६४ ॥

व्रज के बाहर यमुना नदी के पास सब बाल-मण्डली एक एक को ताक कर गेंद मारती और खेलती थी ।

मारत एक लेत इक दाँऊ । नहिं जानत हरि रचेउ उपाऊ ॥
सखा अन्य खेलत सुख पावत । हरि एकहि दिशि गेंद चलावत ॥

एक मारता और दूसरा दाँव लेता था । वे नहीं जानते थे कि कृष्ण ने एक उपाय रचा था । दूसरे सखा तो खेलते और सुखी होते थे, परन्तु हरि एक ही दिशा में गेंद फेंकते जाते थे ।

आयेउ जैसेहि जमुन-किनारा । गेंद श्याम श्रीदामहिं मारा ॥
गयेउ सखा मुरि अंग बचाई । परेउ गेंद कालीदह जायी ॥

खेलते खेलते जैसे ही सब यमुना के तट पर पहुँच गये, श्याम ने श्रीदामा को तक कर गेंद मारा । पर सखा ने मुड़कर अपने शरीर को बचा लिया, जिससे गेंद कालीदह में जा गिरी ।

रिस श्रीदामा उर अति बाढ़ी । कहत—"गेंद लावहु हरि काढ़ी !
जानि बूझि तुम गेंद पँवारा । नहिं आपन-पर कीन्ह विचारा ॥"

श्रीदामा के मन में बड़ा क्रोध बढ़ गया । वह कहने लगा – "हरि ! गेंद निकाल कर लाओ । तुमने जान बूझकर वहाँ गेंद फेंकी है । तुमने अपने-पराये का विचार नहीं किया ।"

पकरि फेंट पुनि पुनि झकझोरा, चितये हरि कालीदह ओरा ॥
झटकि हाथ निज फेंट छोड़ायी, धाये कालीदह समुहायी ॥

श्रीकृष्ण के 'फेंट' (कमर में बँधी धोती) को पकड़ कर उन्हें बार बार झँझकोरा तब हरि ने कालीदह की ओर देखा । हाथ झटक कर अपनी फेंट को छुड़ाया और वे कालीदह के सामने दौड़ पड़े ।

दोहा :— धाय बहुरि लौटे सकल, विकल लागि विष झार ॥
उत कदम्ब तरु हरि चढ़े, कूदत लागि न बार ॥ ६५ ॥

कृष्ण के पीछे दौड़ कर सब (सखा) पीछे लौट आये और विष की लहरों के लग जाने से विकल हो गये । उधर हरि को कदम्ब के पेड़ पर चढ़ कर 'दह' में कूदने में देर नहीं लगी ।

कूदत हरि उछरेउ दह-नीरा, दिखि न परेउ पुनि श्याम शरीरा ॥
वही पूर्ववत् जमुना धारा, मचेउ सखन बिच हाहाकारा ॥

हरि के कूदते ही दह का पानी तो उछला पर फिर श्याम का शरीर दिखलाई नहीं पड़ा । (उधर) यमुना की धारा पहिले के समान बढ़ने लगी और (इधर) सखाओं के बीच हाहाकार मच गया ।

विलपत कहत सकल श्रीदामहिं — "गेंद लागि मारेउ घनश्यामहिं ॥"
इत यशुमति मन शोच बढ़ावा, भयेउ विलम्ब कान्ह नहिं आवा ॥

वे सब विलाप कर श्रीदामासे कहते "(निगोड़ी) गेंद के पीछे तूने घनश्याम को मार डाला ।"

इधर यशोदा के मन में चिन्ता बढ़ गई कि—देर हो गई और कान्ह नहीं आया।

खोजन चली छींक भइ भारी, लौटि अजिर दिय दोष निवारी॥
चली बहुरि निकसी मार्जारी, काटेसि राह, विकल महतारी॥

जैसे ही वे खोजने निकलीं और जोरसे छींक हुई तो देहली पर बैठ कर उन्होंने उसका दोष दूर कर दिया। जब दुबारा चलीं तो बिल्ली ने निकलकर रास्ता काट दिया। यह देखकर माता और भी विकल हो गई।

नंदहु घर आवत मन मारे, रोवत देखे श्वान दुआरे॥
परसि शीश इक काग उड़ाना, काँपे महर अशुभ अति माना॥

जब नंद घर उदास मन से आ रहे थे तो उन्होंने भी दरवाजे पर कुत्तों को रोते हुए देखा। इसी बीच एक कौआ शिर को छूते हुए उड़ गया। इसे महर ने अत्यन्त अशुभ माना और वे (भावी अनिष्ट की) आशङ्कासे काँप उठे।

दोहा :—सदन प्रविशि यशुदा लखी, दीन दुखी द्युति-हीन॥
पूछत—"भामिनि! कान्ह कहँ, काहे वदन मलीन॥" ६६॥

घर में जब वे पहुँचे तो उन्होंने यशोदा को दीन, दुःखी और कान्तिहीन देखा। वे पूछने लगे —"महरि! कान्ह कहाँ है? तुम्हारा मुख कुम्हलाया हुआ क्यों है?"

यहि बीचहि सब सखन पुकारा। विकल नंद बहु द्वार गोहारा॥
बिलखत बोलत बाल बिहाला—"कूदे कालीदह नँदलाला॥"

इतने में ही सब सखाओं ने पुकार मचाई। द्वार पर बड़ा कोलाहल मचा। नन्द व्याकुल हो गये। ग्वालों के बालक बिलखते और बेहाल होकर कहते थे—"कृष्ण कालीदह में कूद पड़े हैं।"

"पाहि! पाहि!" सुनि जननि पुकारा—"गयेउ कहाँ सुत प्राण-अधारा!"
व्रजवासी सुनि सुनि उठि धाये। विलपत कालिन्दी-तट आये॥

यह सुनकर 'रक्षा करो, रक्षा करो' कह कर माता यशोदा चिल्ला उठीं—"मेरा प्राणाधार पुत्र कहाँ गया?" यशोदा का हाहाकार सुनकर सारे व्रजवासी उठ कर दौड़ पड़े और बिलखते हुए यमुना के किनारे पहुँचे।

कृष्ण! कृष्ण! हा कृष्ण! पुकारी। कातर शोक गोपिका सारी॥
कहत पछार खाय महि माहीं—"श्याम बिना व्रज जीवन नाहीं!"

सब गोपियाँ शोकसे विह्वल होकर "हा कृष्ण! हा कृष्ण!" पुकारने लगीं। वे भूमि पर यह कह कर पछाड़ खाकर गिर पड़ती थीं कि "श्याम के बिना व्रज प्राणहीन हो गया। अर्थात् श्याम के बिना व्रज में जी कर क्या करेंगे?

समुझावत जननिहिं बलरामू—"कीन्ह मातु! लीला कछु श्यामू॥
सकत विनासि न कोउ मम भ्राता। गयेउ लेन दह-जल जलजाता॥"

बलराम माता को समझाते थे कि "माँ! श्याम ने कुछ लीला की है। मेरे भाई को कोई मार

नहीं सकता। वह दह के पानी के कमल लेने गया है!"

दोहा :—इत गोहरावत कृष्ण कहि, व्याकुल गोप-समाज।
उत हरि पहुँचे जाय तहँ, बसत जहाँ अहिराज॥ ६७॥

इधर व्याकुल गोप-समाज 'कृष्ण, कृष्ण' पुकार रहा था और उधर हरि जहाँ नागराज रहता था, वहाँ पहुँच गये।

देखेउ रहेउ सोय अहिरायी। नागिनि करति कंत सेवकाई॥
निरखि शिशुहिं मन विस्मय माना। पूछति—"को तैं बाल अजाना?

वहाँ जाकर उन्होंने देखा, वह नागराज सो रहा था और नागिन अपने पति की सेवा कर रही थी। बाल-कृष्ण को देखकर उसके मन में आश्चर्य हुआ और वह पूछने लगी,—"तू अज्ञान बालक कौन है?

मृदुल अंग नख शिख छवि छायी। को वैरी दह दीन्ह पठायी?
भागु वेगि विलमहि अब नाहीं। जागत नाग जरै पल माहीं॥"

तेरे कोमल अङ्ग हैं। नख से शिख तक सौंदर्य छाया हुआ है। किस शत्रु ने तुझे दह में भेज दिया है? तू जल्दी भाग जा, अरे अब तनिक भी यहाँ न ठहर। नाग के जगते ही तू पल भर में जल कर भस्म हो जायगा।"

कहत कान्ह—"मोहिं कंस पठावा। तव पति-निधन हेतु मैं आवा॥
वृथा करहि जनि कंत बड़ाई। वेगि देहि अहिराज जगायी॥

कृष्ण ने उत्तर दिया, "मुझे कंस ने यहाँ भेजा है। मैं तेरे पति को मारने के लिये आया हूँ। तू व्यर्थ ही उसकी (अपने पति की) प्रशंसा न कर। नागराज को जल्दी जगादे।

सोवत अनुचित करब प्रहारा। ताते मैं नहिं आवत मारा॥"
सुनत उठी अहि-नारि रिसायी। "लेहि तुही खल! नाग जगायी॥"

सोते हुए पर प्रहार करना उचित नहीं है। इसलिये मैंने अब तक नहीं मारा है।" यह सुनते ही नागिनी क्रोधित हो उठी और कहने लगी—'दुष्ट! तू ही नाग को जगा ले।"

दोहा :—व्यंग वचन नागिनि कहे, झपटे कुपित कन्हाय।
चापि पूँछ भूतल दली, उठेउ उरग अकुलाय॥ ६८॥

नागिनी ने ज्योंही व्यंग-वचन कहे कृष्ण क्रोधित होकर झपट पड़े और नाग की पूंछ को पकड़ कर उन्होंने जमीन पर रगड़ दिया, जिससे वह (सर्प) व्याकुल होकर उठ पड़ा।

अकस्मात जागेउ भय खायी। जानेउ आय गयेउ खगरायी॥
लखेउ बाल जब सन्मुख ठाढ़ा। झटकी पूँछ कोपि फण काढ़ा॥

अकस्मात जागने के कारण वह भयभीत हो गया। उसने समझा कि गरुड़ आ गया, परन्तु जब उसने सामने बालक को खड़ा देखा तो कुपित होकर पूंछ झटक दी और फन निकाल कर खड़ा हो गया।

फुफकि फुफकि तकि तकि निज घाता। लागेउ करन नाग आघाता।
उगलेउ विष उपजी जल ज्वाला। छुइ न सकेउ पै फणि नँदलाला॥

नाग फुफकार फुफकार कर अपने लक्ष्य पर ताक ताक कर चोट करने लगा। उसने जब विष

उगला तब जलमें लपटें पैदा हो गईं, पर सर्प नँदलाल को छू नहीं सका।

पदतल पूँछ लखी अहिराऊ। कीन्ह मुक्ति हित कोपि उपाऊ॥
घूमि श्याम चरणन लिपटाना। लागि न देर देह लपटाना॥

नागराज ने जब अपनी पूँछको कृष्णके पैरों के तले दबी हुई देखा तो उसको छुड़ाने के लिये उसने क्रोधित हो(अनेक) उपाय किये। वह मुड़कर कृष्णके चरणोंसे लिपट गया। फिर उसे उनकी देहभर में लिपट जाने में तनिक भी विलम्ब न लगा।

जकड़ेउ नख-शिख श्याम शरीरा। ताने बंधन हरि-तनु पीरा॥
विहँसि तियहिं कह नाग सुनायी—"सकहुँ श्वास महँ विश्व नसायी॥"

उसने नखसे शिखा तक श्यामके शरीर को जकड़ लिया। बंधन के खिंचाव के कारण हरिके शरीर में पीड़ा होने लगी। नागने तब मुसकुराकर अपनी स्त्रीकी ओर देखते हुए कहा,—"मैं एक साँस में सारे विश्वको नष्ट कर सकता हूँ!"

दोहा :—सुने कृष्ण गर्वित वचन, कीन्हेउ तनु विस्तार।
टूटत अँग, फूटत बदन, निकसी शोणित—धार॥ ६६॥

जब भगवान कृष्ण ने 'नाग' के गर्व-भरे वचन सुने तो उन्होंने अपने शरीर को फैला दिया जिससे उसके अंग टूटने लगे, मुँह फूटने लगा और खून की धार निकलने लगी।

देह-बंध टूटत लखि सारे। 'शरण! शरण!' अहिराज पुकारे॥
'शरण' सकत सहि श्रीपति नाहीं। भये स्वल्प सुनतहि पल माहीं॥

अपनी देहके सारे जोड़ोंको टूटते जान कर नागराज 'शरण, शरण' पुकारने लगा। भगवान किसीकी 'शरण' की टेर को सह नहीं सकते अर्थात वे शरणागत की तुरन्त रक्षा करने को आतुर हो जाते हैं अतः 'शरण' सुनतेही उन्होंने अपना शरीर पल भर में बहुत छोटा बना लिया।

बेधि नासिका बल हरि लीन्हा। नाथि नाग माथे पद दीन्हा॥
चढ़े सहस्र फणन पुनि धायी। उपजेउ प्रभु जानेउ अहिरायी॥

उन्होंने उसकी नासिका को बेधकर उसके बलको नष्ट कर दिया। इस तरह नागको नाथ कर उन्होंने उसके माथेपर अपना चरण रख दिया और फिर दौड़ कर उसके हज़ार फनों पर चढ़ गये। अब नागराज को ज्ञात हुआ कि भगवान ने अवतार लिया है।

कहत करत निज भाग्य बड़ाई—"दर्शन दीन्ह सदन हरि आयी॥"
कोटि कमल लै पन्नग-नारी। पूजे पद, तोषे बनवारी—

"भगवान्! आपने मेरे घर आकर स्वयं ही दर्शन दिये।" रह रहकर वह अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगा। नागकी स्त्री ने भी करोड़ों कमलों को लेकर उनके चरणों का पूजन किया। इससे भगवान कृष्ण संतुष्ट हो कहने लगे—

"जाहु, करहु निज लोक निवासा। अब न तुमहिं खगपति ते त्रासा।"
चरण-चिह्न मस्तक प्रकटाये। चले नाग निज संग लेवाये॥

"जाओ और अपने लोक में बसो। अब तुम्हें गरुड़ से कष्ट न होगा। मस्तक पर चरण-चिह्न

अंकित कर नागको अपने साथ ले चले।

दोहा :—नाथे अहि, माथे धरे, कोटि कमल अभिराम।
नर्तत मुदित फणीन्द्र फण, प्रकटे नटवर श्याम ॥ १०० ॥

नागको नाथ और शिर पर करोड़ों सुंदर कमलों को धारण कर नागराज के फनों पर हर्षित हो नाचते हुए क्रीड़ा में चतुर नटवर श्याम प्रकट हुए।

हरि देखत दौरे ब्रजवासी। जिमि विधु-उदय उदधि जल-राशी ॥
गद्‌गद नंद प्रमोद अपारा। पुलकेउ रोम रोम तनु सारा ॥

हरिको देखते ही ब्रजवासी ऐसे दौड़ पड़े, जैसे चंद्रोदय के समय समुद्र की जलराशि उछल पड़ती हैं। नंद अपार आनंदसे गद्‌गद् हो गये। उनके समस्त शरीर का रोम रोम पुलकित हो उठा।

जननि विलोचन वारि बहावत। "तजि निर्मोहि! मोहिं कहँ धावत!"
कहत श्याम--"मैं जमुना तीरा। खेलत रहेउँ संग बलवीरा ॥

माता यशोदा आँखों से आँसू बहाकर कहने लगीं,—"निर्मोही! तू मुझे छोड़ कर कहाँ भाग जाता है?" श्याम ने उत्तर दिया,—'माँ! मैं तो यमुना—किनारे बलराम के साथ खेल रहा था।

सहसा मोहिं गहेउ कोउ धायी। फेंकेउ जमुना माहिं भँवायी ॥
उघरे दृग देखेउँ अहिरायी। पूछत-'आये कहाँ कन्हाई'?

अचानक किसी ने मुझे दौड़ कर एकड़ा और घुमाकर यमुना में फेंक दिया। जब मेरी आँखें खुलीं तो मैंने नागराज को देखा। उसने पूछा, "कन्हाई, तुम यहाँ कहाँ आये?"

मैं बोलेउँ—'मोहिं कंस पठावा। कमल लेन तोरे घर आवा' ॥
कंस नाम सुनि उरग डरायी। कमल सहित मोहिं गयेउ पठायी ॥"

मैंने उत्तर दिया—'मुझे कंसने भेजा है। मैं तेरे घर कमल लेने आया हूँ'। नाग कंस का नाम सुन कर डर गया और मुझे कमल सहित यहाँ पहुँचा गया।"

दोहा:—हँसी यशोमति सुनि कथा, हँसे सकल व्रज लोग।
कहत-"कान्ह! तुव कुंडली, परेउ झूठ कर योग॥" १०१ ॥

यशोदा कृष्ण के मुँह से यह कथा सुन कर हँस पड़ीं; साथ ही सब व्रजवासी भी हँस पड़े और कहने लगे, "हे कान्ह! जान पड़ता है कि तुम्हारी कुंडली में झूठका योग पड़ा है" अर्थात् तुम बड़े झूठे हो।

विरह-व्यथा क्षण माँझ भुलानी। शोक-नदी सुख-सिन्धु समानी ॥
कही श्याम निज मन अभिलाषा। कीजै निशि यमुना-तट वासा ॥

सब व्रजवासी विरह के दुःख को क्षण भर में ही भूल गये, मानों शोक-नदी सुख के समुद्र में जा गिरी हो और उसका अस्तित्व ही मिट गया हो। तब श्याम ने अपनी यह अभिलाषा प्रकट की कि आज रात भर यमुना-तट पर निवास किया जाये।

गोप-समाज सुनत हरषाना। होन प्रबंध लगे विधि नाना ॥
नंद मुदित कछु गोप बोलाये। कंस पास लै कमल पठाये ॥

यह प्रस्ताव सुनकर गोप-समाज प्रसन्न हुआ और वहाँ ठहरने के अनेक प्रबन्ध होने लगे।

नंद ने प्रसन्न हो कुछ गोपों को बुलाया और उनके द्वारा कंस के पास कमलों को भेज दिया।

औरहु दधि माखन उपहारा। प्रेषे महर अनेक प्रकारा॥
लिखी विनीत-प्रीतियुत पाती। होय प्रसन्न नृपति अपघाती॥

साथही महरने अनेक प्रकार के दही और मक्खन के उपहार भी भेजे और नम्रता तथा प्रेम-सहित ऐसा पत्र लिखा कि जिससे पापी राजा प्रसन्न हो जाय।

रहे गुप्तचर जे व्रज माहीं। गये धाय मथुरापति पाहीं॥
अवनिपतिहिं व्रज-वृत्त सुनाये। काली नाथि कमल हरि लाये॥

व्रज में कंस के जो गुप्तचर थे वे दौड़कर मथुरा-नरेश के पास पहुँच गये और उन्होंने उसे व्रज के समाचार सुनाये कि किस प्रकार कृष्ण 'काली' नामक नाग को नाथ कर ले आये थे।

दोहा:— त्रस्त सुनत मथुरेश उर, उपजेउ विषम खँभार।
नंद-दूत पहुँचे तबहिं, लिये कमल-उपहार॥ १०२॥

मथुरा-नरेश (कंस) यह सुनते ही हृदय में दुःखी हो गया; उसके मन में अँदेशा पैदा हो गया। इसी समय नंद के दूत कमलों की भेंट लेकर पहुँच गये।

पेखत पंकज भूप विहाला। कमल नाहिं जनु कोटिक व्याला॥
नाल समेत भीति उपजावत। फण पसारि जनु काटन धावत॥

कमलों को देखते ही राजा बेहाल हो गया। उसे वे कमल करोड़ों सर्प के समान दिखाई दिये, जो नाल सहित ऐसे डरावने प्रतीत होते थे कि मानों फन फैलाकर काटने को दौड़ रहे हों।

कपट-कुशल नृप धीरज धारा। कीन्हेउ बहु दूतन सत्कारा॥
बाँचत पत्र तोष प्रकटावत। नंद-सुतन प्रति प्रीति बतावत—

कपट में चतुर राजा ने मन में धैर्य धारण किया और दूतों का बड़ा सत्कार किया। पत्र पढ़ कर उसने संतोष प्रकट किया और नंद-पुत्रों (कृष्ण-बलराम) के प्रति भी प्रेम दरसाया—

"भयेउ धन्य व्रज-मण्डल आजू। कृष्ण नाथि अहि कीन्हेउ काजू॥
मोरहु जगत बढ़े नित नामू। मिले शूर मोहिं हलधर श्यामू॥"

"कृष्ण ने नाग को नाथ कर जो कार्य किया है उससे व्रज-मण्डल आज धन्य हो गया है। कृष्ण व बलराम जैसे शूरों को पाकर मेरी भी संसार में नित्य कीर्ति फैलेगी।"

सिरोपाव दूतन पहिराये। दीन्हि विदा द्रुत सचिव बोलाये॥
कीन्हि मंत्रणा मथि ठहरावा। असुरन बोलि कुमंत्र सुनावा—

दूतों को सिर से पांव तक की पूरी पोशाक भेंट में दी और विदा कर दिया। उनके जाने के बाद शीघ्र ही उसने अपने मंत्रियों को बुलाया और उनके साथ खूब सलाह-विचार कर जो दुष्टतापूर्ण निश्चय किया उसे असुरों को बुला कर सुना दिया—

दोहा:— "जमुना-तट कानन सघन, आगी देहु लगाय।
व्रजवासी नहिं कोउ बचै, सोवत हतउ जराय॥" १०३॥

"यमुना के किनारे घने वन में अग्नि लगा दो, जिससे कोई व्रजवासी न बच पाये। उन्हें सोते हुए ही जला मारो।"

इत व्रजजन कालिन्दी-कूला। हर्ष हुलास-भरे, भय भूला॥
ऋतु निदाघ शशि उदित अकासा। व्याप्त व्योम महि विशद प्रकाशा॥

इधर व्रजवासी यमुना के किनारे भय को भूल कर हृदय में आनंद और उमङ्ग से भरे हुए क्रीड़ा कर रहे थे। ग्रीष्म-ऋतु थी; आकाश में चंद्रमा का उदय हो गया था और उसका निर्मल प्रकाश आकाश और पृथ्वी पर छाया हुआ था।

ग्वालन लीला रची सँवारी। बनेउ नाग कोउ, कोउ बनवारी॥
औरहु बहु हरि चरित सोहाये। रचि व्रजवासिन मोद बढ़ाये॥

चाँदनी रात को देख कर ग्वालों ने एक लीला का बढ़िया आयोजन किया। उनमें से कोई नाग बना और कोई बनमाली कृष्ण। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के और भी सुन्दर चरित्रों की लीला कर व्रजवासियों ने आनंद मनाया।

रास श्याम तेहि राति रचावा। जनु वैकुंठ उतरि महि आवा॥
बाढ़ी निशि सुख-निद्रा सोये। श्रान्ति विषाद भ्रांति भय खोये॥

उसी रात श्याम ने रास भी रचाया, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानों पृथ्वी पर स्वर्ग ही उतर आया हो। रात अधिक हो जाने पर थकावट, दुःख, भ्रांति और भय को दूर कर सब सुख की नींद सो गये।

इतनेहिं महँ भागेउ कोउ जागी। कहत बरत वन लागी आगी॥
जागे भागे सब नर नारी। लखेउ कराल अनल वन भारी॥

इतने ही में कोई जाग कर भागा और कहने लगा कि आग लग गई है, जिससे वन जल रहा है। यह सुनते ही सब स्त्री-पुरुष जाग जाग कर भागे। उन्होंने वन में बड़ी विकराल अग्नि को देखा।

दोहा:—भागि भागि लौटे सकल, बचेउ न कतहुँ निकास।
दशहु दिशा लागेउ अनल, चढ़ि ज्वाल आकाश॥ १०४॥

परन्तु सब नर-नारी भाग भाग कर फिर उसी स्थान पर लौट पड़े, क्योंकि वन से निकल भागने के लिये कहीं भी स्थान नहीं बचा था। दशों दिशाओं में अग्नि लगी हुई थी; उसकी लपटें आकाश तक पहुँच गई थीं।

तरु अररात गिरत महि आयी। तड़-तड़ कड़-कड़ शब्द सुनायी॥
पट-पट होत, बरत वन बाँसा। चटकत जरत पात कुश काँसा॥

वृक्ष 'अरर अरर' शब्द करते हुए पृथ्वी पर गिर रहे थे और 'तड़तड़' 'कड़कड़' की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। वन में बाँसों के जलने से 'पटपट' शब्द हो रहा था तथा पत्ते, कुश और कांस चटक चटक कर जल रहे थे।

लटकत जरि जरि ताल तमाला। झुलसत वेलि वितान विशाला॥
झार झार सब ओर धुँधारा। दमकत उचटि उचटि अंगारा॥

ताल और तमाल वृक्ष जल जल कर लटके पड़ते थे। सब ओर अग्नि की झार और धुंआ व्याप्त था। अँगारे उचट उचट कर लहक रहे थे।

प्रलय काल सम चली बयारी। झपटति लटपट लपट करारी॥
गोप-ग्वाल व्रज-बाल बिहाला —त्राहि! "पाहि! राखहु नँदलाला!"

प्रलय-काल के समान वायु चलने लगी, जिससे भयँकर लपटें आपस में मिल कर सब ओर झपटती सी दिख पड़ती थीं। यह दृश्य देख कर गोप-ग्वाल और व्रज-बालायें व्याकुल होकर चिल्लाने लगीं—" कृष्ण, हमारी रक्षा करो।"

बिलपत यशुदा नंद पुकारी, — "कान्ह! आजु व्रज शरण तुम्हारी।"
"मूँदहु लोचन" – कहेउ कन्हाई। "पल महँ अनल जाल मिटि जायी॥"

नंद - यशोदा भी आर्त स्वर में कहने लगे कि " कान्ह! आज तो व्रज तुम्हारी ही शरण है।" तब कृष्ण ने सबसे कहा " आँखें बन्द करो। पल भर में ही अग्नि की लपटों का लोप हो जायगा।"

दोहा :— व्रज वासिन मूँदे नयन, कीन्ह अग्नि प्रभु पान।
सिमिटि समानी ज्वाल मुख, शीतल नीर समान ॥१०५॥

व्रज-वासियों ने जैसे ही आँखें बंद कीं, भगवान अग्नि को पी गये। अग्निकी सारी लपटें उनके मुख में सिमिट कर शीतल जल के समान समा गईं।

"खोलहु लोचन" – कह नँदलाला। नहिं कहुँ धूम नाहिं कहुँ ज्वाला॥
निरखि कहत व्रजजन हरषायी —"हमरे सदा सहाय कन्हाई॥

तब श्रीकृष्ण बोले—"आँखें खोलो; यहाँ न कहीं धुआँ है और न कहीं लपटें ही हैं।" व्रजवासी यह दृश्य देख कर हर्षित हो कहने लगे—"हमारे तो कन्हाई ही सदा सहायक हैं।

बिनु बरसे, छिरके बिनु पानी। कहहु ज्वाल सब कहाँ बिलानी!
गुनी श्याम नँद - यशुमति छौना। पेटहि ते जानत कछु टोना॥"

बिना बरसे और बिना पानी छिड़के कहो सब आग की लपटें कहाँ विलीन हो गईं? यह नंद-यशोदा का बालक श्याम बड़ा गुनी है, पेट ही से यह कुछ जादू सीख आया है।"

बिहँसे हरि, बोलीं व्रज-नारी। "सिखवहु हमहिं मंत्र बनवारी॥"
बोले कान्ह — "मंत्र तेहि आवै। चोरी करि जो माखन खावै॥

यह सुन कर हरि मुसकुराये और जब व्रज नारियाँ उनसे कहने लगीं कि ' वनमाली! हमें भी मंत्र सिखा दो, ' तब वे बोले कि "मंत्र तो उसे आता है जो चोरी कर माखन खाता हो।

उरहन जासु गेह नित आवै। जननी सुनि सुनि जासु रिसावै॥
ऊखल ते जो देह बँधावै। होत भोर दस साँटी खावै।"

जिसके घर नित्य उलहने आयें और जिन्हें सुन कर जिसकी माता रुष्ट हो तथा जो ऊखल से अपनी देह बँधाये और सबेरा होते ही दस बेंत खाये।"

दोहा :— सुनि रीझीं व्रज वाम सब, खीझी यशुमति मात।
प्राची दिशि लाली भई, छायेउ स्वर्ण-प्रभात ॥१०६॥

कृष्ण की यह वाणी सुन कर सब व्रज-बालायें रीझ उठीं, पर माता यशोदा खीझ गईं। इसी समय पूर्व दिशा में लालिमा हो गई और स्वर्ण के समान प्रभात फैल गया।

व्रजजन सब निज निज गृह आये। धेनु चरावन श्याम सिधाये॥
जमुना-तट हरि दीन्ह बिहायी। वृन्दावन पाछे रहि जायी॥

तब व्रजवासी अपने अपने घर आ गये और श्रीकृष्ण गौयें चराने चले गये। हरि ने यमुना का किनारा छोड़ दिया और वृन्दावन भी पीछे रह गया।

बढ़े जात हरि, दौरहिं गैया। कहत सखा- "कहँ जात कन्हैया?
चलि न सकत मग हम सब थाके। लागत पग कुश कंटक बाँके॥"

हरि बढ़ते जा रहे थे और गौयें उनके पीछे दौड़ी जा रही थीं। सखा चिल्ला रहे थे—"कन्हैया! कहां जा रहे हो? हम सब अब मार्ग चल नहीं सकते; थक गये हैं। हमारे पैरों में नुकीले कुश और काटें लग रहे हैं।"

बढ़ि आगे इक सरवर पायी। बैठे श्याम सखन बैठायी॥
वारि प्रचुर चहुँ दिशि हरियाई। लागीं चरन सुखुख हरि-गाईं॥

आगे बढ़ने पर एक सरोवर मिला जहाँ श्याम सखाओं को बैठाल कर स्वयं बैठ गये। वहाँ खूब जल था और चारों दिशाओं में हरियाली छाई हुई थी। हरिकी गौयें वहीं सुखसे चरने लगीं।

इतनेहि महँ कहुँ धूम देखाना। भीत सखा दावानल जाना॥
कहत श्याम-"दावानल नाहीं। बसत विप्र कछु यहि वन माहीं॥

इतने ही में कहीं धुआँ दिखाई दिया, जिसे भयभीत सखाओं ने दावानल समझा, पर श्याम ने कहा कि "यह दावानल नहीं है, इस वन में कुछ ब्राह्मण रहते हैं।

दोहा:—श्रुतिविद् ये द्विज-वर्य सब, दुरे कंस नृप-त्रास।
यज्ञ होम शुचि धूम यह, महकति रुचिर सुवास॥" १०७॥

ये सब श्रेष्ठ ब्राह्मण वेद के जानने वाले हैं। नृप कंस के कष्टों से यहाँ छिपे हुए हैं। यज्ञ-होम का यह पवित्र धुआँ है, क्योंकि इसमें अच्छी सुगन्ध महक रही है।"

कहत मनसुखा—"भली बतायी। रुचिर सुवास क्षुधा उपजायी॥
उदर माहिं जनु लागी आगी। वन फल खाय न बुझै अभागी॥

यह सुनकर (सखा) मनसुखा कहने लगा—"अच्छा बतलाया, मधुर गंध ने भूख पैदा करदी है। पेट में मानों आग लग गई है! वन के फल खानेसे यह अभागी नहीं बुझेगी।"

कहेउ कान्ह—"नहिं कीजै शोचू। माँगहु विप्रन तजि संकोचू॥"
कहत सखा—"हम मंगन नाहीं। लाज त्यागि जो माँगन जाहीं॥"

तब कृष्ण ने कहा, "चिन्ता मत करो। संकोच छोड़ कर ब्राह्मणों से भोजन माँगो।" तब सखा कहने लगे— "हम भिखमँगे नहीं हैं जो लज्जा छोड़कर माँगने जायें।"

कह हरि—"जाय लेहु मम नामा। लज्जा ते न मोहिं कछु कामा॥"
बाढ़ी दिन सँग क्षुधा-पिपासा। गये सखा कछु विप्रन पासा—

हरि ने कहा, "जाकर मेरा नाम लो। मुझे लज्जा से कुछ काम नहीं है अर्थात् मुझे लज्जा नहीं है!" जैसे जैसे दिन बढ़ता गया, वैसे वैसे भूख और प्यास बढ़ती गई। तब सखा ब्राह्मणों के पास गये।

"नंद महर सुत कुँवर कन्हाई। आये विपिन चरावत गाई॥
लागि क्षुधा प्रभु पास पठाये। भोजन हेतु यहाँ हम आये॥"

और उनसे कहने लगे–" नंद महर के पुत्र कुँवर कन्हाई वन में गाय चराते हुए आये हैं। भूख लगी है, इसलिये आप महानुभावों के पास उन्होंने हमें भेजा है। हम यहाँ भोजन के लिये आये हैं।"

दोहा:—सुनत विप्र रूखे भये, कीन्ह वचन नहिं कान।
लौटि परे लज्जित सखा, कहत—"भयेउ अपमान॥" १०८॥

यह सुनते ही ब्राह्मणों ने रुखाई धारण करली और गोपों के वचनों पर कान ही नहीं दिया अर्थात् उन्हें अनसुना कर दिया। तब सखा लज्जित हो लौट पड़े और आपस में कहने लगे कि "वहाँ हमारा अपमान हुआ।"

रोष-भरे सब हरि ढिग आये। कहत--" खाय हम बहुत अघाये॥
आपहु चलि अब भोजन कीजै। देत विप्र जो भावै लीजै॥"

वे सब क्रोध-भरे हरि के पास गये और बोले, "हम तो वहां खूब भर पेट खा आये हैं। आप भी चल कर अब भोजन कीजिये। ब्राह्मण सब कुछ दे रहे हैं, जो आपको रुचे वह जाकर ले लीजिये।"

व्यंग वचन सुनि हरि मुसकाहीं। "जाहु सखा! द्विज-वनितन पाहीं॥
धर्म तत्व वे नीके जानहिं। समदर्शी कछु भेद न मानहिं॥"

सखाओं के व्यंग-वचन सुन कर हरि मुसकराने लगे। फिर उन्होंने कहा—" सखा! ब्राह्मणों की स्त्रियों के पास जाओ। वे धर्म के मर्म को भली भाँति जानती हैं, समदर्शी हैं और इसलिए कुछ भेद-भाव नहीं मानतीं।

क्षुब्ध सखा सब कहत रिसाई—"आपुहि माँगहु जाय कन्हाई॥"
हठ कीन्ही हरि, चले बहोरी। बोले विप्र वधुन कर जोरी—

सब दुःखी सखा क्रोधित हो कहने लगे, 'कृष्ण! आप ही जाकर माँगिये। पर जब हरि ने बड़ा आग्रह किया तो वे फिर गये और विप्र-वधुओं से हाथ जोड़ कर कहने लगे--

"धेनु चरावत हम वन आये। भोजन माँगन श्याम पठाये।"
सुनतहि उठीं हुलसि ब्रजनारी। तनु पुलकित, दृग आनँद वारी॥

"हम वन में गौयें चराते हुए आये हैं। श्याम ने हमें आपसे भोजन माँगने के लिए भेजा है।" यह सुनते ही वे व्रज-नारियाँ प्रसन्न हो उठीं। उनका शरीर पुलकायमान हो गया और आँखों में हर्ष-जल छा गया अर्थात् आँसू भर आये।

दोहा:— कहहि-"मुरारी! हरि! कहाँ, कहाँ श्याम अभिराम?
विपिन-विहारी कृष्ण कहँ, वनवारी, घनश्याम?" १०९॥

वे कहने लगीं— "हे हरि! हे मुरारी! आप कहाँ हैं? प्यारे श्याम कहाँ हैं? वन में विहार करने वाले कृष्ण कहाँ हैं! घनश्याम कहाँ हैं!"

भोजन-पात्र अनेक मँगाये। व्यंजन विविध सप्रीति सजाये॥
विह्वल चलीं श्याम दिशि धायी। जनु सरिता सागर समुहायी॥

उन्होंने भोजन के अनेक थाल मँगाये और प्रेम सहित उनमें अनेक प्रकार के पकवान सजाये

और व्याकुल हो श्याम की ओर इस प्रकार दौड़ी चलीं, मानों नदियाँ समुद्र की ओर जा रही हों।

दीन्ही द्विजन धाय मग बाधा। रहीं न, बहीं सनेह अगाधा॥
कछु सदेह, कछु तजि तजि देही। मिलीं जाय घनश्याम सनेही॥

ब्राह्मणों ने दौड़ कर मार्ग में उन्हें रोका पर वे रुकी नहीं, क्योंकि उनके हृदय में श्याम के प्रति अपार स्नेह था। कुछ तो सदेह और कुछ देह त्याग कर प्रेमी घनश्याम से जा कर मिल गईं।

कीन्हेउ श्याम सभक्ति प्रणामा—"धन्य, लहेउँ दर्शन द्विज-वामा॥"
भोजन करत सप्रीति कन्हाई। मनहुँ खवावति यशुमति माई॥

श्याम ने भक्ति-सहित उन्हें प्रणाम किया, और कहा—"मेरा अहोभाग्य है, जो मैंने आप ब्राह्मण-नारियों के दर्शन किये।" कृष्ण इस प्रकार प्रेम से भोजन कर रहे थे, मानों उन्हें माता यशोदा ही खिला रही हो।

अचल भक्ति-वर प्रभु सन माँगी। लौटीं सदन चरण-अनुरागी॥
दरस-वृत्त निज पतिन सुनावा। उपजेउ विप्रन मन पछितावा—

विप्र-वधुयें भगवान में दृढ़ भक्ति का वरदान माँग कर उनके चरणों में प्रीति धारण किये हुए घर लौट गईं। उन्होंने जब भगवान के दर्शन का समाचार अपने पतियों को सुनाया तो वे विप्र मन ही मन पछताने लगे—

दोहा :— "जप तप यज्ञ समाधि बिनु, इनहिं मिले विभु आय।
भक्ति रहित हम वेद पढ़ि, दीन्हेउ जन्म गँवाय॥११०॥

वे कहने लगे—"इन्हें भगवान जप, तप, यज्ञ और समाधि के बिना ही आकर मिल गये और हमने भक्ति के अभाव में वेद पढ़ कर अपना जन्म व्यर्थ ही गँवा दिया।

गये गोप गृह गाय चरायी। वन-गाथा व्रज-वधुन सुनायी॥
गोपी कहहिं—"धन्य द्विज-नारी। तजि सर्वस्व भजहिं बनवारी॥

गोप गाय चरा कर घर गये और जब उन्होंने गोपियों से वन की वार्ता सुनाई तो वे कहने लगीं—"वे द्विज-नारियाँ, जो सर्वस्व त्याग कर भगवान श्रीकृष्ण को भजती हैं, धन्य हैं।

निवसत नित हम संग कन्हाई। तबहुँ न चरणन भक्ति दृढ़ायी।"
आयेउ मार्गशीर्ष, सुख-मानी। गौरी पूजा हरि-हित ठानी॥

और यद्यपि हम नित्य ही कृष्ण के साथ रहती हैं, फिर भी हमने उनके चरणों में अपनी भक्ति दृढ़ नहीं की।" मार्गशीर्ष (अगहन) का जब वह महिना आया तो गोपियों ने सुख मान कर हरि के लिए गौरी-पूजन का निश्चय किया।

करहिं प्रातः जमुना-जल मज्जन। माँगहिं वर करि गौरी-पूजन—
"जहँ जहँ जाहिं जनमि हम माई। बढ़ै प्रीति हरि पद सुखदायी॥"

वे प्रातःकाल यमुना-जल में स्नान करतीं और गौरी का पूजन कर यह वर माँगतीं कि हे माता! जहाँ-जहाँ हम जन्म लें, वहाँ-वहाँ हमारी प्रीति सुख देने वाले हरि-चरणों में ही बढ़ती रहे।"

जानेउ हरि गोपिन व्रत धारे। गये प्रात प्रभु जमुन किनारे ॥
लखेउ धरे तट वसन उतारी। नग्न नीर अवगाहत नारी ॥

हरि ने जब यह जाना कि गोपियों ने व्रत धारण किया है तो वे सवेरे यमुना के किनारे गये। वहाँ उन्होंने देखा कि स्त्रियाँ किनारे पर वस्त्र उतार कर नग्न ही जल में नहा रही हैं।

दोहा :— नीर निमज्जत नग्न नित, सब व्रज-नारि समाज।
चलत प्रथा प्राचीन गहि, रंचहु नहिं उर लाज ॥ १११ ॥

व्रज का सारा नारी-समाज नित्य नग्न ही जल में स्नान करता था। वह प्राचीन प्रथा को लेकर चल रहा था, इससे उसके हृदय में तनिक भी लज्जा नहीं थी।

आज देहुँ अनरीति मिटायी। लोक लाज मैं देहुँ सिखायी ॥
सोचत मन कछु युक्ति विचारी। हरे वसन भूषण बनवारी ॥

हरि ने निश्चय किया कि आज मैं इस अनरीति को मिटा कर स्त्रियों को लोक- लज्जा सिखा दूंगा। मन में इस प्रकार सोचते सोचते उन्हें एक युक्ति सूझी। उन्होंने स्त्रियों के सब वस्त्र और आभूषण चुरा लिये।

चढ़े कदम्ब विटप प्रभु जायी। दीन्हे पट भूषण लटकायी ॥
मणि आभरण समेटि सजाये। परी किरण दिनपति दमकाये ॥

और वे कदम्ब के वृक्ष के ऊपर चढ़ गये, जहाँ उन्होंने वस्त्र एवं आभूषण नीचे लटका दिये। उन्होंने मणियों के भूषण जमा कर सजा दिये, जो सूर्य की किरणों के पड़ने से चमकने लगे।

नीलाम्बर पाटाम्बर सारी। टाँगी अँगिया विटप सँवारी ॥
अरुण पीत बहु वर्णन सोहत। डार डार अम्बर मन मोहत ॥

नीली और रेशमी साड़ियों तथा चोलियों को वृक्ष में सजा कर टाँग दिया, जिससे डाल-डाल पर लाल, पीले और बहुरंगी वस्त्र मन को लुभाने लगे।

पायीं जानि न कछु व्रजनारी। पल महँ कौतुक रचेउ मुरारी ॥
करन लगीं जब रविहिं प्रणामा। उठी दृष्टि देखे घनश्यामा ॥

व्रज नारियाँ तनिक भी नहीं जान पाईं, क्योंकि श्रीकृष्ण ने पल भर में ही यह कौतुक रच दिया। स्नान करने के उपरांत जब वे सूर्य को प्रणाम करने लगीं तो ऊपर दृष्टि जाने पर उन्होंने श्रीकृष्ण को देखा।

दोहा :— पट पल्लव भूषण दुरेउ, परेउ दृष्टि रवि नाहिं।
सुरपति-धनु मानहुँ उयेउ, श्याम नीप तरु माहिं ॥ ११२ ॥

वस्त्र, पल्लव और आभूषणों से सूर्य छिप गया था, इसलिए गोपियों को उसके दर्शन नहीं हुए। उस श्याम रंग के कदम्ब के वृक्ष में विविध रंगों के वस्त्रों और आभूषणों के टँगे होने के कारण वहाँ ऐसा लगता था, मानों इंद्र-धनुष का उदय हुआ हो।

हरिहिं विलोकत वाम लजानीं। गहिरे नीर धँसीं सकुचानी ॥
हिम शीतल कालिन्दी नीरा। परसत प्राण प्रचंड समीरा ॥

स्त्रियाँ हरि को देखते ही लज्जित हो गईं और सकुचाकर गहरे पानी में चली गईं। यमुना

जल ही बर्फ के समान ठंडा था; उस पर तेज पवन मानों प्राणों तक का स्पर्श कर रहा था।

मुख पर्यन्त वारि सब ठाढ़ीं। काँपत अंग, ग्लानि मन बाढ़ी॥
लोचन अवनत जल जनु बोरी। विनवत ब्रज-वनिता कर जोरी—

सब गोपियाँ मुख तक जल में खड़ी थीं; उनके अंग काँप रहे थे और मन में ग्लानि बढ़ रही थी। वे झुके नेत्रों को मानों (लज्जा के कारण) जल में डुबा कर और हाथ जोड़ कर श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने लगीं—

"देखउ निज मन श्याम! विचारी। अनुचित लखब वसन बिनु नारी॥
अम्बर देहु हमार गिरायी। अधिक कहहिं का, मरत लजायी॥"

"श्याम! तुम ही अपने मन में विचार कर देखो कि स्त्री को बिना वस्त्र के देखना अनुचित है। इसलिये हमारे वस्त्र नीचे गिरा दो। अधिक क्या कहें? हम लज्जा से मरी जा रही हैं।"

कहेउ हरिहु—"जो लागति लाजा। वस्त्र उतारत नित केहि काजा?
नग्न नीर तुम कीन्ह प्रवेशू। हमहिं सुनावत अब उपदेशू॥

हरि ने भी कहा कि "यदि लज्जा लगती है तो नित्य क्यों वस्त्र उतारती हो? तुम्हीं ने तो नग्न हो पानी में प्रवेश किया और अब हमें उपदेश देती हो!

दोहा:—वारि माहिं निवसत वरुण, तिनके लाज विहाय।
लोक लाजहू त्यागि तुम, धँसत नग्न जल जाय॥ ११३॥

जल में वरुण देव वास करते हैं। तुम उनकी लज्जा और लोक-लज्जा को भी त्याग कर नग्न हो जल में प्रविष्ट होती हो।

गौरी पूजन वृथा तुम्हारा। खंडित ध्यान नेम व्रत सारा॥"
सकुचीं गोपी सुनत दुखारी। कहत—"कीन्ह हम चूक मुरारी!

....तुम्हारा गौरी-पूजन व्यर्थ है। इस प्रकार नग्न स्नान से सारा ध्यान, नियम और व्रत खंडित हो जाता है।" कृष्ण की यह बात सुनकर दुःखी गोपियाँ सकुचा गईं और कहने लगीं कि "मुरारी! हमने भूल की है।

जो कछु होत सोइ गहि लीन्हा। अनुचित उचित विचार न कीन्हा॥
जानहिं हम नहिं शास्त्र-विधाना। छमहु हमार श्याम! अज्ञाना॥

आज तक जो कुछ होता आया था, उसी को ग्रहण कर लिया था। हमने उसमें उचित-अनुचित का कुछ भी विचार नहीं किया। हम शास्त्र के नियमों को नहीं जानतीं। अतएव श्याम! हमारे अज्ञान को क्षमा करो।

जब लगि रहहिं देह महँ प्राणा। करहिं कबहुँ नहिं नग्नस्नाना॥
देत रहहु नित सीख मुरारी! सकहिं निदेश तुम्हार न टारी॥

अब तो जब तक शरीर में प्राण रहेंगे, हम कभी भी नग्न-स्नान नहीं करेंगी। हमें इसी प्रकार नित्य उपदेश दिया करो। हम तुम्हारी आज्ञा को कभी नहीं टाल सकतीं।

वसन देहु अब हमहिं उतारी।" अस कहि भयीं मौन सुकुमारी॥
अचल सकल निज निज गति भूलीं। जनु जल विपुल कुमुदिनी फूलीं॥

अब हमें पेड़ से उतार कर हमारे वस्त्र दे दो।" यह कह वे सुकुमारियाँ मौन हो गईं। अपना

अपना भान भूलकर सब अचल हो गईं। वे अचल होकर वहाँ खड़ी खड़ी ऐसी शोभित हो रही थीं, मानों किसी बड़े जलाशय में अनेक कुमुदिनी फूल रही हों।

दोहा:——प्रमुदित मन घनश्याम तब, फेंके वस्त्र उतारि।
त्यागेउ तरु, पहिरे वसन, गोपिन तजि तजि वारि॥ ११४॥

तब घनश्याम श्रीकृष्ण ने मन में प्रसन्न हो वस्त्रों को उतार कर नीचे फेंक दिया और स्वयं वृक्ष से उतर पड़े। गोपियों न भी क्रमशः जल से निकल कर अपने अपने वस्त्र पहिन लिये।

धारे पुनि निज निज आभूषण। कहहिं-"आजु लागेउ अति दूषण॥
जदपि कीन्ह घनश्याम ढिठाई। तौहु नीकी चलनि बतायी॥"

फिर उन्होंने अपने अपने आभूषण धारण किये और वे परस्पर कहने लगीं कि यद्यपि कृष्ण ने ढिठाई की फिर भी उन्होंने हमें अच्छी ही चाल चलन बताई।

निज निज भवन गयीं व्रजनारी। आये नंद-सदन बनवारी॥
दही मथति राधा तहँ ठाढ़ी। मनहुँ मदन साँचे धरि काढ़ी॥

व्रज-नारियाँ अपने अपने घर चली गईं और वनमाली श्रीकृष्ण भी नंद के गृह पहुँच गये। वहां राधा दही मथती हुई खड़ी थी और ऐसी दीख पड़ती थी, मानों कामदेव ने उसे सुन्दरता के साँचे में ढाल कर निकाला हो।

डोलत तनु, आंदोलित अंचल। वेणी झूमति इत उत चंचल॥
जनु विधु-वदन दुग्ध अनुमानी। नागिनि पान हेतु अकुलानी॥

दही मथते समय उसका शरीर हिलता था, अंचल उड़ रहा था और शिरकी वेणी भी यहाँ-वहाँ चंचल हो ऐसी झूम रही थी, मानों चंद्रमा के समान मुख मण्डल को दूध समझ कर नागिन उसे पीने के लिये व्याकुल हो रही हो।

देखेउ आये कुँवर कन्हाई। मथति कहूँ कहूँ दृष्टि लगायी॥
इतनेहि महँ आयी नँदरानी। कहति—"कहा राधा बौरानी?

जब राधा ने कृष्ण को आते देखा तो वह कहीं तो मथ रही थी और कहीं अपनी दृष्टि लगाये हुए थी, अर्थात् कृष्ण को देखने की उत्सुकता में वह दधि-मंथन को भूल-सी गई थी। इसी समय नंदरानी यशोदा वहाँ पहुँच गईं और कहने लगीं, 'राधा! क्या पागल हो गई है?

दोहा:——"देखु, मथानी कहँ धरी, कहाँ धरेउ दधि-माट।
कहाँ चलावति हाथ तैं, कीन्हें चित्त उचाट॥" ११५॥

देख कहाँ तो तेरी मथानी है? कहाँ दही का माट (पात्र) रखा है? उचटे मन से तू कहाँ हाथ चला रही है?"

सुनत किशोरी खीझि रिसानी। आयी हरि-ढिग फेंकि मथानी॥
"दासी-दास बहुत मम धामा। कबहुँ न करहुँ हाथ निज कामा॥

यशोदा का व्यंग सुनकर किशोरी राधा चिढ़कर कुपित हो गई और मथानी फेंक कर हरि के निकट पहुँच कहने लगी—'मेरे घर बहुत से दास-दासी हैं। मैं अपने हाथसे कभी काम नहीं करती—

आवहुँ खेलन संग कन्हाई । महरि मथानी देति गहायी ॥ "
सुनत यशोमति मारन धायी। भागी कुँवरि भीति दरसायी ॥

मैं तो कृष्ण के साथ खेलने आती हूँ और महरि मुझे मथानी पकड़ा देती है ।" राधा के वचन सुन कर यशोदा जब उसे मारने दौड़ीं तो वह भय दिखा कर भाग गई ।

आगे राधा पाछे मोहन । गये खरिक देखन गो-दोहन ॥
नंदहिं लखि कह हरि मुसकायी—"दुहिहौं बाबा निज कर गाई ॥"

आगे राधा और उसके पीछे कृष्ण भागे । दोनों गो-दोहन देखने गो-शाला में गये । वहाँ नंद को देख हरि मुसकुरा कर कहने लगे--"बाबा ! मैं अपने हाथों से गाय दुहूँगा ।"

कहति कुँवरि-"मैं हरिहिं सिखावहुँ । दुहन-रीति दुहि धेनु बतावहुँ ॥"
बछरा दीन्हेउ थनन लगायी । दोहनी घुटुवन धरी जमायी ॥

राधिका ने कहा कि " मैं स्वयं गाय दुह कर हरि को दुहने की रीति सिखाऊँगी ।" राधा ने बछड़े को थन से लगा दिया और दूध दुहने के पात्र को कृष्ण के घुटनों के बीच जमाकर रख दिया ।

दोहा—दुहत आपु गोपाल लखि, पुलकि रँभानी गाय ।
लागे दुहन स-नेह हरि, दोहनी धार बजाय ॥ ११६ ॥

गोपाल कृष्ण को स्वयं दुहते देख कर गाय हर्षित हो रँभाने लगी । हरि भी प्रेम सहित दोहनी में धार बजा बजा कर दुहने लगे ।

दुहत दीन्ह राधा तन हेरी । बिसरी धेनु अनत मति प्रेरी ॥
इत चितवहिं, उत धार चलावहिं । लखि लखि श्यामा मुख सुख पावहिं ॥

दुहते दुहते उन्होंने जैसे ही राधा की ओर देखा, उनका ध्यान दूसरी ओर खिंच गया और वे गाय को भूल गये । देखते एक ओर थे और दूसरी ओर धार चलाते थे । वे सुन्दरी का मुख देख देख कर सुख अनुभव कर रहे थे ।

हाथ धेनु-थन, नैन प्रिया तन । चूकि धार बिखरी चंद्रानन ॥
दुग्ध-बिंदु राधा मन मोहत । धोय कलंक इन्दु जनु सोहत ॥

उनके हाथ गाय के थन पर थे और आँखें प्रेमिका राधा पर । अतएव जब धार चूक गये तो वह दोहनी में न जाकर उनके चन्द्र के समान मुख पर बिखर गई । कृष्ण के मुख पर दूध के बिन्दु देख कर राधा मन ही मन मुग्ध हो गई । उनका दुग्ध--सिंचित मुख ऐसा लगता था, मानों कलँक धोकर चंद्रमा शोभा दे रहा हो ।

मगन दोउ मिलि ध्यान न राखा । आयी तेहि क्षण सखी विशाखा ॥
'राधा !' कहि कहि टेर लगायी । "चलहु तुरत घर मातु रिसायी ॥

राधा-कृष्ण दोनों एक दूसरे के रूप-दर्शन में मग्न थे,-उनका ध्यान और कहीं नहीं था। उसी क्षण विशाखा सखी आ गई और वह 'राधा ! राधा!' पुकारती हुई कहने लगी कि "चलो तुरन्त; घर में माता कुपित हो रही हैं ।

श्यामहिं रहति सदा तैं घेरे । ठाढ़ि मनहुँ लिखि धरी चितेरे ॥
गोप अन्य कहँ रहे दुरायी । जो तुम हरि ते धेनु दुहायी ॥"

तू सदा श्याम को घेरे रहती है। ऐसी खड़ी है, मानों किसी चित्रकारने चित्रित किया हो। दूसरे गोप कहाँ छिप रहे हैं, जो तूने हरि से ही गाय दुहाई ?"

दोहा :— "भये दुहैया श्याम कब , दुहहिं जो मोरी गाय।
मानि वचन नँदराय के, मैं ही रही सिखाय॥" ११७॥

राधा बोली—"श्याम दुहना जानते भी हैं जो मेरी गाय दुहेंगे ? मैं ही नंदराय की आज्ञा मान कर उन्हें दुहना सिखा रही थी।"

सखी संग गवनी सुकुमारी। आये लौटि सदन बनवारी॥
पूछेउ महरि कछुक अनखायी — "राधहिं छाँड़ेउ कहाँ कन्हाई ?"

सुकुमारी राधा सखी के साथ चली गई और कृष्ण जब अपने घर लौटे तो महरि यशोदा ने कुछ अप्रसन्न हो उनसे पूछा,—" कन्हाई ! राधा को कहाँ छोड़ आये ? "

मन विहँसे, मुख प्रकटेउ रोषू — "सुनु माता! आपन इक दोषू॥
जहँ तहँ मोर खेलोना डारति। मुरली भँवरा कछु न सँभारति॥

माता के वचन सुन कर कृष्ण मन में तो हँसे पर मुख पर क्रोध प्रकट कर बोले,—" माता ! अपना एक दोष सुनो ! तुम मेरे खिलौने यहाँ-वहाँ फेंक देती हो। मेरी मुरली और मेरे भौंरे आदि कुछ भी नहीं सँभालतीं।

आजु प्रभात जबहिं घर आयेउँ। राधहिं मथत दही में पायेउँ॥
झूठहि लीन्हे हाथ मथानी। मन महँ निज औरहि तेहि ठानी॥

आज सबेरे जब मैं घर आया तो मैंने राधा को दही मथते पाया। वह तो झूठे ही हाथ में मथानी लिए हुए थी; मन में तो वह और ही कुछ ठाने थी।

मुरली पै जब दृष्टि लगायी। मैं जानेउँ चोरी हित आयी॥
साँचहु फिरि वंशी लै भागी। महूँ गयेउँ तेहि पाछे लागी॥

जब उसने मुरली पर दृष्टि जमाई तभी मैं समझ गया कि वह चोरी के लिए आई है। फिर तो वह सचमुच वँशी लेकर भाग गई। तब मैं भी उसके पीछे-पीछे गया।

दोहा :— खरिक निकट पनघट जहाँ, रपटि गिरी भहराय।
वंशी छूटी, मैं गही, वह रोयी बिलखाय ॥ ११८॥

गौशाला के पास जहाँ पनघट है, वहाँ वह भर भरा कर गिर गई और जब उसके हाथ से वंशी छूट पड़ी तो मैंने ले ली। जिससे वह चिल्ला चिल्ला कर रोई।

रारि रोय राधा अति कीन्ही। मोहिं तोहिं बहु गारी दीन्हीं॥
जात गेह बोली डरपायी—" मुरली लेहौं श्याम चुरायी॥"

राधा ने रो रो कर बहुत झगड़ा किया, तुझे और मुझे बहुत सी गालियाँ दीं। घर जाते-जाते डर दिखा कर बोली कि, " श्याम ! मैं मुरली चुरा लूंगी।"

कहा करहुँ मैं अब री माई ! मुरली राखहुँ कहाँ लुकायी ?
साँझ सबेरे लागी आवन। चोरी करि करि लागी धावन॥

री माँ ! बता अब मैं क्या करूँ ? मुरली छिपा कर कहाँ रखूं ? वह सबेरे-शाम आने लगी है

और चोरी कर कर भागने भी लगी है।

तेहि पै वैर नित्य नव ठानति। केतनहु कहौं एक नहिं मानति॥"
सुनत श्याम बतियाँ रस-बोरी। रीझि हँसी यशुमति मति-भोरी॥

तिस पर भी नित्य नया बैर ठानती है। उसे कितना ही कहो, तनिक भी नहीं मानती।" श्याम की रस से भीगी बातें सुन कर भोली यशोदा मुग्ध हो हँसने लगीं।

कहति हुलसि--"तुम सुनहु मुरारी! लागति राधा मोहिं पियारी॥
वृथा करति घर चोरी आयी। मैं मुरली दस देहुँ गढ़ायी॥"

फिर प्रसन्न हो कहने लगीं, —"मुरारी! सुनो, राधा मुझे प्यारी लगती है। वह घर आकर व्यर्थ चोरी करती है। मैं उसे (एक नहीं) दस मुरली बनवा दूंगी।"

दोहा — कहत कान्ह — "जानति नहीं, आज बतावहुँ तोहि।
बहुत बुरी यह राधिका, तनिक सोहाति न मोहि॥" ११९॥

कृष्ण माता से कहने लगे, —"माँ, तू जानती नहीं, आज तुझे (अपने मन की बात) बतलाता हूँ। यह राधा बहुत बुरी है। मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगती।"

ताही क्षण नँदराय पधारे। श्याम गिरा सुनि हँसे सुखारे॥
लीन्हेउ बाल अंक बैठायी। चूमत मुख करि भाग्य बड़ाई॥

उसी क्षण नंदराय आ गये और श्याम की वाणी सुनकर सुखी हो हँस पड़े। उन्होंने बालक को गोद में बैठा लिया और अपने भाग्य की प्रशंसा कर उसके मुख को चूमने लगे।

अवसर लखि बोली नँदरानी — "सुरपति-पूजा तुमहिं भुलानी॥
गाँव दसक भूपति ते पाये। बड़े भये जग महर कहाये॥

अवसर देखकर नंदरानी यशोदा बोलीं, —"आपने भी इन्द्र की पूजा भुला दी! राजा से दसेक गाँव पाकर आप संसारमें बड़े आदमी होकर महर कहलाने लगे हैं।

जेहि प्रसाद सुत संपति पाई। सो कुलदेव दीन्ह बिसरायी॥"
सुनत नंद पुनि पुनि पछिताने। यशुमति वचन सत्य सब माने॥

जिसकी कृपा से पुत्र और धन की प्राप्ति हुई है, उस कुल-देवता को आप भूल गये हैं।" पत्नी के वचन सुनकर नंद बार बार पछताने लगे। उन्होंने यशोदाके सब वचनों को सत्य माना।

उठे कहत — "सब गोप बोलावहुँ। अबहिं सकल संभार करावहुँ॥"
नँद-निदेश व्रज बजी बधाई। चहुँ दिशि उत्सव-शोभा छायी॥

वे वहाँ से यह कहते हुए उठे कि, "सब गोपों को बुलाता हूँ और उनसे अभी सब प्रबन्ध करता हूँ।" ब्रज में नंद की आज्ञा की डौंडी पिट गई और चारों ओर उत्सव की शोभा फैल गयी।

दोहा — बाँधे तोरण जहँ तहाँ, बने विविध पकवान।
बाजे ढोल मृदङ्ग बहु, घर घर मंगल गान॥ १२०॥

यहाँ-वहाँ तोरण बँध गये और नाना प्रकार के पकवान बन गये। खूब ढोल और मृदंग बजने लगे तथा घर घर मंगल गान होने लगे।

नंद-सदन सबते बढ़ि शोभा । व्यंजन विपुल श्याम मन लोभा ॥
जवहिं लेन कछु मोहन धावहिं । बरजति मातु, छुवन नहिं पावहिं ॥

नंद के घर सबसे अधिक शोभा छाई थी। बहुत से पकवानों ने श्याम का मन लुभा लिया। पर मोहन ज्योंही उसमें से कुछ लेनेके लिए लपकते त्योंही माता रोक देती थीं, जिससे वे कुछ भी छू नहीं पाते थे।

"जनि आवहु तुम यहाँ कन्हाई ! लखतहि बालक देव रिसायी ॥"
बैठे आँगन घरिक चुपायी । पुनि पूछेउ नहिं जाति ढिठाई--

माता उनसे कहती,-" कन्हाई ! तुम यहाँ न आओ। बालक को देखते ही देवता क्रोधित हो जाता है।" कृष्ण कुछ समय तक तो चुपचाप आँगन में बैठे रहे पर उनकी ढीठता न गई। वे फिर पूछ बैठे--

"मैया ! मोहिं यह देव देखावहि । देखहुँ एतिक कैसे खावहि ॥"
सुनि कर जोरति, दोष मिटावति । यशुमति शिशु अपराध छमावति ॥

" मा ! मुझे तू वह देवता दिखा दे। देखूँ तो वह इतना सब कैसे खाता है ?" कृष्ण के वचन सुन कर माताने देवता को हाथ जोड़े और पुत्र के वचन का दोष दूर किया। यशोदा ने शिशु के अपराध की देवता से क्षमा माँगी।

सहसा सोचेउ हृदय कन्हाई । सुरपति-पूजा देहुँ मिटायी ॥
चले सवेग, महर पहँ आयी । लखेउ विपुल ग्वालन समुदायी ॥

एकाएक कृष्ण ने मन में सोचा कि मैं इन्द्र की पूजा को ही मिटा दूँगा। वे तेजी से चल कर नंद महर के पास पहुँचे, जहाँ उन्होंने ग्वालों की बड़ी भीड़ देखी।

दोहाः— नंद तहाँ, उपनंद तहँ, गोप-प्रमुख वृषभानु ।
पूछेउ पितु ढिग बैठि प्रभु, मानहुँ निपट अजानु — १२१ ॥

वहाँ नंद, उपनंद और गोपों के एक मुखिया वृषभानु थे। भगवान कृष्ण ने पिता के पास बैठकर इस प्रकार पूछा मानों वे बिलकुल नासमझ हों।

"सुरपति कवन देव यह होई। पूजन जासु करत सब कोई ?
रहत अदृश्य कि रूप देखावत ? यदि पूजे नर का फल पावत ?"

"यह इन्द्र कौन देवता है, जिसका आप सब पूजन करते हैं ? यह छिपा ही रहता है या प्रकट हो अपना रूप भी दिखलाता है ? इसकी पूजा से मनुष्यों को क्या फल मिलता है ?"

कहत महर-" तुम, सुनहु कन्हाई । गोपन कर धन सर्वस गाई ॥
जब महि मेघ वारि बरसावहिं । बढ़त पात-तृण गैया खावहिं ॥

नंद महर कहने लगे,—" कृष्ण ! तुम सुनो ! गोपों का सर्वस्व धन उनकी गायें हैं। जब मेघ पृथ्वी पर जल की वर्षा करते हैं तब घास-पात उग कर बढ़ता है, जिसे गायें चरती हैं।

इन्द्रदेव सब मेघन स्वामी । दिखहिं नाहिं ये अन्तर्यामी ॥
करत सुरेन्द्रहि हमहिं प्रदाना । अगणित धेनु वत्स गण नाना ॥

इन्द्रदेव सब मेघों के स्वामी हैं। ये अन्तर्यामी हैं, प्रकट दर्शन नहीं देते। इन्द्र ही हमें नाना

प्रकार के अनगिनती गाय और बछड़े देते हैं।

हम सब करहिं शचीपति पूजा । जानहिं और देव नहिं दूजा ॥
सुरपति-कृपा तुमहिं मैं पावा"। अस कहि नंद शीश महि नावा ॥

इसीलिए हम केवल इन्द्रकी पूजा करते हैं। हम उन्हें छोड़ और किसी देवता को नहीं जानते। इन्द्र की ही कृपा से मैंने तुम्हें पाया है।" ऐसा कहकर नंद ने (इन्द्र को नमस्कार करने के लिए) पृथ्वी पर सिर झुका दिया।

दोहा :— विहँसे हरि सुनि पितु वचन , लखेउ नवावत शीश—
"तात ! इन्द्र मेघेश जो , कवन प्रभंजन-ईश ? १२२ ॥

हरि पिताके वचन सुनकर विहँस उठे और जब उन्हें शीश झुकाते देखा तो कहने लगे,—"पिता! यदि इन्द्र मेघों का स्वामी है तो पवन का स्वामी कौन है ?

केहि के बल पुनि अनल जरावत ? जलहु कहाँ ते निज बल पावत ?
विरचेउ केहि यह नभ-विस्तारा ? कवनि शक्ति छिटकावति तारा ?

फिर बतलाइए कि अग्नि किसके बल से जलाती है , पानी भी अपना बल किससे प्राप्त करता है ? किसने इस विस्तृत आकाश की रचना की ? वह कौनसी शक्ति है जो उसमें तारों को छिटकाती है ?

व्योम भानु शशि केहि प्रकटाये ? उदय अस्त केहि तिनहिं सिखाये ?
केहि विरचे वन भूमि पहारा ? केहि कीन्हेउ यह विश्व पसारा ?"

किसने आकाश में सूर्य और चन्द्र को प्रकट किया ? उन्हें किसने उदय और अस्त होना सिखाया ? किसने वन, भूमि और पहाड़ों को बनाया ? किसने इस विश्व का विस्तार किया ?"

चकित सकल सुनि प्रश्न चुपाने । बोले प्रभु पुनि, मन मुसकाने—
"सुनहु तात ! इक बात बतावहुँ । लखेउँ स्वप्न निशि सबहिं सुनावहुँ ॥

कृष्ण के ये प्रश्न सुनकर सब चकित हो कर चुप हो गये। फिर भगवान कृष्ण मन ही मन मुसकराकर बोले "पिता ! सुनिए; एक बात बतलाता हूँ। जो स्वप्न मैंने रात को देखा है, उसे सब को सुनाता हूँ।

मीठी निंदिया सोयेउँ जबहीं । आयेउ दिव्य पुरुष कोउ तबहीं ॥
शंख-चक्र शोभित भुज चारी । भाषेउ विहँसि—"सुनहु बनवारी !

जब मैं मीठी नींद में सो गया तब कोई दिव्य पुरुष आया। उसके चार भुजाएँ थीं, जो शंख, चक्रादि से सुशोभित थीं। उसने विहँस कर कहा—"सुनो, वनमाली !

दोहा :—मेघ-वृन्द-पति इन्द्र यह, मैं सुरनाथहु नाथ ।
रवि शशि नभ नक्षत्र सब, मोहिं नवावहिं माथ ॥ १२३ ॥

यह इन्द्र तो मेघ-समूह का ही स्वामी है, मैं तो इन्द्र का भी स्वामी हूँ। नभ के सूर्य, चंद्र और सब नक्षत्र मुझे मस्तक झुकाते हैं।

इन्द्रहिं देत दैत्य जब त्रासा। आवत बिलपत मोरेहि पासा॥
तब लगि चलति इन्द्र इन्द्राई। जब लगि मैं तेहि होहुँ सहायी॥

जब इन्द्र को दैत्य कष्ट देते हैं तो वह रोता हुआ मेरे ही पास आता है। इन्द्र का इन्द्रपन तभी तक चलता है, जब तक मैं उसकी सहायता करता हूँ।

इन्द्र विषय-रत, इन्द्रिय-दासू। अब न करहु ब्रज पूजा तासू॥
लै भोजन व्यंजन पकवाना। गोवर्धन गिरि करहु पयाना॥

इन्द्र इन्द्रियों का दास है। भोग-विलास में डूबा रहता है। इसकी ब्रज में अब पूजा मत करो। व्यंजन पकवान आदि भोज्य पदार्थों को लेकर गोवर्धन पर्वत की ओर प्रस्थान करो।

सब मिलि अर्चा मोरि रचावहु। मोर ध्यान धरि भोग लगावहु॥
सबन लखत मैं गिरि प्रकटइहौं। कर ते लै लै व्यंजन खइहौं॥

वहाँ सब मिल कर मेरी पूजा का आयोजन करो और मेरा ध्यान करके भोग लगाओ। सब के देखते मैं पर्वत पर प्रकट हूँगा और हाथ से ले लेकर पकवान खाऊँगा।

मुँह माँगे वर ब्रजजन पावहिं। रोग दोष दुख ताप नसावहिं॥"
कही कान्ह सब अद्भुत वाणी। कहत नंद—"यह अकथ कहानी!"

मुझसे ब्रजवासी मुँह माँगा वर पायेंगे, जिससे उनके रोग-दोष, दुःख-कष्ट दूर हो जायेंगे।" कृष्ण ने सब अद्भुत वाणी कही, जिसे सुन कर नंद बोले,—"यह अकथ कहानी है।" अर्थात् ऐसी अचरज से भरी बात है कि कही नहीं जा सकती।

दोहा :— कहत परस्पर गोप कछु, "हमहिं शचीपति-भीति।"
कहत अन्य— "हमरे हृदय, केवल कान्ह प्रतीति॥" १२४॥

कुछ गोप परस्पर यह कहने लगे कि—"हमें इन्द्र का डर लगता है।" और कुछ यह कि —"हमारे हृदय में तो केवल कृष्ण का विश्वास है।"

बाढ़ी ब्रजजन उर जिज्ञासा। बैठे सरकि सरकि हरि पासा॥
पूछत— "साँचहु रूप देखइहै। व्यंजन हमते लै लै खइहै?"

ब्रज-वासियों के हृदयों में जिज्ञासा बढ़ गई और वे सरक सरक कर हरि के पास आ बैठे और उनसे पूछने लगे,—"क्या वह सचमुच अपना रूप दिखायेगा और हमसे पकवान ले लेकर खायेगा?"

कहत श्याम—"मैं सत्य सुनावहुँ। प्रकट देव तुम सबहिं देखावहुँ॥
यह प्रत्यक्ष खात, मुख भाखत। साधक साध्य भेद नहिं राखत॥

श्याम ने कहा,—"मैं सत्य कहता हूँ; तुम सबको साक्षात् इस देवता के दर्शन करा दूंगा। यह देवता प्रत्यक्ष खाता है और मुख से बोलता है तथा साधना करने वाले साधक तथा जिसकी साधना की जाती है उस साध्य में कोई भेद नहीं रखता।

देव न यह मेघेश समाना। रहत सतत जो छिपा लुकाना।"
समुझाये सब श्याम सप्रीती। उपजी ब्रजजन हृदय प्रतीती॥

वह मेघों के स्वामी इन्द्र जैसा देवता नहीं है, जो सदा लुका-छिपा रहता है।" जब श्याम ने सबको प्रेम सहित समझाया तो ब्रजवासियों के हृदय में विश्वास पैदा हो गया।

कहत—"करहु जो कहहिं कन्हाई। चले श्याम-सँग सकल भलाई॥"
पहुँची गेह गेह पुनि चर्चा। व्रज ते उठी शचीपति-अर्चा॥

वे कहने लगे,—"जो कृष्ण कहते हैं, वही करो। श्याम के साथ चलने में ही सबकी भलाई है।" फिर घर-घर यह चर्चा फैल गई कि व्रज से इन्द्र की पूजा उठ गई है।

दोहा :—यान सजे, व्यंजन भरे, पहिरे भूषण चीर।
गवने हिलि मिलि नारि नर, भई शैल पै भीर॥१२५॥

गाड़ियाँ सज गईं; उनमें व्यंजन-पकवान भर दिये गये। नर-नारियों ने वस्त्र और आभूषण पहिने तथा हिल-मिल कर वे पर्वत पर गये, जहाँ भीड़ लग गई।

द्विज वेदज्ञ नंद बोलवाये। होम यज्ञ जप दान कराये॥
व्योम सधूम, सुवास सोहाई। स्वरित साम मंत्रन गिरिरायी॥

नंद ने वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों को आमंत्रित किया और उनसे होम, यज्ञ, जप और दान कराये। आकाश धुएँ से भर गया, जिसकी सुगंध सोहावनी थी। श्रेष्ठ पर्वत साम मंत्रों से गूंजने लगा।

विष्णु-मूर्ति हरि दिव्य मँगायी। प्राण-प्रतिष्ठा सविधि करायी॥
कहेउ वहुरि —"अब भोजन लावहु। सुर सन्मुख सब भेंट चढ़ावहु॥"

हरि ने विष्णु की दिव्य मूर्ति मँगवाई और विधि सहित उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करवाई। फिर कहा कि "अब भोजन लाओ और देवता के सम्मुख सब भेंट चढ़ाओ।"

लाये भोजन भरि भरि थारा। बाढ़े व्यंजन मनहुँ पहारा॥
परसत सब, परसति नँदरानी। पसरत महर साँझ नियरानी॥

व्रजवासी थाल भर भरकर भोजन लाये, जिससे व्यंजन (पकवान) इतना बढ़ गया, मानों उसी का पहाड़ खड़ा हो गया हो। सब परस रहे थे; नँदरानी परस रही थीं; नंद महर भी परस रहे थे (परसते परसते) शाम हो गई।

दृग उत्सुक, उर व्याप्त प्रमोदा। भोग लगायेउ नंद यशोदा॥
जैसेहि महि नँद माथ नवावा। दिव्य प्रकाश प्रखर गिरि छावा॥

आँखों में उत्सुकता और हृदय में आनन्द भरकर नंद ने पृथ्वी पर ज्योंही मस्तक झुकाया, त्यौंही पवत पर तीव्र दिव्य प्रकाश छा गया।

दोहा :—चौंधे लोचन, चित चकित, भये प्रकट भगवान।
बाहु सहस धरि आपु हरि, लागे व्यंजन खान॥१२६॥

जब भगवान प्रकट हुए तो सबकी आँखों में चकाचौंधी छा गई और सबके चित्त चकित हो गये। हरि हज़ार हाथ धारण करके स्वयं ही व्यंजन खाने लगे।

वेद ऋचा इत विप्र उचारत। अंतरिक्ष सुर जयति पुकारत॥
बरसत पुष्प विपुल महि छायी। कहत गोपजन—"धन्य कन्हाई!"

इधर ब्राह्मण वेद-मंत्र का उच्चार करते थे और उधर आकाश में देवता जयजयकार कर रहे थे। पृथ्वी पर पुष्प बरसकर छा गये और गोप "धन्य, धन्य कन्हाई!" कह उठे।

नंद महर मन मुदित खवावत। खात देव आनँद उपजावत ॥
क्रम क्रम गोप-प्रमुख बहुतेरे। जुरे समोद सरकि सुर नेरे ॥

नंद महर मन में हर्षित हो खिलाते हैं और देवता खाता है तथा (सबके मन में) आनन्द पैदा करता है। धीरे धीरे बहुत से गोप-मुखिया देवता के पास जाकर प्रसन्नता के साथ जमा हो गये।

जुरीं सभक्ति सिमिटि सब बामा। विभुहिं खवावत करत प्रणामा ॥
कान्ह आपु पकवान उठाये। कौर कछुक कर कमल खवाये ॥

सब गोपियाँ भी भक्ति के सहित सिमिटकर जमा हो गईं और देवता को खिला पिलाकर प्रणाम करने लगीं। स्वयं कृष्ण ने भी पकवान उठाकर अपने कर–कमलों से कुछ कौर खिलाये।

बिहँसे विभु, बिहँसे बनवारी। सम छवि वेष लखेउ नरनारी ॥
ललिता राधहि कहति सनेहू—"उपजत सखि मम मन संदेहू ॥

देवता हँसे और वनमाली कृष्ण भी हँसे। नर-नारियों ने दोनों की समान छवि और वेश-भूषा देखी। ललिता राधासे प्रेम सहित कहने लगी,—"सखि ! मेरे मन में संदेह पैदा होता है।

दोहा :—हरि साँवर, साँवर सुरहु, नीरज नयन विशाल।
मोर मुकुट सखि! शिर दुहुन, वक्षस्थल वनमाल ॥ १२७ ॥

हरि साँवले हैं और देवता भी साँवला है ; दोनों के नेत्र कमल के समान और विशाल हैं। सखि ! दोनों के शिर पर मोर-मुकुट है और दोनों के वक्षस्थल पर वनमाला है।

दुहुन श्रवण कुंडल छवि छाजत। दुहुन देह पट पीत विराजत ॥
दुहुन आभरण अलकहु सोई। देव श्याम, सखि! एकहि दोई ॥"

दोनों के कानों में कुंडल शोभा दे रहे हैं; दोनों की देह पर पीताम्बर विराज रहा है; दोनों के समान आभूषण हैं और दोनोंकी अलकें भी एक सी हैं। सखि ! देव और श्याम दोनों एक ही हैं।"

सुनतहि बोली ढीठ विशाखा—"श्यामहि सकल स्वाँग रचि राखा ॥
सुरपति-अर्चन श्याम मिटावा। देव-व्याज आपुहिं पुजवावा ॥

यह सुनते ही ढीठ विशाखा सखी बोल उठी ,—"श्याम ने ही यह सब स्वाँग रचा है। उन्होंने इन्द्र-पूजा मिटा दी। देव के बहाने स्वयं को पुजवाया है।

आपु खात पुनि आपु खवावत। धरि दुइ रूप हमहिं भरमावत ॥
आपु देव पुनि आपु पुजारी। वंचेउ निश्चय हमहिं मुरारी ॥

आप ही खिलाते और आप ही खाते हैं। अपने ही दो रूप धारण कर हमें भ्रम में डालते हैं। आप ही देवता और आप ही पुजारी हैं। निश्चय ही हमें कृष्ण ने ठगा है।

अबहिं जो कपट देहुँ प्रकटायी। फिरि न हरिहिं कोउ व्रज पतियायी !"
बरजेउ राधा नयन तरेरी। भक्ति समेत रही सुर हेरी ॥

यदि मैं अभी कृष्ण का यह कपट-जाल प्रकट कर दूँ तो फिर व्रज में कोई उनपर विश्वास नहीं करेगा।" राधा ने उसे नेत्र तरेरकर रोका और स्वयं देवता को भक्ति सहित देखने लगी।

दोहा :—कबहुँ विलोकति विष्णु तन, कबहुँ श्याम छवि-धाम।
रोम रोम पुलकित कुँवरि, पुनि पुनि करति प्रणाम ॥ १२८ ॥

कभी विष्णु के शरीर की ओर देखती; कभी सौन्दर्य-धाम श्याम की ओर। और इस प्रकार राधा रोम रोम से पुलक कर उन्हें बार बार प्रणाम करती थी।

सोरठा :—दे दर्शन, सानिध्य, गोधन-वर्धन वर विविध।
व्रजजन जयध्वनि मध्य, गवने श्रीधर धाम निज॥

दर्शन, सानिध्य और गो-धन वृद्धि के विविध वरदान देकर व्रजवासियों की जय-ध्वनि के बीच विष्णु अपने धाम चले गये।

अन्तर्धान भये भगवाना। गोप जनहु गृह कीन्ह पयाना॥
तजि तजि शैल शकट निज साजे। चढ़ि चढ़ि चले वाद्य बहु बाजे॥

भगवान के अन्तर्धान हो जाने पर गोपों ने अपने अपने घर प्रस्थान किया। पर्वत को छोड़कर उन्होंने अपने छकड़ों को सजाया और बहुत प्रकारके बाजे बजाते हुए उन पर चढ़कर चले।

बोलत, हँसत, प्रशंसत जाहीं। श्याम प्रतीति प्रीति मन माहीं॥
उत सब वृत्त शचीपति पावा। अर्चन मम व्रजजन विसरावा॥

वे आपस में बातें करते, हँसते और प्रशंसा करते हुए चले जा रहे थे। इनके मन में श्याम के प्रति प्रेम और विश्वास भरा हुआ था। उधर इन्द्र को सब समाचार मिल गया कि व्रजवासियों ने मेरी पूजा को भुला दिया है।

कोउ अवतरेउ कृष्ण तहँ आयी। पूजा निज मोहिं निदरि करायी॥
उपजेउ इन्द्र हृदय अति क्रोधा। चाहत लेन विषम प्रतिशोधा॥

वहाँ कोई कृष्ण पैदा हुआ है, जिसने मेरा तिरस्कार कराके अपनी पूजा कराई है। इससे इन्द्र के हृदय में अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हो गया और वह भयङ्कर बदला लेने की इच्छा करने लगा।

आजुहि जो मैं व्रज न बहावहुँ। वज्री पुनि नहिं विश्व कहावहु॥
घन संवर्तक तुरत बोलायी। कहत—"बरसि व्रज देहु बहायी॥

यदि आज ही मैं व्रज को न बहा दूँ तो फिर विश्व में वज्रधारी न कहलाऊँगा। उसने तुरन्त ही प्रलय के मेघों को बुलाया और आदेश दिया कि "बरस कर व्रज को बहा दो।"

दोहा :—वन, धरणी, गोधन, जनन, वृद्ध, युवा, तिय, बाल।
सकल गोवर्धन शैल सह, लै बोरहु पाताल॥" १२९ ॥

वन, पृथ्वी, गाय, मनुष्य-बूढ़े, जवान, स्त्री और बालक—सभी को गोवर्धन पर्वत सहित बहा कर पाताल में डुबा दो।"

सुनि निदेश संवर्तक धाये। प्रलय-प्रवर्तक व्रज चढ़ि आये।
नीरद नील कमल कोउ श्यामा। कोउ मयूर कान्ति अभिरामा॥

यह आज्ञा सुनकर प्रलय के मेघ दौड़ पड़े और व्रज पर प्रलय करने चढ़ आये। कोई बादल

नीलकमल के समान श्याम थे और कोई मोर की कान्ति के समान सुन्दर थे ।

इन्द्रनील मणि द्युति कोउ धारे। कोउ कोउ धूम वर्ण कजरारे॥
उमड़ि घुमड़ि घेरत घहराने। घटाटोप रवि ओट छिपाने॥

कोई इन्द्रनील मणि की चमक धारण किये हुए थे, तो कोई कजरारे धुएँ के रँग के समान थे। वे सब बादल घुमड़-घुमड़ कर घने घिर गये। मेघों के घटाटोप में सूर्यदेव भी छिप गये।

धरणी व्योम सान्द्र अँधियारा। अंतराल तम-तोम पसारा॥
गरज तरज संघट्ट सरोषा। भैरव भेरी भीषण घोषा॥

पृथ्वी, आकाश और उनके बीच में घना अंधकार छा गया। मेघों की क्रोध पूर्ण गरज-तरज से ऐसा मालूम होता था, मानों भैरव की भेरी का भीषण नाद हो रहा हो।

गये गोप वन धेनु चरावन। भागे निरखत मेघ भयावन॥
पनघट भरत नीर पनिहारी। भागीं तजि सिर गागर भारी॥

जो गोप वन में गाय चराने गये थे, वे भयानक बादलों को देख कर भाग गये और जो स्त्रियाँ पनघट पर पानी भर रही थीं, वे सिर की भारी गगरी छोड़ कर भाग गईं।

दोहा :— लागे बरसन घन प्रलय, वही प्रचंड बयारि।
तड़कि तड़कि तड़की तड़ित, अंबर हृदय विदारि ॥१३०॥

प्रलय के बादल बरसने लगे और प्रचंड आँधी चलने लगी तथा आकाश के हृदय को चीर कर विजली कड़कड़ा कर तड़कने लगी।

होत रोर कोउ सुनै न बूझहि। अँधाधुंध नहिं कहुँ कछु सूझहि॥
गिरी अखंड धार महि घोरा। जनु ब्रह्मांड-भांड कोउ फोरा॥

इतनी ज़ोर से आवाज़ होती थी कि कोई न सुन पाता था और न समझ पाता था। चारों ओर घने अँधकार के छाये रहने से कहीं कुछ नहीं दिख पड़ता था। पृथ्वी पर जल की भारी अखंड धारायें इस प्रकार गिर रही थीं, मानों किसी ने ब्रह्माण्ड रूपी घड़े को ही फोड़ दिया हो।

भरे ताल, नहिं सलिल समायी। सरवर भये सरित उतरायी॥
प्रविशी पुनि पथ वीथिन धारा। ढहे गेह, नहिं रहेउ सहारा॥

ब्रज के ताल इतने भर गये थे कि उनमें पानी नहीं समाता था; सरोवर उतरा कर नदी बन गये। सड़क और गलियों में पानी की धारा के पहुँचने से घर नीचे गिर गये; उनको टिका रखने का कोई आधार ही नहीं रह गया।

बहेउ वारि गो-वत्स बहायी। सुरभी वहीं रँभाय रँभायी॥
विलपे गोपी गोप विहाला। पल पल जल-प्रवाह विकराला॥

जल बछड़ों को बहा ले गया; गायें भीं रँभा रँभा कर बह चलीं। पल पल जल का प्रवाह भयानक होता जा रहा था, जिससे गोप और गोपियें विकल हो कर विलाप करने लगे।

पग डगमग नहिं थमत थमाये। बूड़त ब्रज अब कवन बचाये?
निकसी शत शत कंठ पुकारा — "कहाँ कान्ह ब्रज प्राण-अधारा!

पैर डगमगाते थे और प्रयत्न करने पर भी पृथ्वी पर नहीं टिकते थे। (यही सुन पड़ता था-

कि) डूबते ब्रज को अब कौन बचायेगा ? सौ-सौ कंठों से यही पुकार निकल रही थी कि " ब्रज के प्राणाधार कृष्ण कहाँ हैं ?

दोहा:— मेघ सुभट, विद्युत धनुष, बूँद बूँद खर बाण ।
अब विलंब नँदलाल कस, निकसत ब्रजजन प्राण !" १३१ ॥

मेघ तो योद्धा हैं, बिजली धनुष हैं और जल की एक एक बून्द तीक्ष्ण बाण हैं । ब्रज-वासियों के प्राण निकल रहे हैं । हे नंदलाल ! अब विलम्ब क्यों ?"

कहति मातु इत हरिहिं सुनायी –" इन्द्र-अर्चना तुमहिं मिटायी ॥
मेघ अमोघ सुरेश पठाये । बरसि बरसि ब्रज देत बहाये ॥

इधर माता यशोदा हरिको सुना सुनाकर कहती थीं कि " तुम्हीं ने इन्द्र की पूजा मिटाई है । इसीसे इन्द्र ने अमोघ मेघों को भेजा है, जो बरस बरस कर ब्रज को बहाये देते हैं ।

कहँ गोवर्धन देव कन्हाई ? बूड़त ब्रज न उबारत आयी ॥
भोजन हेतु दौरि सुर आवा । भुज सहस्र धरि व्यंजन खावा ॥

हे कृष्ण ! तुम्हारा गोवर्धन का देवता कहाँ है ? वह डूबते हुए ब्रज का उद्धार क्यों नहीं करता ? भोजन के लिए वह देवता दौड़ा हुआ आया और हजार भुजाएँ धारण कर पकवान खा गया ।

परी विपति, नहिं देत दिखायी । सकहु कान्ह ! तौ लेहु बोलायी ॥"
हरि गँभीर कह–"विभु न बोलइहौं । तनिक काज लगि नहिं भटकइहौं ॥

अब विपत्ति पड़ने पर वह दिखाई नहीं देता । अब कान्ह ! यदि तुम उसे बुला सको तो बुला लो ।" हरि ने गंभीरता से कहा,—"मैं देवता को नहीं बुलाऊँगा । उसे तनिक से काम के लिए नहीं भटकाऊँगा ।

मैं ही मैया ! करहुँ उपायी । निमिष माहिं जल-क्लेश नसायी ॥"
अस भाषत पर्वत तन हेरा । " पाहि ! पाहि ! " पुनि ब्रजजन टेरा ॥

माँ ! मैं ही उपाय करूँगा । पल भर में ही जल का यह कष्ट दूर हो जायगा । " ऐसा कहकर उन्होंने पर्वत की ओर देखा । इसी समय फिर ब्रजवासियों ने " रक्षा करो, रक्षा करो " की पुकार की ।

दोहा:— महि ते गहि गिरि वाम कर, लीन्ह समूल उपारि ।
कनिष्ठिका करजाग्र हरि, सहजहि लीन्हेउ धारि ॥ १३२ ॥

हरि ने पृथ्वी से पर्वत को बाएँ हाथ में पकड़ कर जड़ से उखाड़ लिया और छिगुनी अँगुली के नख के अगले भाग पर सरलता से धारण कर लिया ।

शैल सुमन सम श्याम उठावा । छत्र रूप ब्रज ऊपर छावा ॥
गिरत परत ब्रजजन सब धाये । आतुर सिमिटि शैल तल आये ॥

श्याम ने पर्वतको फूल जैसा उठा लिया, जो ब्रज पर छत्र के समान छा गया । सब ब्रजवासी गिरते-पड़ते दौड़े आये और उत्सुकता से पर्वत के नीचे सिमिटकर जमा हो गये ।

सुरभि, वत्स, गृह-पशु , वनचारी । आये सकिलि जहाँ गिरिधारी ॥
सहज शत्रुता सबन बिसारी । अहि मयूर सँग बसे सुखारी ॥

गाय, बछड़े, घर के अन्य पालतू पशु और समस्त वन में विचरण करने वाले पशु गिरिधारी कृष्ण के पास एकत्र हो गये । सब ने अपनी स्वाभाविक शत्रुता भुला दी । सर्प और मोर सुख से साथ साथ बस गये ।

मृग , मृगेन्द्र , मूषक , मार्जारी । रहे हरिहिं अनिमेष निहारी ॥
बिहँसत बहुरि कहत बनवारी–" राखेउँ अब लगि गिरिवर धारी ॥

इसी प्रकार मृग और शेर, चूहा और बिल्ली साथ साथ हरि को अपलक नेत्रों से देख रहे थे । फिर हँसकर कृष्ण कहने लगे–" इतनी देर तक मैंने इस बड़े पहाड़ को धारण किया है ।

अब लागत मोहिं कछु कछु भारी ! " बिकल सुनत बोली महतारी—
" भैया ! सब मिलि होहु सहायी । गिरि न परे कहुँ बाल कन्हाई ॥ "

अब वह मुझे कुछ कुछ भारी लगने लगा है । " यह सुन कर माँ व्याकुल हो कहने लगी,– " भैया ! सब मिलकर सहारा दो । कहीं बालकृष्ण गिर न पड़े ।"

दोहा :—आर्त बैन माता कहे , बिहँसे मन भवपाल ।
लकुटी लै लै भिरि परे , नंद सहित सब ग्वाल ॥ १३३ ॥

जब माँ ने दुःख भरे वचन कहे तो संसारके पालनकर्ता भगवान् कृष्ण मन ही मन में हँसे । यशोदा के वचनों के अनुसार नंद के सहित सब ग्वाल अपनी अपनी लकुटी लेकर पर्वत को टेका देने में भिड़ गये ।

टेकि टेकि लकुटी सब ठाढ़े । पौरुष प्रकटि उठावत गाढ़े ॥
निरखत , बिहँसत , कहत कन्हाई — "मोरी भुजा तनिक सी भाई !

सब लकुटी टेक टेक कर खड़े हो गये । वे बहुत भारी पौरुष प्रकट कर पर्वत को उठा रहे थे ! कृष्ण यह सब देखते, हंसते और कहते जाते थे कि,–" भाई ! मेरी भुजा तो छोटी सी है ।

नख ते टरै गिरै गिरि भारी । रहहु ठाढ़ सब टेक सँभारी ॥ "
सुनि सुनि श्याम बैन सुखदाई । तमकि तमकि हठि करत सहायी ॥

यदि नख से हट जाय तो यह भारी पर्वत नीचे गिर पड़ेगा । इसलिए सब टेके को सँभालकर खड़े रहो ।" श्याम के सुख देने वाले वचन सुन सुनकर सब गोप तमक कर बलपूर्वक सहायता कर रहे थे ।

यहि विधि सप्त दिवस ब्रजनाथा । धारेउ गोवर्धन निज हाथा ॥
देवपतिहु उत कोप बढ़ावा । आपुहि चढ़ि ब्रज ऊपर आवा ॥

इस प्रकार ब्रज के स्वामी श्रीकृष्ण ने अपने हाथ पर सात दिनों तक गोवर्धन पर्वत को धारण किया । उधर इन्द्र का भी क्रोध बढ़ गया । वह स्वयं ब्रज पर चढ़ आया ।

काँपेउ नभ , बरसेउ सुररायी । बूँद न तबहुँ शैल तल आयी ॥
हरि ओरहु माया प्रकटायी । गिरत वारि ब्रज जात सुखायी ॥

जब इन्द्र कुपित हो बरसने लगा तो आकाश काँप उठा , परन्तु फिर भी पर्वत के नीचे एक

बूंद तक नहीं आई। हरि ने और भी अपनी माया प्रकट की, जिससे व्रज में पानी गिरते ही सूख जाता था।

दोहा:— बरसि चुकेउ जब जल प्रलय, गलेउ इन्द्र अभिमान।
"तजहु मोह"— ब्रह्मा कहत,—"उपजे व्रज भगवान॥" १३४॥

जब प्रलय का पानी बरस चुका तो इन्द्र का अभिमान गल गया। ब्रह्मा उससे कहने लगे,— "अपना मोह अर्थात् मूर्खता छोड़ो। व्रजमें स्वयँ भगवान ने अवतार धारण किया है।"

कही विधाता जब निज बीती। उपजी सुरपति-हृदय प्रतीती॥
धिक मोहिं मोह--अंध, अभिमानी। जो हरि सँग हठि समता ठानी॥

जब ब्रह्मा ने अपनी बीती सुनाई तो इन्द्र के हृदय में विश्वास जम गया। वह सोचने लगा,— "मुझे धिक्कार है; मैं अभिमानी मोह से अंधा हो गया था; जो मैंने हरिके साथ बराबरी करने का दुराग्रह किया।

मैं सुरेश, वे सर्वाधारा। तिन ते बैर न मोर उबारा॥
चतुरानन निज आगे कीन्हे। चलेउ शचीपति सुर सँग लीन्हे॥

मैं केवल देवताओं का स्वामी हूँ और वे सब के आधार हैं। उनसे बैर करने पर मेरा उद्धार नहीं होगा।" यह सोच कर ब्रह्मा को आगे कर इन्द्र देवताओं को साथ लेकर चला।

तजि सुरपुर वृन्दावन आवा। परेउ चरण नहिं उठत उठावा—
"अनजानत मैं कीन्हि ढिठाई। क्षमहु दयामय! मम अधमाई॥"

इन्द्र देवलोक छोड़कर वृन्दावन पहुँचा। और हरि के चरणों में ऐसा गिर पड़ा कि उठाने से भी नहीं उठता था। वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा—"हे दयानिधि! मैंने अज्ञानमें यह धृष्टता की है, अतएव मेरी नीचता को क्षमा कर दीजिए।"

देखि सुरेन्द्र-दैन्य दनुजारी। दीन्ह तोष, छमि कीन्ह सुखारी॥
कहत शक्र—"वर माँगहुँ एकू। करन चहहुँ मैं प्रभु-अभिषेकू॥"

दनुजों के शत्रु भगवान कृष्ण ने इन्द्र की दीनता देख उसे क्षमा कर संतुष्ट और सुखी किया। तब इन्द्रने कहा कि "मैं एक वर माँगता हूँ—मैं प्रभुका अभिषेक करना चाहता हूँ।"

दोहा:— सुरपति हरि अनुमति लही, लै कर सुरसरि वारि।
कीन्ह कृष्ण अभिषेक व्रज, लखत गोप नर-नारि॥ १३५॥

इन्द्र ने हरि की आज्ञा ली और गंगा-जल हाथ में लेकर व्रज में श्रीकृष्ण का अभिषेक किया। यह दृश्य सब ग्वाल-स्त्री-पुरुष देख रहे थे।

कहि कहि गो-धन-गोकुलनाथा। गोविंद नाम दीन्ह सुरनाथा॥
बिनवत नत-महि सुरन समाजू—"हम कृतकृत्य दरस लहि आजू॥"

श्रीकृष्ण को बार बार गो-धन और गोकुल के नाथ कह कर इन्द्र ने उन्हें 'गोविन्द' नाम दिया। देव-समाज पृथ्वी पर शिर झुका कर प्रार्थना करता था कि "हम आज आप के दर्शन का लाभ पा कर कृतार्थ हो गये।"

प्रभु परितोषि सुरेश पठाये। मुदित अमरपुर सुरहु सिधाये॥
व्रजजन तहँ जे रहे सयाने। लखि कौतुक मन सकल सकाने॥

भगवान कृष्ण ने इन्द्र को संतुष्ट करके भेज दिया। देवता भी प्रसन्न हो स्वर्गलोक लौट

गये। वहाँ जितने व्रजवासी थे, वे सभी यह कौतुक देख कर सकपका गये।

जाय महर-गृह प्रकटि सनेहू। कहेउ सुनाय हृदय संदेहू॥
जो जो अचरज कीन्ह कन्हाई। चमत्कार सब कहे सुनाई—

नंद महर के घर जाकर उन्होंने उनके प्रति स्नेह प्रकट करते हुए अपने हृदय का सन्देह भी उनको कह सुनाया। श्रीकृष्ण ने जो जो चमत्कार किये उन सबको उन्होंने कह सुनाया।

"ये नहिं गोप-तनय वनवारी। दिव्य पुरुष कोउ ये अवतारी॥"
नंदहु सुनि मन मोद बढ़ावा। गर्ग-कहा सब तिनहिं सुनावा॥

"ये वनमाली श्रीकृष्ण गोप-पुत्र नहीं हैं। ये तो कोई अवतारी दिव्य पुरुष हैं।" यह सुनकर नंद ने भी हर्ष मनाया और गर्गने जो कुछ कहा था, वह सब उन्हें कह सुनाया।

दोहा:—फैलेउ पल महँ वृत्त व्रज, श्याम ब्रह्म अवतार।
कहत नारि-नर—"धन्य हम, निरखत जगदाधार॥" १३६॥

व्रज भर में यह समाचार फैल गया कि श्याम ब्रह्म का अवतार है। इसे सुनकर वहाँ के नरनारी आपस में कहते थे कि "हम धन्य हैं जो जगत के आधार भगवान का दर्शन कर रहे हैं।"

एक दिवस हरि सखन बोलायी। कहे सकौतुक वचन सुनायी—
"सुरपति स्वकर तिलक मम कीन्हा। कहि गोविँद मोहिं गोकुल दीन्हा॥

एक दिन हरि ने सखाओं को बुला कर उनसे विनोद में ये वचन कहे—"इन्द्र ने स्वयं अपने हाथों मेरा तिलक किया है और मुझे 'गोविन्द' कह कर गोकुल दे दिया है।

रहेउ कंस अब व्रजपति नाहीं। लेहुँ राजकर मैं व्रज माहीं॥
जात जे मधुपुर दधि लै प्राता। लेहु तिनहिं ते प्रथम जकाता॥

इसलिए कंस अब व्रज का स्वामी नहीं रहा। अब व्रज में राज-कर मैं लूँगा। जो सवेरे दही लेकर मथुरा जाते हैं, उनसे पहले 'जकात' वसूल करो।

काल्हि सजग रोकहु वन बाटा। घेरहु सब मिलि जमुना-घाटा॥"
सुनि सुनि सखा हृदय हुलसाने। जाय प्रात वन-विटप लुकाने॥

कल सावधान हो कर वन के मार्ग रोक लो और सब मिलकर यमुना के घाट को घेर लो।" यह बात सुन सुनकर सखा हृदय में हर्षित हुए और प्रातःकाल जाकर वन में छिप रहे।

निकसीं गो-रस बेचनहारी। जब प्रभात वन-पथ व्रजनारी॥
हरि सतर्क कीन्हेउ संकेतू। कूदे सखा, वाम हत-चेतू॥

जब सवेरे गोरस बेचने वाली व्रज-नारियाँ वन के मार्ग से निकलीं, तब हरि ने सावधानी से सखाओं को संकेत किया। वे सब कूद पड़े और स्त्रियाँ भौंचक्की सी रह गईं।

दोहा:—व्याप्त भीति गोपिन-हृदय, डोलत तनिक न गात।
चित्र लिखी ठाढ़ीं सकल, निकसति मुख नहिं बात॥ १३७॥

गोपियों के हृदय में भय भर गया। उनका शरीर ज़रा भी नहीं हिलता था अर्थात् वह गतिहीन हो गया था। वे सब चित्र लिखी सी खड़ी थीं और उनके मुख से वचन नहीं निकलते थे।

कहेउ सखन व्रज वनितन पाहीं—"कोऊ ठग तस्कर हम नाहीं॥
जानत तुम जब सुरपति आयेउ। निज कर गोविंद तिलक रचायेउ॥

तब सखाओं ने व्रज-नारियों से कहा कि "हम कोई ठग या चोर नहीं हैं। तुम सब जानती हो कि इन्द्र ने आकर अपने हाथों गोविन्द का तिलक किया है।

भये कृष्ण अब गोकुलरायी। चाहत लेन जकात चुकायी॥
हम अनुचर, हरि भूप पठाये। लेन राजकर यहि थल आये॥"

कृष्ण अब गोकुल के राजा हो गये हैं। वे जकात वसूल करना चाहते हैं। हम तो राजा हरि के भेजे हुए सेवक हैं। यहाँ राज-कर लेने आये हैं।

सुनि व्रज-वाम धैर्य उर आनी। बोलीं श्याम-सखन सन वाणी—
"फिरी ग्राम नहिं कृष्ण-दोहाई। भये भूप केहि भाँति कन्हाई?

यह सुनकर व्रज-नारियाँ हृदय में धैर्य रख कर श्याम के सखाओं से बोलीं—"ग्राम में कृष्ण की दोहाई नहीं फिरी अर्थात् ढिंढोरा नहीं पिटा है। तब वे राजा किस तरह हो गये?

शचीपतिहिं को व्रज पहिचानत। हरि बहुरुपिया सब कोउ जानत॥
कब केहि तुमहिं बनायेउ अनुचर। हम कस जानहिं तुम नहिं तस्कर॥

इन्द्र को व्रज में कौन पहिचानता है? सभी जानते हैं कि कृष्ण बहुरूपिया हैं। कब किसने तुम्हें सेवक (सरकारी कर्मचारी) बनाया है? हम कैसे जानें कि तुम चोर नहीं हो?

दोहा:—भये भूप जो कान्ह अब, काहे रहे लुकाय?
होहिं प्रकट सन्मुख स्वयं, लेहिं जकात चुकाय॥" १३८॥

यदि कृष्ण अब राजा हो गये हैं तो छिपे क्यों हैं? वे सामने आकर स्वयं जकात वसूल करें।"

व्यंग वचन बोलहिं सब ठाढ़ी। दरस-तृषा गोपिन मन बाढ़ी॥
उतरे तरु ते तबहिं मुरारी। हँसी नारि बाजीं करतारी—

सब गोपियाँ खड़ी खड़ी कृष्ण पर ताने कस रही थीं। उनके मन में कृष्ण के दर्शनों की प्यास बढ़ गई थी। इसी समय कृष्ण पेड़ से नीचे उतर आये। यह देख कर नारियाँ हँस पड़ीं और तालियाँ बजने लगीं।

"सुनत नृपति तुम भये कन्हाई! कैसे चढ़े पेड़ तुम जायी?
जदपि मृगेन्द्र विदित वनराऊ। लखेउ न चढ़त विटप तेहि काऊ॥

वे कहने लगीं--"सुनती हैं कान्ह! तुम राजा हो गये हो! तब तुम पेड़ पर जाकर कैसे चढ़ गये? यद्यपि सिंह वन का राजा प्रसिद्ध है तो भी उसे किसी ने पेड़ पर चढ़ते नहीं देखा।

कपि सम सब आचरण तुम्हारे। तबहुँ नृपति तुम बनत हमारे॥
रहे बाल कीन्ही लँगराई। बाढ़त सीखि लीन्हि बँदराई॥

तुम्हारे सब बन्दर जैसे आचरण हैं। तब भी तुम हमारे राजा बनते हो! जब बच्चे थे तब शरारत करते थे और अब बड़े हुए तो यह 'बँदराई' सीख ली! अर्थात् बन्दरों जैसा आचरण करने लगे।

तब चोरी दधि माखन खावा। अब बढ़ि डाकुन-साज सजावा॥
थोरिहु खबरि कंस जो पावै। बिसरि जाहु सब, बाँधि मँगावै॥

तब चुराकर दही-मक्खन खाया। अब उससे आगे बढ़ कर डाकुओं का बाना धारण कर

लिया है । कंस को कहीं ज़रा भी खबर लग गई तो सब भूल जाओगे । वह बँधवा कर अपने पास तुम्हें बुला ही लेगा—

दोहा :—चोरत माखन काल्हि लगि, आजु बने तुम राय।
निशि देखेउ कछु स्वप्न, उठि, प्रात रची ठकुराय ॥" १३९ ॥

कल तक माखन चुराते रहे, आज राजा बने हो । कहीं रात को सपना तो नहीं देखा है , जो सवेरे उठकर 'ठकुराई' का यह नाटक रचा है ?"

बोले हरि—"तुम सकल लबारी । कहत बैन नहिं वदन सँभारी ॥
सब मिलि मोहिं लगावत चोरी । लखत न पै कछु आपनि खोरी ॥

हरि बोले कि "तुम सब झूठी हो, मुँह सँभाल कर नहीं बोलतीं । सब मिलकर मुझी पर चोरी का दोष लगाती हो; अपने अवगुणों को नहीं देखतीं ।

चोरी ते व्यापार बढ़ावा । राज-भाग नहिं कबहुँ चुकावा ॥
आजु लेहुँ जब कसरि निकारी । देहुँ धरन तब पाँव अगारी ॥

तुमने चोरी से अपना व्यापार बढ़ाया और कभी भी राज-कर नहीं चुकाया । आज जब मैं सब कसर पूरी निकाल लूँगा, तभी आगे पाँव रखने दूँगा ।

कहा कंस-भय मोहिं बतावत । अस नरपति मैं नित्य नसावत ॥
दूध दही तुम बेचनहारी । सकहु चीन्हि नहिं मोहिं गँवारी ॥

मुझे कंस का क्या डर बतलाती हो ? उसके समान राजाओं को तो मैं रोज़ ही नष्ट करता रहता हूँ । तुम दूध-दही बेचने वाली गँवार हो; मुझे क्या पहचान सकोगी ?

मैं त्रय लोक, सूर्य, शशि-स्वामी । अविदित, अलख, अनादि, अनामी ॥"
सुनि गोपी बोलीं मुसकायी— "निज मुख हरि का करहु बड़ाई ?

मैं तीनों लोक, सूर्य और चन्द्रमा का स्वामी हूँ । अज्ञात, अलख, अनादि और अनामी हूँ । अर्थात् मुझे न कोई जान पाया है, न मैं दिखाई देता हूँ, मेरा आदि नहीं है और नाम भी नहीं है ।" यह सुन कर गोपियाँ मुसकुरा कर कहने लगीं, — "कृष्ण ! तुम अपने ही मुँह अपनी बड़ाई क्या करते हो ?

दोहा :— साँचहु हम समुझहिं कहा, अविदित, अलख, अनाम ।
नंद गोप-सुत कृष्ण तुम, बसत हमारेहि ग्राम ॥ १४० ॥

सचमुच हम 'अविदित, अलख और अनाम' को क्या समझें ? (हम तो यही समझती हैं कि) कृष्ण ! तुम नंद गोप के पुत्र हो और हमारे ही गाँव में रहते हो !

सुरपति तुमहिं नृपति जो कीन्हा । चँवर छत्र काहे नहिं दीन्हा ?
कहँ सिंहासन धरेउ लुकायी ? काहे फिरत चरावत गाई ?

इन्द्र ने यदि तुम्हें राजा बनाया तो उसने चँवर और छत्र क्यों नहीं दिया ? सिंहासन कहाँ छिपा रखा है ? यहाँ वन में गाय चराते क्यों भटक रहे हो ?

राज-बसन कहँ धरे उतारी ? काहे ओढ़त कमरी कारी ॥
काल्हि छाँछ हित ढूँढ़त भाँड़े । मारग रोकि आजु तुम ठाढ़े !

राजाओं की पोशाक कहाँ उतार कर रख दी है ? काली कमली क्यों ओढ़े हुए हो ? कल

ही तो छाँछ के लिए मटकियाँ टटोलते फिरते थे और आज राह रोक कर खड़े हो गये हो !

निदरत नृपहिं हमारे आगे। फिरत कंस-भय भागे भागे ॥
जो कछु तुमहिं शक्ति-अभिमाना। मधुपुर कस नहिं करत पयाना ?

हमारे सामने तो राजा कंस की निन्दा करते हो, पर उसके भय से मारे मारे फिर रहे हो ! यदि तुम्हें अपनी शक्ति पर गर्व है तो मथुरा क्यों नहीं जाते ?

सकहु तो मारहु कंसहिं जायी। देव राजकर हमहुँ चुकायी॥"
सुनत कृष्ण कछु रिस दरसायी। कहत—"साँच अब देहुँ बतायी॥

यदि सामर्थ्य हो तो जा कर कंस को मारो। तब हम भी राज-कर चुका देंगीं।" गोपियों के वचन सुन कर कृष्ण ने जरा रोष प्रकट करते हुए कहा,—"तो मैं, अब सच सच कहे देता हूँ।

दोहा :—होहि निरर्थक नहिं वचन, समुझहु निज मन माहिं।
कंस-निधन, मधुपुर गवन, आवन पुनि व्रज नाहिं॥" १४१॥

मेरे ये वचन निरर्थक नहीं होंगे। तुम अपने मन में अच्छी तरह समझ लो। मेरा मथुरा-प्रस्थान होगा, मेरे द्वारा कंस-वध होगा और फिर मैं व्रज नहीं लौटूँगा।"

भाषे मर्म वचन घनश्यामा। भयीं सुनत व्याकुल व्रज-वामा॥
"बोलहु नहिं अस बैन कन्हाई ! जइहौ कस तुम व्रज बिसरायी ?

श्रीकृष्ण ने मर्म भरे वचन कहे, जिन्हें सुनते ही व्रजनारियाँ व्याकुल हो गईं और कहने लगीं—"कन्हाई ! ऐसी बात न कहो। तुम व्रज को कैसे भूल जाओगे ?

हम सब सुत सम तुमहिं खेलावा। पालि पोसि व्रज-राज बनावा॥
माखन खाहु, चरावहु गाई। देहु हमहिं सुख मुरलि बजाई॥

हम सबने तुम्हें पुत्र के समान खेलाया। पालन-पोषण कर तुम्हें व्रज का स्वामी बनाया। (अब) तुम (यहीं) माखन खाओ, गाय चराओ और मुरली बजा कर हमें सुख दो।

बतरस हित हम तुमहिं खिझावहिं। तुम रिस करहु देखि दुख पावहिं॥"
अस कहि धरेउ दूध दधि आगे। "लेहु श्याम ! माखन बिनु माँगे॥

हम तो तुम्हारी मीठी बातों का रस लेने के लिए तुम्हें खिझाती हैं। पर तुम्हें क्रोध करते देख हमें दुःख होता है।" ऐसा कहकर गोपियों ने दूध-दही आगे रख दिया और यह मनुहार की कि, "श्याम ! बिना माँगे ही यह माखन लो।

खेलहु, खाहु, रहहु व्रज माहीं। धरेउ काह तेहि मधुपुर माहीं॥"
बैन सनेह सुनत मुसकायी। राज-भाग हरि लीन्ह चुकायी॥

खेलो, खाओ और व्रज में रहो। उस मथुरा में क्या रखा है ?" कृष्ण उनके प्रेम-वचन मुसकुरा कर सुन रहे थे। उन्होंने राज-कर वसूल कर लिया।

दोहा :—कहहिं गोपिका—"तुम विपिन, आजुहि मिले कन्हाय !
पूजहु चिर अभिलाष उर, वंशी देहु सुनाय॥" १४२॥

फिर गोपिकाएँ कहने लगीं,—"कृष्ण ! तुम आज ही वन में मिले हो। इसलिए वंशी बजा

कर हमारी बहुत दिनों की मनोकामना पूरी कर दो।"

सुनत सखा-भुज निज भुज दीन्हा। पंकज-पाणि वेणु प्रभु लीन्हा॥
परसत अधर मुरलि मधुबाजी। लटकेउ मुकुट भौंह छवि छाजी॥

गोपिकाओं का आग्रह सुनते ही अपनी भुजा सखा की भुजा पर रखकर हरि ने अपने कर-कमलों में मुरली धारण कर ली; जो अधरों का स्पर्श करते ही मधुर ध्वनि में बजने लगी। उस समय उनका मुकुट कुछ झुक गया और भौहों की छवि दर्शनीय हो गयी।

लोचन चपल, लोल श्रुति कुंडल। झलकत युग कपोल, मुख-मंडल॥
पीत वसन फहरत तनु कैसे? लहरति उदधि उषा-द्युति जैसे॥

उनके नेत्र चंचल हो गये, कानों के कुंडल हिलने लगे। दोनों कपोल और मुख-मंडल झलक उठे। (श्याम) शरीर पर पीताम्बर (पीला वस्त्र) ऐसा फहर रहा था, मानों समुद्र पर उषा की आभा लहरा रही हो।

चितै चितै प्रभु सैन चलावत। अंग अँग पुलक-भँवर उपजावत॥
तरुण तमाल तरे हरि राजत। श्यामल कान्ति, मदन द्युति लाजत॥

भगवान लगातार अपनी चितवन के संकेत कर रहे थे और अंग अंग में पुलक रूपी भँवर उत्पन्न कर रहे थे। नये तमाल वृक्ष के नीचे हरि शोभित थे। उनकी श्यामल शरीर-कान्ति थी, जिसके आगे कामदेव की आभा भी लज्जित होती थी।

खरित व्योम महि, तरु थहराने। धेनु वत्स तृण-चरन भुलाने॥
खग मोहें, मृग-यूथ लोभाने। भंग-समाधि यती हुलसाने॥

मुरली की तान से आकाश और पृथ्वी मुखरित हो गये अर्थात् वृक्ष काँपने लगे तथा गाय और बछड़े तृण का चरना भूल गये। पक्षी मोहित हो गये; मृगों की टोली लुभा गई; मुनियों की समाधि भंग हो गई, और वे उल्लसित हो गये।

दोहा:—उलटि बहेउ यमुना सलिल, द्रवित बहे पाषाण।
रुकेउ प्रभंजन लोक त्रय, अटके व्योम विमान॥ १४३॥

मुरली की तान सुनने के लिए यमुना का जल भी उल्टा प्रवाहित होने लगा; पत्थर भी पिघलकर बहने लगे; तीनों लोकों का पवन रुक गया; आकाश में देवताओं के विमान भी ठहर गये।

गोपिन-गति किमि कहहुँ बखानी। वारि-बूँद जनु सिन्धु समानी॥
भयीं वाम निमिषहि महँ बौरी। कीन्हि मनहुँ कछु वेणु ठगौरी॥

मैं गोपियों की दशा का कैसे वर्णन करूँ? वे तो कृष्ण में इस तरह मिल गईं थीं, जैसे समुद्र में पानी की बून्द समा जाती है। वे स्त्रियाँ तो पल भर में ही बावली हो गईं, मानों वंशी ने कोई जादू कर दिया हो।

सस्मित मुख सुख श्याम निहारहिं। पुलक अंग अँग, पलक न पारहिं॥
लटपटाय चरणन लपटानीं। शिथिल शरीर फुरति नहिं बाणी॥

उनके मुख पर मुस्कराहट थी और वे सुख से श्याम की ओर देख रही थीं; उनका अंग अंग रोमांचित हो उठा था और वे पलक मारना भूल गई थीं! वे लड़खड़ाती हुई उनके चरणों में लिपट

गईं। उनका शरीर (भावावेश के कारण) शिथिल हो गया था और उनसे कुछ बोला नहीं गया।

निरखेउ प्रभु गोपी अनुरागीं। रुकेउ वेणु सोवत जनु जागीं॥
कहत सप्रीति सुनाय कन्हाई—"बेचहु दधि अब मधुपुर जायी॥"

प्रभु ने देखा कि गोपियाँ उनमें अनुरक्त हो गई हैं। उन्होंने एकाएक जब वंशी बजाना बन्द कर दिया तब गोपियों की यह दशा हो गई, मानों वे सोकर जागी हों। कृष्ण ने उन्हें प्रेम सहित सुनाकर कहा—"अब मथुरा जाकर दही बेचो।"

सुनत शब्द निज दशा निहारी। द्विविधा विवश वाम सुकुमारी॥
कबहुँ शीश दधि-भाजन धारहिं। हेरहिं हरि तन बहुरि उतारहिं॥

हरि के शब्द कान में पड़ते ही उन सुकुमार स्त्रियों ने अपनी विचित्र दशा देखी। वे बड़ी द्विविधा में पड़ गईं। कभी तो वे अपने शिर पर दही की मटकी रखतीं और कभी जब कृष्ण की ओर दृष्टि जाती तो उसे नीचे उतार देतीं।

दोहा :—चरण चलत मधुपुर डगर, लागे दृग हरि ओर।
वेणु रुकेउ, पै मन अबहुँ, बँधेउ राग-रस-डोर॥ १४४॥

उनके चरण तो मथुरा के मार्ग पर चल रहे थे परन्तु आँखें हरि की ओर लगी थीं। यद्यपि वंशी का बजना रुक गया था तो भी मन उसके राग की डोर से बँधा हुआ था, अर्थात् वंशी का बजना रुक जाने पर भी उसकी रागिनी अब भी उनके हृदय में गूंज रही थी।

व्रज दिशि गवने विपिनविहारी। पहुँची मधुपुर घोष-कुमारी॥
बीथिन बरबस चरण चलावत। छलकत रस, उछरत अँग आवत॥

वन में विचरण करने वाले कृष्ण इधर व्रज की ओर चले गये और उधर गोप-कुमारियाँ मथुरा पहुँच गईं। वहाँ वे गलियों में जबरन पैर चला रही थीं (क्योंकि उनका मन आज उचाट खाये हुए था। वह कृष्ण की वंशी की तान में उलझा हुआ था।) इसलिये गो-रस छलकता था और उछलकर उनके शरीर पर गिर जाता था।

परत चौंकि, कछु तन सुधि होई। कहत, "मधुर दधि लेहै कोई!"
जात भूलि पुनि दधि पल माहीं। तजि हरि सूझि परत कछु नाहीं॥

जब उन्हें अपने शरीर का भान होता (और उस पर दही की बिछलन देखतीं) तो वे चौंक पड़तीं और टेर देने लगतीं—"कोई मीठा दही लेगा?" किन्तु फिर पलभर में 'दही' (कहना) भूल जाती थीं। उन्हें हरि को छोड़कर और कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था।

भरी मुरलि मन मधु अभिरामा। 'श्याम' कहत विचरत व्रज वामा॥
"लेहु श्याम! कोउ लेहु गोपाला!" बेचत 'श्याम' फिरत व्रज-बाला॥

उनके मन में मुरली की मीठी-प्यारी तान भरी हुई थी। इसीलिये वे व्रज-बालायें 'दही' न कह कर 'श्याम' कहती हुई मथुरा की गलियों में विचर रही थीं। कोई 'श्याम को लो' कहतीं, कोई 'गोपाल को लो' कहतीं। इस प्रकार वे दही के बदले "श्याम" को बेचती फिर रही थीं।

भयेउ कोलाहल मधुपुर भारी। इत उत जुरे चकित नर-नारी॥
दही लेन मिस लेहिं बोलायी। सुनत 'श्याम' मुख हँसहिं ठठायी॥

गोपियों की यह विचित्र टेर सुनकर मथुरा में बड़ा कोलाहल मच गया। आश्चर्य में डूबे स्त्री-

पुरुष यहाँ-वहाँ जमा हो गये। वे दही लेने के बहाने उन्हें बुलाते और उनके मुख से 'श्याम' सुनते ही ठहाका मारकर हँस पड़ते थे।

दोहा :—कंस सुनेउ संवाद सब, आयीं व्रज ते वाम।
गोरस-भाजन सिर धरे, बेंचत मुख ते 'श्याम'॥ १४५॥

कंस ने यह सब संवाद सुना कि व्रज से स्त्रियाँ आई हैं; वे शिर पर तो गो-रस की मटकियाँ रखे हुए हैं पर मुख से 'श्याम' को बेच रही हैं।

नृपति विचारत विस्मय मानी, कस ये वाम श्याम-बौरानी॥
वृन्दावन ते वृत्त मँगावा। आय दूत संवाद सुनावा॥

राजा कंस अचरज में पड़कर सोचने लगा कि ये स्त्रियाँ श्याम के लिये पागल क्यों हो रही हैं? उसने वृन्दावन से इस रहस्य का समाचार मँगाया। दूत ने आकर वहाँ की सब बातें सुनाईं।

शक्र-समागम, तिलक-कहानी। कहेउ कृष्ण-ब्रह्मत्व बखानी॥
मानत व्रज श्यामहिं अवतारी। पालत नित निदेश नरनारी॥

उसने इन्द्र के आगमन और कृष्ण का तिलक करने की कहानी कही और कृष्ण के ब्रह्मत्व का भी वर्णन किया कि व्रज श्याम को अवतारी पुरुष मानता है और वहाँ के नर-नारी नित्य उनकी आज्ञा का पालन करते हैं।

बहुरि राजकर वृत्त बतावा। जनु नरेश-शिर वज्र गिरावा॥
करत विचार कंस जन-द्रोही। भे बलराम कृष्ण विद्रोही॥

फिर उसने 'राज-कर' (जकात) का समाचार सुनाया मानों, राजा के शिर पर वज्र गिरा दिया। तब प्रजा का शत्रु कंस यह विचारने लगा कि कृष्ण और बलराम मेरे विरुद्ध विद्रोही हो गये हैं।

आजु राजकर ग्राम चुकावहिं। होत प्रात मधुपुर चढ़ि आवहिं॥
गोपजनहु बहु कीन्हि चँड़ाई। 'कर' विरोध बिनु दीन्ह चुकायी॥

आज गाँव में राज-कर वसूल कर रहे हैं; कल मथुरा पर चढ़ाई कर सकते हैं। गोपों ने भी बड़ी धृष्टता की कि बिना विरोध किये कर चुका दिया।

दोहा :— क्षुब्ध, कुपित यादव-नृपति, लीन्हे असुर बोलाय।
केशी, व्योम, अरिष्ट सन, कहत—" जाहु व्रज धाय॥ १४६॥

यदुपति कंस ने दुःखी और क्रोधित हो केशी, व्योम, और अरिष्ट नामक असुरों को बुला लिया और उन्हें आदेश दिया कि "व्रज दौड़ जाओ—

करहु सकल छल बल चतुराई। बधहु ग्वाल रचि कछुक उपायी।
मारहु हलधर मोर अराती। बचहि कृष्ण नहिं कवनिहु भाँती॥

सब प्रकार के छल, बल और चतुराई करके किसी भी उपाय से ग्वालों का वध कर डालो। मेरे शत्रु हलधर-बलराम को मार डालो और कृष्ण तो किसी प्रकार न बच पाये।

अरि बिनु बधे लौटि जो आवहि। मधुपुर पुनि प्रवेश नहिं पावहि॥"
यहि विधि प्रलपि प्रकटि नृप रोषा। दै उपहार बहुरि परितोषा॥

तुममें से जो शत्रु को मारे बिना लौटेगा वह फिर मथुरा में घुस नहीं पायेगा।" इस प्रकार राजा ने प्रलाप और क्रोध प्रकट करने के पश्चात् उन्हें भेंट (इनाम) दे कर संतुष्ट किया।

चले असुर कंसहिं शिर नायी। पग पग अहंभाव अधिकायी॥
समुझत बालक अबहुँ कन्हाई। फूँक मारि जनु सकत उड़ायी॥

असुर कंस को शिर झुकाकर चले। उनके हर कदम में घमंड का भाव बढ़ता जाता था। वे कृष्ण को अभी भी ऐसा बालक समझते थे, जिसे मानों फूंक मार कर उड़ा सकते हों।

तृणावर्त सुधि जेहि क्षण आवति। सहसा हृदय भीति उपजावति॥
शकट, वत्स, पूतना-निपाता। शोचि धुकत उर, काँपत गाता॥

परन्तु जिस क्षरण उन्हें तृणावर्त की याद आती, उनके हृदय में एकाएक डर पैदा हो जाता। इसी प्रकार शकट, वत्स और पूतना के वध का स्मरण कर उनके हृदय की धुकधुकी बढ़ जाती और शरीर काँप उठता।

दोहा:—विस्मय, मोद, विषाद युत, वृन्दावन नियराय।
सखन संग आवत लखे, गोविँद गाय चराय॥१४७॥

अचरज, खुशी और उदासी के भावों के साथ वे वृन्दावन के पास पहुँच गये, जहाँ उन्होंने गोविन्द कृष्ण को सखाओं सहित गाय चराकर लौटते हुए देखा।

ग्वाल बाल कोउ सस्वर गावत। कोउ शृंगी ध्वनि सरस सुनावत॥
कोउ थिरकत, कोउ भाव बतावत। कोउ सुरभि सब जोरि चलावत॥

कोई ग्वाल-बाल ऊँचे स्वर में गाता था, कोई सरस शृंगी-नाद सुनाता था, कोई नाचता था, कोई 'भाव' बतलाता था (हाथ-आँख आदि से संकेत कर मानों कुछ कहता था) और कोई सब गायों को इकठ्ठा कर चला रहा था।

सखन मध्य मोहन छवि छाजत। हटकत गैयन, वेणु बजावत॥
नील-कमल-दल-द्युति नँदलाला। वक्षस्थल सित सरसिज-माला॥

सखाओं के बीच मोहन शोभायमान हो रहे थे। वे बीच बीच में गायों को रोकते और वंशी बजाते जा रहे थे। नंदलाल की नीले कमलदल के समान कान्ति थी। उनके वक्षस्थल पर सफेद कमल की माला थी।

कुवलय रक्त अधर युग लोचन। वारिज-वदन इंदु-मद-मोचन॥
रेखा तिलक ललाट सोहाई। बही उमहि जनु सुंदरताई॥

उनके ओंठ लाल और आँखें नील कमल के समान थीं। सौन्दर्य में चन्द्रमा का अहंकार चूर करने वाला उनका मुख कमल के समान था। मस्तक पर तिलक की रेखा ऐसी शोभा दे रही थी, मानों सुन्दरता ही उमड़कर बह रही हो।

गोरज-मंडित कुंचित केशा। सुषमा धाम श्याम वपु वेषा॥
स्वागत-हित व्रजजन सब धाये। यशुमति आतुर हृदय लगाये॥

उनके घुँघराले बालों पर गो-धूलि छायी हुई थी। श्याम का शरीर और वेश सौन्दर्य का मानों धाम था। श्रीकृष्ण के स्वागत के लिये सब व्रजवासी दौड़ पड़े और यशोदा ने उन्हें उमंग के साथ छाती से लगा लिया।

दोहा :-- चूमति शिशु, पूछति जननि, "लाये काह कन्हाय!"
हँसि हँसि श्रीपति ओट पट, वन-फल दिये देखाय ॥ १४८ ॥

माता यशोदा ने अपने बालक को चूम कर जब पूछा कि "कान्ह ! क्या लाये हो?" तो हरि ने हँसते हँसते वस्त्र खोलकर वन के फलों को दिखा दिया।

हाथ पसारेउ यशुमति माई। छीने वन-फल हँसि नँदरायी॥
कहत महर, "मोरेहि हित लाये। खीझी महरि, श्याम मुसकाये॥

ज्योंही यशोदा ने वन-फलों को लेने के लिए अपने हाथ फैलाए, त्योंही नंद ने हँसकर उन्हें छीन लिया। महर नंद कहने लगे कि "मेरे ही लिए लाये हैं।" नंद की छीना-झपटी से यशोदा खीझ उठीं और श्याम मुस्कुरा उठे।

प्रभु पुनि कामरि ओर निहारा। यशुदा अचल ललकि पसारा॥
दीन्ही कामरि कान्ह झरायी। बरसे वन-फल गनि नहिं जायी॥

फिर कृष्ण ने अपनी कमली की तरफ देखा, यशोदा ने लपक कर अपना आँचल फैला दिया। जब कृष्ण ने अपनी कमली को झराया तो इतने वन-फल गिरे कि गिने ही नहीं जा सकते थे।

ग्वाल गोप मिलि लूटन लागे। अवसर पायेउ असुर अभागे॥
धरेउ अरिष्टासुर वृष वेषा। भीर मध्य द्रुत कीन्ह प्रवेशा॥

उन्हें ग्वाल-बाल मिलकर लूटने लगे। उसी समय अभागे असुरों को मौका मिल गया। अरिष्टासुर ने बैल का रूप बना लिया और जल्दी से वह भीड़ में घुस गया।

पायेउ जहँ जेहि मारन लागा। आकुल ग्वाल वृन्द सब भागा॥
गिरे धरणि खल पद दलि डारे। सींग उठाय अनेक पछारे॥

उसने जहाँ जिसे पाया मारना शुरू कर दिया, जिससे व्याकुल होकर सब ग्वालों का झुंड भाग गया। जो ग्वाले दौड़ते दौड़ते पृथ्वी पर गिर पड़े, उन्हें उस दुष्ट ने खुरों से रौंद डाला और अनेकों को सींगों पर उठाकर पछाड़ डाला।

दोहा:—बिडरि सुरभि भागीं विकल, खूँदि खुरन ब्रज बाल।
उत्थित आर्त निनाद थल, त्राहि! त्राहि! नँदलाल! १४९ ॥

डरी हुई गायें भी खुरों से ब्रज के बच्चों को रौंदती हुई भागीं। उस स्थल पर "त्राहि! त्राहि! नंदलाल!" का दुखी स्वर छा गया।

गरजेउ दनुज देखि हरि आये। रोष-अरुण दृग सींग उठाये॥
धायेउ वायु वेग बल भारी। चढ़े सखा भुज उछरि मुरारी॥

हरि को आते हुए देखकर वह दनुज गरज उठा। उसने रोष से आँखें लाल कर अपने सींग उठाये और वह भारी बलवान असुर वायु के वेग से उनकी ओर दौड़ा। कृष्ण सखा की भुजा पर उछलकर चढ़ गये।

प्रभु समीप आयेउ जेहि काला। झपटि गहे हरि सींग विशाला॥
पटकेउ महि झकझोरि भँवायी। उठन चहेउ शठ उठि नहिं जायी॥

जब वह उनके समीप आ गया तब उन्होंने झपट कर उसके भारी सींगों को पकड़ लिया और

उसे झकझोर तथा घुमा कर पृथ्वी पर पटक दिया। उस दुष्ट ने उठने की कोशिश की, पर उससे उठा नहीं गया।

सींग उपारि कीन्ह आघाता। हतेउ दैत्य हरि व्रज-सुख-दाता॥
लखि अरिष्ट-वध केशी धावा। अश्व वेष हरि सन्मुख आवा॥

तब कृष्ण ने उसके सींग उखाड़ कर उस पर प्रहार किया और इस तरह व्रज को सुख देने वाले हरि ने उस दैत्य को मार डाला। अरिष्ट का वध देख कर केशी दौड़ पड़ा और घोड़े का रूप धारण कर हरि के सन्मुख आ गया।

खुरन खनत महि मुख विस्तारी। लीलन चहत सृष्टि जनु सारी॥
रहे अचल हरि, कौतुक कीन्हा। सहसा स्वकर असुर-मुख दीन्हा॥

खुरों से पृथ्वी को खोदते हुए उसने ऐसा मुँह फैलाया, मानों सारी सृष्टि को ही निगल लेना चाहता हो। हरि उसे देख कर स्थिर रहे, और उन्होंने अपना हाथ उस असुर के मुख में डाल कर तनिक कौतुक (विनोद) किया।

दोहा :— टूटे रद रसना असुर, भयी ऐंठि पाषाण।
बढ़ेउ हस्त, श्वासा रुकी, परेउ धरणि निष्प्राण॥ १५०॥

असुर के दाँत टूट गये, उसकी जीभ ऐंठ कर पत्थर बन गई और जब हरि का हाथ बढ़ा तो उसकी साँस ही रुक गई तथा वह मर कर धरती पर गिर पड़ा।

हतेउ सकौतुक केशी श्यामू। केशव नाम भयेउ अभिरामू॥
लखि व्योमासुर उर भय माना। निशि वृन्दावन जाय लुकाना॥

श्याम ने खेल खेल में केशी की हत्या कर डाली। इसी से उनका सुन्दर नाम 'केशव' हुआ। केशव की लीला देख कर व्योमासुर के मन में डर भर गया। वह रात को वृन्दावन में जा छिपा।

सुत-बल निरखि नंद आनंदे। पद-पंकज मुद व्रजजन वंदे॥
हर्ष-अश्रु बहु मातु बहाये। सुरगण व्योम सुमन बरसाये॥

नंद अपने पुत्र के बल को देख कर प्रसन्न हुए। खुशी खुशी व्रज की जनता ने उनके चरण-कमलों की वन्दना की। माता न हर्ष के आँसू बहाये और देवताओं ने आकाश से पुष्प-वर्षा की।

सखन बजाये वेणु-विषाणा। गवने भवन करत गुण गाना॥
आये नंद-सदन बनवारी। आरति प्रमुदित मातु उतारी॥

सखाओं ने वेणु और श्रृंगी बजाई और हरि का गुण-गान करते हुए अपने घर चले गये। भगवान कृष्ण नंद के घर गये, जहाँ माता यशोदा ने प्रसन्न हो उनकी आरती उतारी।

भूषण वसन सप्रीति सँभारति। हँसि हँसि जननि अंग-रज झारति॥
लागि जेंवावन पुनि महतारी। रोहिणि करति सप्रीति बयारी॥

माता हरि के आभूषण और वस्त्रों को, जो असुरों को मारते समय अस्त-व्यस्त हो गये थे, ठीक करने लगी और हँस हँसकर उनके अंग पर उड़ी हुई धूल साफ़ करने लगी। फिर वह उन्हें भोजन कराने बैठी और रोहिणी प्रेम से उनको (पंखा झलकर) हवा करने लगीं।

दोहा :—उदित व्योम लखि शशि शरद, औचक चले पराय।
"तनिक खरिक लगि जात मैं, ब्यानी धौरी गाय॥" १५१॥

इतने ही में कृष्ण ने आकाश में शरद-ऋतु के चन्द्रमा का उदय देखा। वे एकाएक यह कहकर भाग चले कि " मैं तनिक खरिक (गो-शाला) तक जाता हूँ। धौली गाय व्याई है। "

धाय खरिक पहुँचे घनश्यामा। पाये दुहत धेनु श्रीदामा॥
कहेउ, "सखा सब लेहु बोलायी। वृंदावन खेलहिं निशि जायी॥"

जब कृष्ण दौड़कर 'खरिक' (गोशाला) पहुँचे तो उन्होंने श्रीदामा को गाय दुहते देखा। उससे उन्होंने कहा कि " सब सखाओंको बुला लो। रातको हम सब वृन्दावन में जाकर खेलेंगे।"

जोरे सखा सकल श्रीदामा। गये जमुन-तट सँग बलरामा॥
लागे खेलन मिलि सुख देनू। बालक वृंद बने कछु धेनू॥

श्रीदामा ने सब सखाओं को एकत्र कर लिया और वे सब बलराम के साथ यमुना-तट पर पहुँच गये। वे सब मिलकर सुख देने वाले खेल खेलने लगे। कुछ बालक गाय बन गये।

धेनु-चोर कछु अन्य बनाये। सखा शेष रक्षक बनि आये॥
व्योमासुरहु सुअवसर पायेउ। बनेउ चोर, मिलि सखन समायेउ॥

...कुछ गाय चुराने वाले बन गये और जो सखा बच रहे, वे उनके रक्षक बन कर आ गये। व्योमासुर को भी अच्छा मौका हाथ लगा। वह चोर बनकर सखाओं में जाकर मिल गया।

चोरी-मिस लै बाल उठायी। गिरि गह्वर राखहि खल जायी॥
शिला द्वार धरि पुनि पुनि आवै। बाल उठाय अन्य लै जावै॥

चोरी के बहाने वह दुष्ट एक बालक को उठा ले जाता, उसे पर्वत की खोह में रख देता और उसके दरवाजे पर चट्टान रखकर फिर लौट पडता। फिर दूसरे बालक को उठा ले जाता।

दोहा :—लीलापति निरखे निखिल, व्योमासुर-व्यापार।
दैत्य-कंध आपहु चढ़े, आये गह्वर-द्वार ॥ १५२ ॥

लीलापति भगवान कृष्ण ने व्योमासुर के सारे कामों को भाँप लिया। इसलिये वे खुद दैत्य के कंधे पर चढ़ गये और खोह के द्वार पर पहुँच गये।

लाग उतारन जब बनवारी। उतरे नहिं हरि गरिमा धारी॥
सकेउ न सहि भव-धर गरुआई। गिरेउ असुर मुँह-भर भहरायी॥

जब व्योमासुर वनमाली कृष्ण को उतारने लगा तो वे उसके उतारे नहीं उतरे। उन्होंने अपने को भारी बना लिया। वह असुर ही उन्हें उतारने की कोशिश में भरभराकर मुँह के बल गिर पड़ा।

बधेउ व्योम हरि ग्रीव मरोरी। इक्षु-दण्ड जिमि जीव निचोरी॥
गवने गुहा शिला सरकायी। धाये सखा रँभाय रँभायी॥

हरि ने उसकी गर्दन को मरोड़कर उसे मार डाला और उसके प्राणों को गन्ने के रस के समान निचोड़ लिया। फिर शिला हटाकर जब वे गुफा में गये तो सखा रँभा रँभाकर दौड पड़े। (ये सखा अब भी यह समझ रहे थे कि वे खेल-खेल में गुफा में बंद किये गये हैं।)

लखि हरि ग्वाल-बाल सरलाई। विहँसि विहँसि खल-कथा सुनायी—
" सखा न होय असुर यह भारी। आयेउँ गुहा ताहि संहारी॥ "

हरि ने गोप बालकों का भोलापन देखकर उन्हें हँसते हँसते दुष्ट व्योमासुरकी कथा सुनाई,—

" वह सखा नहीं था, बड़ा भारी असुर था। मैं गुफामें उसको मारकर आया हूँ।"

द्वार सबन शव दीख महाना। "राखे आजु बहुरि हरि प्राणा॥
उचित न राति रहब वन होई। निकसहि कहुँ ते और न कोई॥"

जब सबने दरवाजे पर बड़ी भारी लाश को देखा तब वे कहने लगे कि--" आज फिर हरि ने हमारे प्राण बचाये। रातको वन में रहना उचित नहीं हैं। कहीं से और कोई असुर न निकल आये।"

दोहाः—" चलहु ! चलहु !" बोलहिं सखा, कर्षहिं कर गहि श्याम।
शिला-खंड गोविन्द बसि, लखत प्रकृति छवि धाम॥ १५३॥

सखा 'चलो, चलो' कहते और श्याम को हाथ से पकड़कर खींचते थे। पर श्याम चट्टान पर बैठ कर सुन्दरी प्रकृति की छटा देख रहे थे।

शरदागम शोभित मधु यामिनि। महि अवतरित मनहुँ सुर-कामिनि॥
विलसित व्योम विमल विधु आनन। कुंचित अलक श्याम शशलांछन॥

शरत्काल की मीठी रात शोभायमान थी, वह ऐसी लग रही थी, मानों पृथ्वी पर अप्सरा उतर आई हो। आकाश में विलसने वाला निर्मल चन्द्रमाही उसका मानों मुख है। चन्द्रमा पर जो कालिमा है, वही मानों उसके घुंघराले काले केश हैं।

पुलकित कौमुदि अमल दुकूला। तारक-अवलि विभूषण फूला॥
बंधुक-अरुण अधर अभिरामा। कलिका कुंद दशन द्युति धामा॥

खिली हुई चाँदनी मानों उसका स्वच्छ वस्त्र है; तारों की कतार उसके आभूषण हैं; लाल दुपहरिया के फूल मधुर अधर हैं और कुंद की कलियाँ मानों उसके चमकने वाले दाँत हैं।

कैरव कुंडल श्रवणन धारे। नवल मल्लिका चिकुर सँवारे॥
हंस मुखर नूपुर स्वर गावति। अलि ध्वनि किंकिणि वाद्य बजावति॥

कानों में कुमुद के कुंडल पहने हुए, नये बेला के फूलों से केश सजाये हुए, सरोवरों में हंस के स्वर रूपी घुंघरू की रुनझुन में गाते हुए तथा भौरों की गुंजार रूपी करधनी के बाजे को बजाते हुए—

हरि, ढिग शरद शर्वरी आयी। चित-रंजिनी वृत्ति हुलसायी॥
अधर धरी मधु मुरलि कन्हाई। संसृति सकल समीप बोलायी॥

शरद् की रात हरि के पास पहुँची; उसने उनके हृदय की मनोरंजिनी भावना को जगा दिया। तब कृष्ण ने अपने अधर पर मधुर मुरली धारण की और सारी सृष्टि को मानों अपने पास बुलाया।

दोहाः—जागेउ जड़ चेतन जगत, त्यागे नीड़ विहंग।
निकसे वनचर तजि विपिन, सँग सँग सिंह कुरंग॥ १५४॥

मुरली की तान सुनकर समस्त जड़-चेतन जगत जाग उठा, पक्षियों ने अपने घोंसले छोड़ दिये, वन में विचरने वाले पशु वन छोड़ छोड़कर निकल पड़े, जिनमें सिंह और हरिण साथ-साथ दिखाई दिये। (मुरली की तान इतनी मीठी थी कि उसे सुनने के लिये पशुओं ने अपना

स्वाभाविक वैर भुला दिया ।)

गति आपनि सबहिन बिसरायी। वंशी-रव पहुँचेउ व्रज जायी॥
जागे नर, जागीं व्रज-वासू। पूछत- "रास रचेउ कहँ श्यामू?"

जब वंशी का स्वर वृन्दावन पहुँचा तो वहाँ सबने अपना भान भुला दिया । नर और नारियाँ जागकर आपस में पूछने लगे कि "श्याम ने किस स्थान पर रास रचाया है ?"

महि कोउ, कोउ व्योम निहारा। "वही उमहि कहँ ते स्वर-धारा?"
लै लै नाम श्याम उत टेरे। चले दारु-योषित इव प्रेरे॥

किसी ने पृथ्वी और किसी ने आकाश की ओर देखकर कहा कि यह स्वर की धारा कहाँ से उमड़ कर बह रही है ? वे श्याम का नाम ले लेकर वहाँ पुकारने लगे और कठपुतली के समान खिंचे हुए उनकी ओर चले गये ।

सकेउ न रहि कोऊ निज धामा। गवने व्रजजन जहँ घनश्यामा॥
सकुच नाहिं, भीतिहु हिय नाहीं। आये निमिष माहिं हरि पाहीं॥

कोई भी अपने घर पर नहीं ठहर सका । सभी व्रजवासी जहाँ कृष्ण थे, वहाँ गये । न उनके मन में संकोच था, न भय । ये पल भर में ही हरि के पास पहुँच गये ।

लखे समीप श्याम चहुँ ओरा। सिंह, व्याघ्र, गज, मृग, पिक, मोरा॥
सुनत वेणु-ध्वनि त्यागि उपाधी। जनु मुनीश सब लागि समाधी॥

उन्होंने श्याम के चारों ओर सिंह, बाघ, हाथी, हरिण, कोयल और मोरों को देखा । वंशी की तान सुन कर वे सब जीव इस तरह उसमें लीन हो गये, मानों समाधि लगाये हुए मुनीश्वर बैठे हों ।

दोहा :— ठिठकेउ विधु बँधि वेणु-स्वर, वहेउ व्योम उल्लास।
याम-हीन यामिनि भयी, रचेउ श्याम महि रास ॥ १५५॥

वीणा के स्वर में बँध कर चन्द्रमा भी एक स्थान पर ठिठक कर रह गया । आकाश में हर्ष बहने लगा । जब श्याम ने पृथ्वी पर रास रचा तो रात भी बिना घड़ी की हो गई । अर्थात् समय का प्रवाह भी स्थिर हो गया ।

हरि-प्रेरित सब व्रज नर-नारी। धाये एक एक कर धारी॥
शोभित सकल मंडलाकारा। चंचल-चरण, चपल दृग-तारा॥

व्रज के सब नर-नारी हरि की प्रेरणा से दौड़ आये और एक दूसरे का हाथ पकड़ कर सब मंडलाकार में शोभित हो गये । उनके चरण चंचल थे और आँखों के तारे चलायमान ।

राधा-माधव मध्य विराजे। छवि विलोकि रति मन्मथ लाजे॥
दामनि-द्युति राजहिं व्रज-वामा। नील निचोल नवल अभिरामा॥

रास-मंडल के बीच में राधा और माधव विराज रहे थे, जिनकी छवि देख कर रति और कामदेव भी लज्जित हो गये । व्रज की स्त्रियों की कान्ति बिजली जैसी थी । उनकी देह पर नीला वस्त्र शोभा दे रहा था ।

अँग अँग आभूषण मणि मोती। किरण समुज्ज्वल जगमग ज्योती॥
मेचक केशबंध कमनीया। विरचित सुमन-राजि रमणीया॥

उनके अंग अंग में मणि और मोतियों के जेवर थे, जिनकी किरणों से निर्मल ज्योति जगमग कर

रही थी। उनके काले सुन्दर बालों के जूड़े थे, जिनमें फूलों की कतार की सोहावनी रचना थी।

मृगमद-विन्दु इन्दु द्युति साजी। कर कंकण, कटि किंकिणि बाजी॥
बाजे वीणा विविध मृदंगा। मुरज पखावज एकहि संगा॥

वे चन्द्रमा के समान सुन्दर कस्तूरी की टिपकी लगाये हुए थीं। हाथों के कंकण और कमर की करधनी बजने लगीं। वीणा और अनेक प्रकार के मृदंग, मुरज, पखावज आदि बाजे एक ही साथ बज उठे।

दोहा :— सप्त सुरन मुरली बजी, गाये गोविँद गान।
सिहरि ससुख वसुधा सुनति, सृजन-प्रलय-आख्यान॥१५६॥

मुरली सातों स्वरों से बजी और गोविन्द गीत गाने लगे। उनके गायन में सृष्टि और प्रलय की कथा को पृथ्वी सुख से सिहरती हुई सुन रही थी।

गोपिन गोविँद लीला गायी। स्वर-सुरसरि महि व्योम बहायी॥
नर्तत मुद मिलि नटवर संगा। दमकत वदन ललित भ्रू-भंगा॥

गोपियों ने श्रीकृष्ण की लीला का गायन किया। और अपनी स्वर की गंगा पृथ्वी तथा आकाश में वहा दी। वे लीला में चतुर (नटवर) हरि के साथ प्रसन्नता से नाच रही थीं। उनका मुख दमक रहा था; उनकी भ्रूभंगी में लालित्य था।

अनुहरि ताल चरण चलि जाहीं। थिरकत अंग, अधर मुसकाहीं॥
पटकत पग उपजत उल्लासा। पद पद बाढ़त लास विलासा॥

ताल के अनुरूप ही उनके चरण गतिमान थे; अङ्ग अङ्ग थिरक रहे थे और अधर मुसकरा रहे थे। रास के समय जब वे पैरों को पृथ्वी पर यहां वहां रखती थीं, तब उल्लास लहराता था और पद पद पर रस की वृद्धि हो रही थी।

भुज फेरत, कर भाव बतावत। वलय मुद्रिका रस बरसावत॥
कबरी शिथिल सुमन झरि लागी। वदन कमल कच अलि अनुरागी॥

वे भुजाएँ फेरतीं और हाथों से भाव बतलाती थीं। उनके कंकण और अंगूठियों से रस बरस रहा था। जूड़े खुल रहे थे। उनके फूल झर रहे थे। उनके छूटे हुए केश मुख पर ऐसे लगते थे, मानों कमल पर प्रेमी भौंरे झूम रहे हों।

लहरत वसन, उड़त उर अंचल। अनुहरि हरिहिं विलोल दृगंचल॥
दरकत कंचुकि, तरकत माला। प्रकटत आनन श्रम-कण-जाला॥

नृत्य के आवेश में उनके वस्त्र लहरा रहे थे, वक्षस्थल से अँचल उड़ रहा था और हरि की गति के साथ गतिशील नेत्र चंचल थे। कंचुकी दरकती थी, मालायें टूटी पड़ती थीं और मुख पर पसीने की बूंदें झलक रही थीं।

दोहा :—नील पीतपट, लट मुकुट, कुंडल श्रुति ताटंक।
अरुझत एकहिं एक मिलि, राधा-माधव-अंक॥१५७॥

राधा का नीला वस्त्र और कृष्ण का 'पीताम्बर', राधा की लट और कृष्ण का मुकुट, राधा के कर्णफूल और कृष्ण के कुंडल एक दूसरे में मिलकर उलझे जा रहे थे और वैसे ही दोनों के हृदय भी।

बहेउ अनवरत रास-प्रवाहा । वसुधा सुधा-सिन्धु अवगाहा ॥
उमड़त-उछरत शशधर ओरा । सींचत अंबर हर्ष हिलोरा ॥

रास का लगातार प्रवाह बहा, जिससे पृथ्वी अमृत के समुद्र में डूब गई । पृथ्वी पर छाया हुआ यह अमृत का सागर चंद्र की ओर उमड़ और उछल कर आकाश को हर्ष की लहरों से सींच रहा था । अर्थात् रास का आनन्द पृथ्वी को पूरित कर उछल उछल कर आकाश को सींचने लगा ।

अमर-वाम निज निज पति संगा । बहीं रास-रस विह्वल अंगा ॥
किन्नर, सिद्ध, नाग, गंधर्वा । नभ नाचत अनुहरि हरि सर्वा ॥

देवताओं की स्त्रियाँ अपने अपने पतियों के साथ अंग अंग से व्याकुल हो राग के रस में बह गईं । हरि का अनुसरण कर सारे किन्नर, सिद्ध, नाग और गंधर्व भी आकाश में नाचने लगे ।

उदधि-वीचि, विधु-निशि कर जोरे । नाचत नखत रास-रस-भोरे ॥
महि, खग, मृग, तरु, लता, विताना । नाचत सस्मित विविध विधाना ॥

लहरें और समुद्र, रात और चन्द्रमा हाथ में हाथ देकर नाच रहे थे तथा तारे भी रास के रस में बेसुध हो नाच रहे थे । पृथ्वी, पक्षी, हरिण, वृक्ष, लता और मण्डप प्रसन्न हो अनेक प्रकार से नाच रहे थे ।

नहिं जड़ चेतन कहुँ कोउ बाचा । हरि-लय-लिप्त विश्व सब नाचा ॥
विधि-शारदा, इन्द्र-इन्द्राणी । नाचत विहँसि महेश-भवानी ॥

जड़ और चेतन में कोई भी कहीं नहीं बचा था । सारा विश्व ही हरि की लय में लीन होकर नाच रहा था । ब्रह्मा और सरस्वती, इन्द्र और इन्द्राणी नाच रहे थे । शिव और पार्वती भी विहँसते हुए नाच रहे थे ।

दोहा :— रास-सुधा-सिंचित बहुरि, पाये अंग अनंग ।
नाचति रति पति पाय पुनि, राधा माधव संग ॥ १५८ ॥

रास के अमृत से सिंच कर 'अनंग' (बिना देह के कामदेव) फिर से 'साङ्ग' (देहधारी) हो गये अर्थात् शिव ने जिस कामदेव को अपनी क्रोधाग्नि में जला दिया था, वह फिर से जी उठा । कामदेव की स्त्री रति फिर अपने पति को पाकर राधा और माधव के साथ नाचने लगी !

परमानंद मगन जग जानी । कीन्हेउ कौतुक सारँगपाणी ॥
गहे हाथ निज राधा हाथा । गवने कुंज-भवन ब्रजनाथा ॥

संसार को 'परमानन्द' में डूबा जानकर भगवान ने एक कौतुक (खेल) रचा । वे अपने हाथ में राधा का हाथ पकड़े हुए कुंज-भवन में गये ।

जमुना-नीर तरंग बढ़ायी । पुनि पुनि चरण पखारत आयी ॥
झुकत महीरुह करत प्रणामा । बरसत सुमन पराग ललामा ॥

यमुना अपने जल की लहरें बढ़ा बढ़ा कर बार बार उनके चरणों को धो रही थी । पेड़ झुक झुक कर उन्हें प्रणाम कर रहे थे और सुन्दर पराग वाले फूल बरस रहे थे ।

स्वागत-गीत कोकिला गावहिं । अलि-कुल विरुदावली सुनावहिं ॥
चन्द्र-मरीचि रंध्र-मग आयी । विलसति वदन-कुमुद विकसायी ॥

कोयलें स्वागत के गीत गाती थीं और भौंरे गूँजकर कीर्ति के गान सुनाते थे । चन्द्रमा की

किरणें कुंज के छेदों के मार्ग से आकर मुख रूपी कुमुद को खिलाकर शोभित हो रही थीं।

श्रम-कण मलय समीर सुखाये। आसन्न किसलय लाय बिछाये॥
मंजु निकुंज ब्रह्म आसीना। अंक विराजति प्रकृति प्रवीणा॥

मलय-पवन ने बहकर राधा-माधव के मुख पर छाई हुई पसीने की बून्दों को सुखा दिया और पत्तों के आसन लाकर बिछा दिये। सुन्दर लता-मण्डप में ब्रह्म के समान कृष्ण विराजमान थे और उनकी गोद में प्रकृति की तरह प्रवीण राधा शोभायमान थी।

दोहा:—विहँसत हरि हेरत प्रियहिं, लास-रसीले नैन।
अधर मधुर बरसे बहुरि, सुधा-सिक्त मृदु बैन— १५९॥

कृष्ण मुसकुराते और राधा को लास (नृत्य) के कारण रसीले बने नेत्रों से अर्थात् प्रेमभाव से देख रहे थे। (इसी समय) हरि के मीठे अधरों से अमृत से भीगे कोमल वचन बरस पड़े अर्थात् राधा को प्रेम से देखने के कुछ समय बाद हरि ने उनसे मधुर वचन कहे।

"हम दोउ एक, नाहिं कछु भेदा। कहत सकल निगमागम वेदा॥
निवसति यथा क्षीर धवलाई। यथा हुताशन दाहकताई॥

श्रीकृष्ण ने कहा—"हम दोनों एक हैं—हममें कुछ भी भेद नहीं है। सब वेद-पुराण यही कहते हैं। जिस प्रकार दूध में सफेदी और आग में दहन शक्ति रहती है—

बसत प्रिये! तस तुम मोहिं माहीं। तुमहिं विहाय मोरि गति नाहीं॥
मैं स्रष्टा, तुम चिर नव सृष्टी। मैं संतोष, परम तुम तुष्टी॥

उसी प्रकार हे प्रिये! तुम मुझमें बसती हो। तुम्हें छोड़कर मेरी गति नहीं है। मैं सृष्टा हूँ और तुम सदा नई रहने वाली मेरी सृष्टि हो; मैं संतोष हूँ और तुम तुष्टि हो।

मैं दिनपति, तुम दिन उजियारी। मैं शशि, तुमहु कान्ति मनहारी॥
मैं दीपक, तुम शिखा सोहावनि। मैं जलनिधि, तुम वेला पावनि॥

मैं सूर्य हूँ और तुम दिन का उजाला हो; मैं चन्द्रमा हूँ और तुम मन को हरने वाली चाँदनी हो; मैं दीपक हूँ और तुम उसकी सुन्दर लौ हो; मैं समुद्र हूँ और तुम उसकी पवित्र तटी हो।

मैं पावक, तुम स्वाहा रूपा। मैं धनेश, तुम ऋद्धि अनूपा॥
मैं जहँ अर्थ तहाँ तुम वाणी। मैं नय, तुमहिं नीति कह ज्ञानी॥

मैं अनल हूँ और तुम स्वाहा हो; मैं कुबेर हूँ और तुम अनुपम ऋद्धि हो; मैं जहाँ अर्थ हूँ वहीं तुम वाणी हो और मैं यदि नय हूँ तो तुम्हें ज्ञानी नीति कहते हैं।

दोहा—धर्म सत-क्रिया सदृश हम, बोध बुद्धि अनुहारि॥
व्याप्त विश्व भरि तत्त्व इक, दिखत पुरुष अरु नारि॥ १६०॥

हम दोनों धर्म और सत्क्रिया और ज्ञान एवं बुद्धि के समान हैं। यद्यपि विश्व भर में एक ही तत्व छाया हुआ है तो भी वह कहीं पुरुष और कहीं स्त्री के रूप में दिखलाई देता है।

यह मम पूर्ण कला अवतारा। विविध चरित्र, अमित विस्तारा॥
अगणित कर्म, असंख्य निवासा। ग्राम निगम पुर नगर प्रवासा॥

यह मेरा पूर्णकला का अवतार है; इस अवतार में विविध प्रकार के और बड़े विस्तार वाले

चरित्र करूँगा। मैं अनगिनती कर्म करूँगा। असंख्य स्थानों में रहूँगा। न जाने कितने गावों, निगमों, पुरों तथा नगरों की यात्रा करूंगा। (निगम उस गाँव को कहते हैं जिसमें बाजार भरता है)

कतहुँ जन्म, कहुँ शैशव यापन। कतहुँ समर, कहुँ पुर संस्थापन॥
कतहुँ सन्धि, कहुँ रण-गुण-गायन। कतहुँ विजय, कहुँ समर-पलायन॥

(इस अवतार में) कहीं जन्म, कहीं बचपन का बीतना, कहीं युद्ध और कहीं नगर की स्थापना, कहीं संधि और कहीं युद्ध की प्रशंसा है। कहीं जीत और कहीं युद्ध से पलायन (भागने) का प्रसंग है;

कतहुँ वेणु, कहुँ चक्र सुदर्शन। कतहुँ हर्ष, कहुँ रोष-प्रदर्शन॥
कतहुँ प्रणय, कहुँ अनत विवाहा। कतहुँ हृदय, कहुँ नय-निर्वाहा॥

कहीं वीणा है और कहीं सुदर्शन चक्र है; कहीं हर्ष और कहीं क्रोध का दिखावा है; एक जगह प्रेम और दूसरी जगह विवाह है; कहीं हृदय और कहीं नीति का पालन है;

कतहुँ शाक, कहुँ मधु पकवाना। कतहुँ पदातिक, कहुँ नभ-याना॥
कतहुँ दया, कहुँ कर्म नृशंसा। कतहुँ कुवच, कहुँ संत प्रशंसा॥

कहीं शाक है और कहीं मीठे पकवान हैं; कहीं पैदल-यात्रा हैं और कहीं आकाश के विमान हैं; कहीं दया है और कहीं क्रूर कर्म हैं; कहीं बुरे वचन सुनने हैं और कहीं संतों की प्रशंसा।

दोहा:—जटिल जगत जीवन यथा, जटिल तथा मम कर्म।
ग्रथित एक गुण चरित सब, समुझहिं ज्ञानी मर्म ॥ १६१॥

संसार का जीवन जैसा जटिल हो गया है उसी के समान ही मेरे कर्म भी जटिल होंगे। सब चरित्रों को मैंने एक सत में पिरो दिया है, जिसका मर्म और भेद ज्ञानी ही समझ सकते हैं।

मृदुल भाव मैं व्रज दरसावा। प्रेम-विटप करि यत्न लगावा॥
भक्ति-रूप धरि तुम व्रज आयीं। नीरधि नेह नयन भरि लायीं॥

मैंने व्रज में 'माधुर्य-भाव' प्रकट किया है और वहाँ प्रयत्न-पूर्वक प्रेम के पौधे को लगाया है। तुम व्रज में भक्ति का रूप धारण कर आई हो और आँखों में प्रेम का समुद्र भर लाई हो।

संसृति-उपवन रहेउ सुखायी। सींचि नेह-जल देहु बढ़ायी॥
जब लगि मैं कुश-काँस उखारहुँ। खोजि खोजि असुरन संहारहुँ॥

संसार रूपी उपवन (बगीचा) सूखा जा रहा है। इसे प्रेम के जल से सींचकर हरा-भरा कर दो। इसी बीच में इस उपवन के कुश और काँस उखाड़ूंगा; अर्थात् ढूंढ़ ढूंढ़ कर असुरों का संहार करूँगा।

तुम व्रज बसहु, करहु रखवारी। सींचहु प्रेम-विटप दृग-वारी॥
उत मैं करहुँ शूल निर्मूला। फूलहि प्रेम-वृत्त इत फूला॥

तुम व्रज में बसो और उसकी रक्षा करो तथा अपने आँसुओं से (मेरे लगाये हुए) प्रेम के पौधे को सींचती रहो। वहाँ मैं काँटों को जड़ से उखाडूँ और यहाँ प्रेम रूपी वृक्ष में फूल फूलते रहें।

धर्मादिक फल लागहिं चारी। लहहि प्रिया जग कृपा तुम्हारी॥"
विहँसत हरि बोलत मृदुवाणी। सुनि सुनि मन राधा बिलखानी॥

तभी (इस प्रेम के बाग में) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चारों फल लगेंगे। प्रिये! संसार

तुम्हारी कृपा से इन चारों फलों को प्राप्त करे।" हरि कोमल वचन बोलते समय मुसकुराते जाते थे, पर राधा उन्हें सुन सुन कर मन ही मन में रोती थीं।

दोहाः—चकित विलोकति श्याम तन, त्यागे नैन निमेष।
भरि भरि रही दुराय उर, जनु छवि उदधि अशेष ॥ १६२ ॥

राधा चकित हो श्याम की ओर देख रही थीं। उनकी आँखों ने पलकें मारना छोड़ दिया; मानों वे आंख कृष्ण के रूप का अथाह समुद्र भर भरकर हृदय में छिपा रही हों। (क्योंकि वियोग हो जाने पर फिर वह रूप नेत्रों के ओझल हो जावेगा।)

हरिहु प्रबोधी प्रिया विहाला। नारद मुनि आये तेहि काला।
नर्तत नटवर रास निहारी। लखे कुंज पुनि कुंजबिहारी॥

हरि ने भी दुःखी राधा को समझाया। उसी समय वहाँ नारद भी पहुँच गये। उन्होंने पहिले कृष्ण को रास में नाचते हुए देखा और फिर कुंज में भी देखा।

निरखी राधहु दोउ थल साथा। मुग्ध बुद्धि-विभ्रम मुनिनाथा॥
पूर्व मोह सुधि मुनि मन आयी। "पाहि! पाहि! प्रभु लेहु बचायी॥"

दोनों स्थानों पर राधा को भी साथ साथ देखा। श्रेष्ठ मुनि नारद मुग्ध थे। उनकी बुद्धि चकरा रही थी। मुनि को जब अपने पुराने मोह की याद आई तो वे " रक्षा करो; रक्षा करो; प्रभु बचाओ!" कह उठे।

जानि भक्त वर प्रकटी दाया। भेंटे प्रभु समेटि निज माया॥
कृष्णस्तुति बहु कीन्हि मुनीशा। माँगेउ वर पुनि धरि महि शीशा—

उन्हें अपना श्रेष्ठ भक्त जानकर प्रभु को दया हो आई और वे अपनी माया समेटकर उनसे मिले। मुनिवर ने अनेक प्रकार से कृष्ण की स्तुति की और फिर उन्होंने पृथ्वी पर माथा टेककर यह वरदान माँगा—

"उपजहि जो प्रभु-उर अभिलाषा। होय मोहिं तेहि क्षण आभासा॥
जब जो मन निज करहु विचारा। होय प्रकट मम मानस सारा॥"

"आपके हृदय में जो कामना पैदा हो, उसका आभास मुझे उसी क्षण हो जाय और मनमें जब जो विचार आप करें, वह मेरे मन में प्रकट हो जाय।"

दोहाः—'एवमस्तु' हरि मुख कहत, उपजेउ मुनि मन ज्ञान।
मधुपुर दिशि देवर्षि हँसि, सत्वर कीन्ह प्रयाण॥ १६३ ॥

हरि के मुख से 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) निकलते ही मुनि के मन में ज्ञान पैदा हो गया। देवर्षि नारद ने हँसकर मथुरा की ओर शीघ्र ही प्रस्थान किया। (नारद को भगवान की मथुरा-यात्रा और कंस-वध का आभास मिल गया। इसीलिए वे हँसे और मथुरा की ओर चल दिये।)

रुकेउ रास सुख जमुन नहाये। व्रजजन निज निज सदन सिधाये॥
मुनि नारद उत मथुरा जायी। देखेउ गलित-दर्प नररायी॥

रास के समाप्त हो जाने पर व्रजवासी यमुना में सुख से नहा कर अपने अपने घर चले गये। नारद मुनि ने उधर मथुरा में जाकर राजा को देखा। उसका अभिमान गल चुका था।

गुनत अरिष्ट केशि अरि मारा। धुनत शीश सुनि व्योम संहारा॥
गनत सुभट जे प्रथम पठाये। कहत– "गये ते फिरि नहिं आये!"

वह सोच रहा था कि शत्रु ने अरिष्ट और केशी को मार डाला और जब उसने यह सुना कि व्योम को भी मार डाला तो वह शिर धुनने लगा। जिन योद्धाओं को उसने पहिले भेजा था, उनकी वह गिनती करता और कहता कि 'जो गये वे फिर लौटकर नहीं आये।'

निरखेउ नारद नृप मनमारे। हित जनाय मृदु बैन उचारे—
"सुनु महीप! ये हरि बलरामा। दोउ वसुदेव-सुवन बलधामा॥

जब नारदजी ने राजा को मनमारे हुए देखा, नारदजी ने फिर अपने को हितैषी प्रकट कर कोमल वचन कहे—"राजन्! सुनो! ये दोनों बली हरि और बलराम वसुदेव के पुत्र हैं।

नंद संग वसुदेव-मिताई। रही रोहिणी गोकुल जायी॥
जन्मे तहँ हलधर बलवाना। भेद न कोउ कछु मधुपुर जाना॥

नंद की वसुदेव से मित्रता थी। अतएव रोहिणी गोकुल जाकर उनके पास रहने लगी। वहीं हलधर पैदा हुए। यह भेद मथुरा में किसी ने नहीं जाना।

दोहा:—जायेउ कृष्णहिँ देवकी, गोकुल दीन्ह पठाय।
रचि प्रपंच पुनि नँद-सुता, तुमहिं देखायी लाय॥" १६४॥

देवकी ने कृष्ण को उत्पन्न किया और गोकुल भेज दिया। फिर प्रपंच रचकर नंद की कन्या को लाकर तुम्हें दिखा दिया।"

सुनतहि कंस भयेउ उठि ठाढ़ा। रोष-समुद्र अंग अँग बाढ़ा॥
भरी सभा वसुदेव बोलावा। भगिनिहु कह अपशब्द सुनावा॥

यह सुनते ही कंस उठ खड़ा हुआ। उसके अंग अंग में क्रोध का समुद्र उमड़ पड़ा। भरी सभा में उसने वसुदेव को बुलाया और अपनी बहिन को भी अपशब्द कहे।

कहि कुवाक्य जब खड्ग निकारा। नारद नृपहिं प्रबोधि सँभारा॥
लै एकान्त गये मुनिरायी। प्रकटि प्रीति पुनि कहेउ बुझायी—

बुरे वचन कह कर जब उसने तलवार निकाली तो नारद ने राजा को समझा-बुझा कर सँभाल लिया। मुनिश्रेष्ठ उसे एकान्त में ले गये और प्रेम प्रकट कर समझाने लगे—

"कहा लाभ अब इनहिं सँहारे? विचरत व्रज दोउ शत्रु तुम्हारे॥
करहु युक्ति कछु मधुपुर आवहिं। मारहु घेरि फिरन नहिं पावहिं॥"

"अब इन्हें मारने से क्या लाभ है? व्रज में तुम्हारे दोनों शत्रु घूम रहे हैं। कुछ उपाय करो जिससे वे मथुरा आयें और तब उन्हें घेर कर ऐसा मारो कि फिर लौट न सकें।"

सुनत मंत्र नरपति मन माना। विहँसे नारद करत प्रयाणा॥
पथ मुनि करत मनोरथ जाहीं। कंस नृशंस बचहि अब नाहीं॥

नारद का मंत्र सुन कर राजा को वह पसन्द आया। प्रस्थान करते समय नारद मुस्कुराये। मार्ग में मुनि यही इच्छा करते हुए जा रहे थे कि अब क्रूर कंस नहीं बचेगा।

दोहा :— धावत महि तजि स्वर्ग दिशि, तेज-पुंज आकार।
बरसावत पथ हरि-चरित, झंकृत वीणा-तार ॥ १६५ ॥

पृथ्वी को छोड़ कर तेज-पुंज-आकृति नारद पथ में वीणा के तारों से हरि का चरित गुँजाते हुए स्वर्ग की ओर तेजी से चले जा रहे थे। (नारद का शरीर तेजस्वी था। इसलिए जब वे पृथ्वी से आकाश की ओर जा रहे थे तब ऐसा दीख पड़ता था, मानों कोई तेज का गोला ही चला जा रहा हो।)

इत परिजन निज कंस बोलाये। राज भवन यदुवंशी आये—
कृतवर्मा, सात्यकि अरु आहुक। सत्राजित, प्रसेनजित बाहुक॥

इधर कंस ने अपने कुटुम्बियों को बुलाया। राज-भवन में जो यदुवंशी एकत्र हुए उनमें कृतवर्मा, सात्यकि, आहुक, सत्राजित, प्रसेनजित, बाहुक थे।

शतधन्वा आदिक सब शूरा। नीति-निपुण उद्धव, अक्रूरा॥
सोचत मन सब स्वजन समाजू। सुमिरेउ भूप हमहिं कस आजू॥

और शतधन्वा आदि सब शूर और नीति-निपुण उद्धव तथा अक्रूर भी थे। कंस के ये सब कुटुम्बीजन मन ही मन सोच रहे थे कि आज राजा ने हमारा कैसे स्मरण किया!

जब ते भयेउ कंस मथुरेशा। भये विदेशी हम निज देशा॥
आयेउ आजु कवन अस काजा। कीन्हि जो कृपा बोलायेउ राजा॥

जब से कंस मथुरा का राजा हुआ तब से हम सब अपने ही देश में विदेशी हो गये हैं। आज ऐसा कौन सा कार्य आ पड़ा है, जो राजा ने कृपा कर हमें बुलाया है।

बैठे यादव करत विचारा। आय कंस कीन्हेउ सत्कारा॥
वसुदेवहिं समीप बैठायी। कहत कुटुंबिन कंस सुनायी—

यादव बैठे हुए इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि कंस ने आकर उनका आदर-सत्कार किया और वसुदेव को पास बैठा कर कुटुम्बियों को यह सुनाने लगा—

दोहा :— "मानस सागर सम विमल, यह यदुवंश महान।
वंश-विभूषण आपु सब, शोभित हंस समान ॥ १६६ ॥

"यह महान यदुवंश मानसरोवर के समान निर्मल है। आप सब वंश के आभूषण उसमें हंस के समान शोभित हो रहे हैं।

नीर-क्षीर बिलगावन जानत। गुण-अवगुण सबके पहिचानत॥
संबंधी वसुदेव हमारे। रहे सदा मोहिं प्राण-पियारे॥

आप पानी और दूध को पृथक पृथक करना जानते हैं; सबके गुण-अवगुण पहचानते हैं। वसुदेव हमारे संबंधी हैं। वे मुझे सदा प्राण-प्रिय रहे हैं।

कीन्हेउँ भगिनी संग विवाहा। सर्व भाँति मैं नेह निवाहा॥
त्यागी पै न शौरि कुटिलाई। कीन्हि नंद सँग गुप्त मिताई॥

मैंने अपनी बहिन के साथ उनका विवाह किया और मैंने सब प्रकार से प्रेम का निर्वाह किया है। पर शूरसेन के पुत्र इन वसुदेव ने कुटिलता नहीं छोड़ी। इन्होंने नंद के साथ गुप्त मित्रता जोड़ी।

राज्य हेतु नित प्रति अभिलाखे। पत्नी-पुत्र नंद-गृह राखे॥
अब दोउ सुवन भये विद्रोही। लेत राज-कर गनत न मोहीं॥

इनके हृदय में राज्य-प्राप्ति की अभिलाषा दिनोंदिन बढ़ती गई है; इसीसे इन्होंने अपनी पत्नियों से उत्पन्न पुत्रों को नंद-गृह में रख दिया। अब दोनों पुत्र मेरे विद्रोही हो गये हैं। वे राज-कर वसूल करने लगे हैं और मुझे कुछ समझते ही नहीं हैं।

रहि वसुदेव हमारेहि पासा। करत नित्य नव भोग विलासा॥
रचत प्रपंच चहत मोहिं मारन। चहत सकल यदुकुल संहारन॥

वसुदेव एक ओर तो हमारे पास रहकर नित्य अनेक प्रकार के भोग-विलास करते हैं और दूसरी ओर प्रपंच रच कर मुझे मारना तथा समस्त यदु-कुल का नाश करना चाहते हैं।

दोहाः—प्रकट मोहिं सब छल कपट, निमिषहि सकहुँ निवारि।
करिहौं पै जो तुम कहहु, नीति अनीति विचारि॥" १६७॥

मुझे इनके सब छल-कपट का ज्ञान होगया है। मैं पलभर में ही उनका निराकरण कर सकता हूँ। इतने पर भी आप सब नीति-अनीति का विचार कर जो मुझे सलाह देंगे, वही मैं करूँगा।"

स्वजन समूहं सुनत अनखाना। कहत असत्य कंस मन जाना॥
रहे चुपाय तदपि भय खायी। उद्धव कंसहिं कहेउ सुनायी—

कंस के कुटुम्बीजन यादव लोग कंस की बात सुनते ही क्रुद्ध हो गये। उन्होंने मन में यही समझा कि कंस असत्य बोल रहा है। फिर भी भय खाकर वे चुप रहे। परन्तु उद्धव ने कंस को कह सुनाया—

"कृपा कीन्हि प्रभु बोलि पठावा। जागे भाग्य दरस हम पावा॥
पूछी हमते नीति अनीती। महत अनुग्रह कीन्हि प्रतीती॥

"प्रभु ने बड़ी कृपा की जो हमें यहाँ बुलाया। आपके दर्शन पाकर हमारे भाग्य जग गये। आपने हमसे नीति-अनीति पूछकर और हम पर विश्वास प्रदर्शित कर हम पर बड़ी कृपा की।

निवसत पै हम निज निज गेहा। खात, पियत, पालत नित देहा॥
जब ते असुरन प्रभु सन्माना। नीति-शास्त्र सब हमहिं भुलाना॥

परन्तु हम सब अपने अपने घरों में पड़े रहते हैं और खा-पीकर अपने शरीर का नित्य पालन मात्र करते हैं। प्रभु ने जब से असुरों का सम्मान किया है तब से हम सब नीति-शास्त्र भूल गये हैं।

ताते हम सब रहे चुपायी। पूछत प्रभु! नहिं सकत बतायी॥
औरहु यह संशय मन माहीं। नव नीतिहिं हम जानत नाहीं॥

इसीसे हम सब चुप हो गये हैं और हे प्रभु! जो आप पूछते हैं उसका उत्तर नहीं दे पा रहे हैं। हमारे मन में यह भी शङ्का है कि आप के राज्य में जो नई नीति चल रही है, हमें उसका भा ज्ञान नहीं है।

दोहाः—उग्रसेन नृप राज्य महँ, हम सीखी नय-रीति।
सुनत चलति मथुरेश ढिग, अब असुरन कै नीति॥ १६८॥

उग्रसेन राजा के राज्य में हमने नीति-रीति सीखी थी। पर अब सुनते हैं कि मथुरा के राजा

के निकट असुरों की नीति चलती है।

आर्य-नीति प्रीतिहि आधारा। असुर नीति आतंक-प्रसारा॥
राम सो आर्य नीति भल जानी। तजेउ राज्य पाली पितु वाणी॥

आर्यों की नीति का आधार प्रेम है और असुरों की नीति का आधार आतंक का प्रचार है। राम को आर्य-नीति का भली भाँति ज्ञान था। तभी उन्होंने राज्य छोड़ कर पिता की वाणी का पालन किया था।

कीन्हीं भरतहु सोइ प्रमाणा। तजेउ राज्य पूजे पदत्राणा॥
असुर नीति अब भारत छायी। प्रीति, प्रतीति, सुनीति नसायी॥

भरत ने भी उसी का अनुसरण किया था। राज्य छोड़ कर राम की चरण-पादुकाओं की पूजा की। अब भारत में असुर-नीति का बोलबाला है। अतएव प्रेम, विश्वास और सुनीति का अन्त हो गया है।

डारत पितु बंदीगृह माहीं। भोगत राज्य न पुत्र लजाहीं॥
नहिं अचरज जो नृप तुम भाखा। शौरिहु-हृदय राज्य-अभिलाखा॥

अब पिता को कारागृह में डाला जाता है और पिता से छीना हुआ राज्य भोगते समय पुत्र लज्जित नहीं होता। हे राजन्! आपने जो यह कहा कि शूर-पुत्र के हृदय में भी राज्य की कामना है तो इसमें आश्चर्य क्या है?

कीन्ह हस्तगत प्रभु! पितु-राजू। तब नहिं भयेउ अधर्म अकाजू॥
का अनीति चाहत वसुदेवा। पावहिं राज्य कृष्ण बलदेवा?

हे प्रभु! जब आपने पिता के राज्य पर अपना अधिकार जमाया तब अधर्म और बुराई नहीं हुई और अब यदि वसुदेव चाहते हैं कि कृष्ण-बलराम को राज्य मिल जाय तो फिर वे कौनसी अनीति कर रहे हैं?

दोहा :— आर्य नीति अनुसार प्रभु, दोऊ कार्य अधर्म।
सुनत आसुरी नीति महँ, राज्य-हरण शुभ कर्म॥" १६६॥

हे प्रभु! आर्य-नीति के अनुसार तो आपके तथा वसुदेव के दोनों ही कार्य अधर्म हैं, पर सुनते हैं आसुरी नीति में दूसरे के राज्य का हरण शुभ कार्य माना जाता है!"

सुनी अवनि-पति उद्धव वाणी। बाण समान विषम विष सानी॥
उर प्रतिशोध, क्रोध तनु भारी। समुझि समय शठ कहत सँभारी—

राजा ने उद्धव के भयंकर विष में बुझे हुए बाण के समान तीक्ष्ण वचन सुने। हृदय में बदले की भावना और शरीर में भारी क्रोध संचारित हो उठे, पर (प्रतिकूल) समय जान कर वह दुष्ट अपने को सँभाल कर बोला—

" राजनीति जो उद्धव गायी। रघुकुल वार्ता कीर्ति सुनाई॥
सो नहिं यादव कुल आचारा। हमरे पृथक नीति व्यवहारा॥

" उद्धव ने जिस राजनीति की प्रशंसा कर रघुकुल की कथा और कीर्ति सुनाई है, वह यादव-कुल के बाहर है—हमारी नीति और हमारा व्यवहार पृथक हैं।

ज्येष्ठ नृपति रघुकुल महँ होई। कायर मूर्ख न देखत कोई॥
यदुकुल साहस शौर्य-उपासक। पूजत ताहि जो रिपु-कुल-नाशक॥

रघुकुल में ज्येष्ठ पुत्र ही राजा होता है, वहाँ कायर या मूर्ख नहीं देखा जाता। अर्थात् रघुकुल में ज्येष्ठ पुत्र के कायर या मूर्ख होने पर भी उसे राज-सिंहासन का अधिकार हो जाता है, परन्तु यदुकुल साहस और वीरता का उपासक है। वह उसी की पूजा करता है, जो शत्रु-कुल का नाश करने की क्षमता रखता है।

अग्रगण्य मानत हम सोई। कुल-दीपक जो सब विधि होई॥
उग्रसेन यद्यपि पितु मोरे। वयोवृद्ध रहिए कर जोरे॥

हम उसे ही अगुआ मानते हैं, जो सब प्रकार से कुल की कीर्ति को प्रकाशित करने वाला होता है। यद्यपि उग्रसेन मेरे पिता हैं और वयोवृद्ध भी हैं और उनके साथ हाथ जोड़कर ही रहना चाहिये।

दोहा :— तदपि नृपति गुण एक नहिं, तेज-हीन तन-क्षीण।
राजसिँहासेन सोह नहिं, कायर बुद्धि-विहीन ॥ १७०॥

तथापि उनमें राजा का गुण एक भी नहीं है। वे तेजहीन और दुर्बल हैं। कायर और बुद्धि-हीन –मूर्ख– राजसिंहासन पर शोभा नहीं देता।

धरत न जो मैं निज शिरभारा। हरत कोउ औरहि अधिकारा॥
मगधनाथ सन संगर ठानी। बैठे उग्रसेन रजधानी॥

यदि मैं राज-भार अपने शिर पर न लेता तो कोई दूसरा ही उनका अधिकार छीन लेता। उग्रसेन मगध-नरेश से युद्ध छेड़ कर अपनी राजधानी में ही बैठे रहे।

कीन्हेउँ मैं गिरिव्रज संग्रामा। भयेउ समुज्वल यदुकुल-नामा॥
अमरपुरी सम मथुरा सोही। तबहूँ उद्धव निंदत मोही॥

मैंने ही गिरिव्रज का युद्ध किया, जिससे यदुवंश का नाम चमका। मथुरा देवलोक के समान शोभा दे रही है। फिर भी उद्धव मुझको दोष देते हैं।

सो मैं सुनी, न रिस उर आनी। स्वार्थ-निबद्ध निखिल जग जानी॥
बैठे उग्रसेन सिंहासन। चलेउ देश महँ उद्धव-शासन॥

उनके मुख से मैंने अपनी निन्दा सुनी, पर सारे संसार को स्वार्थ में बँधा हुआ जानकर अपने हृदय में क्रोध नहीं आने दिया। जब उग्रसेन सिंहासन पर बैठे हुए थे तब देश में उद्धव का राज्य चलता था।

नहिं अचरज जो करत प्रशंसा। मानत तिनहिं वंश अवतंसा।
का अचरज जो निंदत मोहीं। कहि कलंक कुल, परिजन द्रोही॥

अतएव वे उग्रसेन की प्रशंसा करते और उन्हें वंश के भूषण मानते हैं, उसमें आश्चर्य नहीं है और इसमें भी क्या आश्चर्य है जो वे मुझे कुल–कलंक और कुटुम्ब–द्रोही कहकर निन्दित करते हैं।

दोहा :— निंदास्तुति नर नित करत, हित-अनहित अनुसार।
उग्रसेन नृप राज्य सँग, गत उद्धव अधिकार॥" १७१॥

अपनी हानि–लाभ के अनुसार ही नित्य मनुष्य व्यक्तियों की निन्दा–स्तुति करते हैं। उद्धव

इसलिए मेरी निन्दा करते हैं कि राजा उग्रसेन के राज्य के साथ ही उनका भी अधिकार चला गया है।"

बोले सुनि उद्धव अति क्षोभा,—"नहिं मम उर शासन-हित लोभा॥
संतत रहेउँ अवनिपति-अनुचर। सेवक, सखा, सचिव अरु सहचर॥

कंस के व्यंग-वचन सुनकर उद्धव अत्यन्त क्षुब्ध होकर बोले,—"मेरे हृदय में शासन का लोभ नहीं है। मैं तो सदा राजा उग्रसेन का दास, सेवक, सखा, मंत्री और साथी रहा हूँ।

साँचहु पै जो प्रभु-आरोपा। भयेउ न यादव-शासन लोपा।
रहे राजजन यदुजन सारे। कब कहँ कवन समर हम हारे?

पर प्रभु का यह आरोप सत्य भी हो तो भी मेरे मंत्री रहते हुए मथुरा से यादव-शासन का अन्त नहीं हुआ था। समस्त यदुजन ही राज्य के उच्च पदों पर थे। और कब, कहाँ और किस युद्ध में हमने हार खाई?

निज मुख प्रभु! निज करत प्रशंसा। मानत आपुहिं कुल-अवतंसा॥
तदपि न कुल कहुँ परत लखायी। दिशि दिशि दिपति असुर-प्रभुताई॥

हे प्रभु! आप अपने ही मुख से अपनी प्रशंसा करते हैं। आप स्वयं अपने को कुल-भूषण मानते हैं। फिर भी कहीं 'कुल' के दर्शन नहीं होते—प्रत्येक दिशा में असुरों का प्रभुत्व ही चमक रहा है।

कीन्ह विजित जो प्रभु मगधेशा। भये मगध-जन कस मथुरेशा?
अनुचित ज्येष्ठ होब जो राजा। *मत्स्य-न्याय-बल चलत समाजा॥

यदि आपने मगध-नरेश को जीत लिया है तो मगध के लोग मथुरा के स्वामी कैसे बन गये हैं? यदि ज्येष्ठ का राज-पद पर आसीन होना अनुचित है तो इसका आशय यह हुआ कि मत्स्य--न्याय के बल पर समाज चलता है।

दोहा—सिंहासन सोहत सतत, जो केवल कुल-दीप।
उचित कृष्ण बलराम दोउ, चाहत होन महीप!" १७२॥

यदि सिंहासन पर वही शोभा देता है जो कुल का दीपक हो तो फिर यह उचित ही है कि कृष्ण और बलराम राजा होना चाहते हैं। अर्थात् वे ही सच्चे कुल-दीपक हैं।

सुनतहि कंस न रोष सँभारा। 'राजद्रोह'! कहि कीन्ह पुकारा॥
सुनत नृपति-स्वर अनुचर धाये। असुर यवन बहु दौरत आये॥

यह सुनते ही कंस अपने क्रोध को नहीं सँभाल सका और "राजद्रोह! राजद्रोह!" चिल्ला उठा। राजा की आवाज सुनते ही बहुत से असुर और यवन सेवक दौड़ आये।

कुलजन बीच विजाति-प्रवेशा। लखि यदुजन महँ छायेउ रोषा॥
उठि सुफलक-सुत सबहिं सँभारा। नृपहिं तोषि मृदु वचन उचारा—

अपने कुटुम्बियों के बीच विजातियों का प्रवेश देख कर यादवों में रोष छा गया। तब अक्रूर ने उठकर सब को सँभाला और राजा को समझा कर कोमल वचन कहे—

* **मत्स्य न्याय**—समुद्र में छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है और उससे भी बड़ी मछली उसे खा जाती है। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की नीति को भारतीय नीति- शास्त्र में मत्स्य--न्याय कहा गया है।

"उचित न सेवक-स्वामी-विवादू। प्रभु-निदेश हम गनत प्रसादू॥
देहु निदेश हमहिं जन जानी। करिहैं पालन सब सुख मानी॥"

"सेवक और स्वामी में विवाद उचित नहीं है। प्रभु की आज्ञा को हम अपना सौभाग्य ही मानते हैं। अतएव हमें अपना सेवक जानकर (और बहस छोड़कर) आज्ञा दीजिए। हम उसका सहर्ष पालन करेंगे।"

सुनि वसुदेवहिं भूप निहारा। वक्र वचन रिस रोकि उचारा—
"जो नहिं तुम्हरे मन कुटिलाई। सुत दोउ मधुपुर लेहु बोलायी॥

अक्रूर के वचन सुनकर राजा ने वसुदेव की ओर देखा और क्रोध को रोक कर टेढ़े वचन कहे—"यदि तुम्हारे मन में कुटिलता नहीं है तो दोनों पुत्रों को मथुरा बुला लो।

दोहा:—लिखहु पत्रिका जस कहहूँ, अबहिं महर नँद नाम।
लै आवहिं मधुपुर तुरत, तनय कृष्ण बलराम॥" १७३

अभी नंद महर के नाम पर जिस प्रकार में कहता हूँ उसी प्रकार का पत्र लिखो, जिससे वह शीघ्र ही कृष्ण और बलराम को मथुरा ले आये।"

विकल सुनत सोचत वसुदेवा—अइहैं पढ़त कृष्ण बलदेवा॥
छल-बल सुत मधुपुर बोलवायी। वधिहै कंस बाल असहायी॥

यह सुनते ही वसुदेव विकल हो सोचने लगे कि पत्र पढ़ते ही कृष्ण और बलराम आ जायेंगे। पुत्रों को छल के द्वारा मथुरा बुला कर कंस असहाय बालकों को मार डालेगा।

प्रमुदित भूप गहावत पाती। गहत लेखनी धरकति छाती॥
बधिर शौरि, नयनन तम नीरा। रुद्ध कंठ, प्रस्वेद शरीरा॥

(वसुदेव की विकलता पर) हर्षित हो राजा ने वसुदेव को चिट्ठी का कागज पकड़ा दिया। लेखनी पकड़ते ही वसुदेव की छाती धड़कने लगी। वसुदेव बहरे हो गये थे, आँखों के सामने अँधियारा छा गया और उनसे आँसू बहने लगे; उनका गला रुँध गया और शरीर पसीने पसीने हो गया।

"लिखहु पत्र!"-नृप कहत बहोरी—"लिखहु, छाँड़ि पाछिल छल चोरी॥"
खसी लेखनी, छूटी पाती। मूर्छित शौरि, हँसेउ अपघाती॥

राजा बार बार कहता था—"पत्र लिखो! पुराना छल और चोरी छोड़कर लिखो।" वसुदेव के हाथ से लेखनी खिसक गई, चिट्ठी भी छूट गई और वे मूर्छित हो गये। यह देख कर वह हत्यारा कंस हँस पड़ा।

अट्टहास पुनि पुनि नृप कीन्हा। "आजु राज-द्रोही मैं चीन्हा!"
कीन्ह भूप उठि पाद-प्रहारा। हा! हा! करि यदुजनन पुकारा॥

राजा बार बार खिलखिलाकर हँसा और कहने लगा, "आज मैंने राजद्रोही को पहिचाना।" राजा ने उठकर वसुदेव को लात मारी। इसे देखकर यादव हाहाकार कर चिल्ला उठे।

दोहा:—सात्यकि, कृतवर्मा सबन, गही हस्त करवाल।
घिरे असुर यवनहु विपुल, भयेउ द्वन्द्व विकराल॥ १७४॥

सात्यकि, कृतवर्मा सभी ने हाथ में तलवार पकड़ ली। बहुत से असुर और यवन भी घिर

आये और दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध छिड़ गया ।

लरत भिरत करि असि-परिचालन । पहुँचे निकसि भवन निज यदुजन ॥
समुझि नृशंस कंस कुटिलाई । रहे जहाँ तहँ सकल दुरायी ॥

यादव तलवार चलाते हुए लड़ते-भिड़ते (राजभवन से) निकलकर अपने अपने घर पहुँच गये । निर्दय कंस की कुटिलता समझकर वे सब यहाँ वहाँ छिप रहे ।

इत वसुदेवहिं देवकि साथा । बंदी बहुरि कीन्ह नरनाथा ॥
अक्रूरहिं पुनि कहेउ बोलायी–" जाहु अबहिं व्रज नँद ढिग धायी ॥

इधर वसुदेव को देवकी सहित राजा ने फिर से कारागार में डाल दिया । फिर अक्रूर को बुलाकर कहा— " अभी नंद के पास व्रज जाओ ।

कहेउ, 'हमहिं यदुराज पठावा । धनुष-यज्ञ हित तुमहिं बोलावा ॥
मल्ल-युद्ध, व्यायाम-विधाना । क्रीड़ा कौतुक देखब नाना ॥

और कहो कि " मुझे यदुराज कंस ने भेजा है । धनुष-यज्ञ के लिए तुम्हें बुलाया है । वहाँ मल्ल-युद्ध, व्यायाम और नाना प्रकार के खेल-तमाशे देखना ।

जब ते कृष्ण कमल लै आये । निरखन हेतु नृपति ललचाये ।।
साथ लेवाय चलहु सुत दोऊ । 'गवनहु', कहेउ, 'विलम्ब न होउ' ॥

जब से कृष्ण कालियादह से कमल ले आये हैं, तब से राजा उन्हें देखने के लिये ललच रहे हैं । इसलिए साथ में अपने दोनों पुत्रों को भी लेते चलो । " नंद से कहो कि " चलो ! देर न हो पाये । "

दोहा :—औरहु रुचि अनुसार कहि, देश काल अनुकूल ।
लै आवहु वसुदेव-सुत, मेटहु मम उर शूल ॥" १७५ ॥

देश-काल के अनुकूल और भी जो ठीक समझो, कहना । वसुदेव के पुत्रों को ले आओ और मेरे हृदय की पीड़ा दूर करो ।"

सुफलक-तनय सुनेउ प्रस्तावा । सहमेउ उर उपजेउ पछितावा ॥
प्रीति नृपति-मुख, हृदय कठोरा । चहत अधर्म करावन घोरा ॥

अक्रूर ने जब प्रस्ताव सुना तो उनका हृदय सहम गया और वे पछताते हुए सोचने लगे— राजा के मुख में प्रीति-वचन हैं, पर उसका हृदय कठोर है । वह भयंकर अधर्म कराना चाहता है ।

खल स्वामी-सेवा-सहवासा । अहि फण-तल जनु दादुर वासा ॥
आयी सुधि पुनि हरि-यश केरी । उपजी हृदय प्रतीति घनेरी ॥

दुष्ट स्वामी की सेवा और उसका सहवास सर्प के फन के नीचे मेंडक के वास के समान है, (जो कभी भी निगला जा सकता है ।) फिर अक्रूर को हरि के यश की याद आयी, जिससे हृदय में गाढ़ा विश्वास पैदा हुआ कि कंस की कुछ न चल पायेगी ।

सुनियत कृष्ण ब्रह्म अवतारा । प्रकटे हरन धरणि-भय-भारा ॥
वधहिं जो कंसहिं मधुपुर आयी । मिलहि मोहिं यश, विश्व भलाई ॥

सुनते हैं, कृष्ण ब्रह्म के अवतार हैं, जो पृथ्वी से भय और (दुःखों से) भार को हरने के

लिए उत्पन्न हुए हैं। वे यदि मथुरा आकर कंस का वध करेंगे तो मुझे यश मिलेगा और विश्व की भलाई होगी।

करत तर्क कछु कहि नहिं आवा। स्यंदन साजि सारथी लावा॥
कंस चतुर नहिं अवसर दीन्हा। पठवत नेह प्रकट बहु कीन्हा॥

वे मन ही मन सोच-विचार करते रहे, उनसे कुछ बोला नहीं गया। इसी बीच में सारथी रथ सजा कर ले आया। चतुर कंस ने भी अक्रूर को कुछ कहने का मौका नहीं दिया। उन्हें विदा करते समय बहुत प्रेम प्रदर्शित किया।

दोहा:— सुफलक-सुत बैठाय रथ, कहत कंस सिर नाय।
"तुमहिं हितैषी एक मम, दुर्दिन भये सहाय॥" १७६॥

अक्रूर को रथ पर बैठा कर कंस उनसे शिर झुकाकर कहने लगा कि "तुम्हीं एक मात्र मेरे हितैषी हो, जो बुरे समय में सहायक हुए हो।"

सुनि अक्रूर मनहिं मन माखे। वचन शिष्ट नृप सन कछु भाखे॥
व्रज दिशि जैसेहि कीन्ह प्रयाणा। निज पद-प्रीति दीन्हि भगवाना॥

कंस की वाणी सुन कर अक्रूर मन ही मन क्रुद्ध हुए, पर राजा के सामने उन्होंने कुछ शिष्ट वचन ही कहे। उन्होंने ज्योंही व्रज की ओर प्रस्थान किया, भगवान ने उन्हें अपने चरणों में प्रेम दिया अर्थात् उनका मन कृष्ण की भक्ति से सराबोर हो गया।

सोचत—नृपति अनुग्रह कीन्हा। हरि-दर्शन अवसर मोहिं दीन्हा॥
लखिहैं लोचन छवि सुखकारी। भव-पथ-ज्योति, भीति-तम हारी॥

वे सोचने लगे कि राजा ने मुझ पर कृपा की है। उसने मुझे हरि-दर्शन का अवसर दिया है। मेरे नेत्र सुख की सृष्टि करने वाली उस छवि को देखेंगे, जो संसार के भय और अंधकार को दूर करने वाली ज्योति के समान है।

मिलिहैं वन मोहिं धेनु चरावत। ग्राम सखन सँग गावत आवत॥
विचरत व्रज-वीथिन अभिरामू। मिलिहैं मोहिं कहाँ धौं श्यामू?

क्या वे वन में मुझे गाय चराते और ग्राम-सखाओं के साथ गाते आते हुए मिलेंगे अथवा प्यारी व्रज की गलियों में विचरते हुए मिलेंगे? पता नहीं; मुझे श्याम कहाँ मिलेंगे?

धनि यशुदा नँद हृदय लगावत। जागत सोवत लखि सुख पावत॥
धनि धनि गोप वृन्द व्रजवासी। लखत बाल-लीला सुख-राशी॥

नंद-यशोदा धन्य हैं, जो उन्हें छाती से लगाते और सोते-जागते उनके मुख को देखकर सुखी होते हैं। व्रज का गोप-समाज भी धन्य है, जो उनकी उन बाल-लीलाओं को देखता है, जो सुख की खानि हैं।

दोहा:—धनि व्रज-वन विचरत जहाँ, धनि चारत जे धेनु।
धरत अधर वादत मधुर, धनि सर्वोपरि वेणु॥ १७७॥

वे व्रज के वन धन्य हैं जहाँ हरि विचरते हैं, वे गायें धन्य हैं जिन्हें वे चराते हैं और सबसे अधिक तो वह वंशी धन्य है, जिसे वे अपने अधर पर धारण कर मधुर मधुर बजाते हैं।

मन उमंग मग सोचत जाहीं । जात समय जानेउ कछु नाहीं ॥
परति मधुपुरी अब न लखायी । रवि-तनया पाछे रहि जायी ॥

उद्धव मार्ग में मन में उमंग से भरे सोचते जाते थे । समय कैसे बीत गया इसका उन्हें कुछ भी भान न रहा । अब मथुरा दिखलाई न देती थी; यमुना पीछे रह गई थी ।

लगे दिखान ग्राम वन बागा । भयी साँझ रवि अथवन लागा ॥
इत श्यामहु वन धेनु चरायी । पहुँचे खरिक सखन सँग आयी ॥

उन्हें अब गाँव के वन और बाग दिखलाई देने लगे थे । संध्या हो गई थी । सूर्य डूबने लगा था । इधर श्याम भी वन में गायें चराकर सखाओं सहित गोशाला में पहुँच गये ।

पुलकित वत्स पियावत धेनू । गावत सखा बजावत वेणू ॥
दुहत धेनु प्रभु गोपन संगा । उपजत नाद मधुर रस रंगा ॥

गायें पुलकित हो अपने बछड़ों को पिला रही थीं । सखा गाते और वंशी बजाते थे । भगवान कृष्ण गोपों के साथ गाय दुहते थे, जिससे रस से भरा हुआ मधुर नाद होता था । (दूध दुहते समय दूध की धार दुहने के बर्तन में गिर कर मधुर स्वर कर रही थी !)

दुहत, लगावत होड़ कन्हाई । मृदुलस्पर्श देत पय गाई ॥
ताहि समय नृप-स्यंदन आवा । गोप वृन्द सब देखन धावा ॥

दुहते समय कृष्ण शर्त बदते थे (कि कौन अधिक दूध दुह सकता है !) कृष्ण के कोमल स्पर्श से गाय अधिक दूध देती थीं । उसी समय राजा का रथ पहुँच गया, जिसे देखने के लिए सब गोप-मंडली दौड़ पड़ी ।

दोहा :—खरिक-द्वार ठाढ़े हरिहु, अभिनव वारिद श्याम ।
इंदु-विनिंदक द्युति वदन, लोचन कमल ललाम ॥ १७८ ॥

गोशाला के दरवाज़े पर हरि भी खड़े हो गए । उनका शरीर नये मेघ के समान श्याम था; उसकी कान्ति चन्द्रमा को भी तुच्छ सिद्ध करनेवाली थी और उनके नेत्र कमल के समान सुन्दर थे ।

भुज आजानु महाछवि छायी । उर मोतिन वर माल सोहायी ॥
जनु तजि मरकत-कान्ति पहारा । उतरी उज्ज्वल सुरसरि धारा ॥

वे आजानु-बाहु थे अर्थात् उनकी भुजायें इतनी लंबी थीं कि घुटने तक पहुँचती थीं । उनके शरीर में अत्यन्त सौन्दर्य छाया हुआ था । हृदय पर मोतियों की सुन्दर माला ऐसी शोभा दे रही थी, मानों मरकत मणि के पहाड़ से गंगा की उज्ज्वल धारा नीचे उतर आई हो ।

कुंडल श्रुति मणि-मंडित झूमत । झलकत अरुण कपोलन चूमत ॥
शोभित पीत वसन अति अंगा । नील शैल जिमि ज्योत्स्ना संगा ॥

मणियों से जड़े हुए कुंडल झूमते थे, जो कपोलों को चूमते हुए लाल लाल दिखाई पड़ते थे । उनके अंगों में पीताम्बर ऐसा शोभा दे रहा था, मानों नील पर्वत पर चाँदनी छाई हो ।

नयन-कौमुदी, आनँद उद्गम । अधर स्मित जनु हरति विश्व-तम ॥
भाल विशाल तिलक त्रय रेखा । भुवन-विमोहन प्रभु-वपु, वेखा ॥

उनकी आँखों का प्रकाश चाँदनी के समान आनन्द पैदा करनेवाला था और अधर पर खेलने

वाली मुसकुराहट मानों विश्व के अंधकार को दूर करनेवाली हो। उनके विशाल मस्तक पर तिलक की तीन रेखायें थीं। भगवान का यह रूप और वेश संसार को मोहने वाला था।

हलधर बहुरि लखे तहँ ठाढ़े। सुषमा-सिंधु मनहु मथि काढ़े॥
कुंद इंदु हिम द्युति उजियारे। गौर शरीर नील पट धारे॥

श्याम के पास ही वहीं पर बलराम खड़े हुए थे। वे ऐसे लगते थे, मानों सौन्दर्य के समुद्र को मथ कर निकाले गये हों। वे कुंद-कुसुम, चन्द्रमा और बर्फ के समान श्वेत कान्ति वाले थे। उनका शरीर गोरा था, जिसपर वे नील वस्त्र धारण किए हुए थे।

दोहा—उर भुज नयन विशाल अति, शोभित श्रीपति पास।
नीलाचल ढिग राज जनु, मेघयुक्त कैलास॥ १७९॥

उनकी छाती, भुजा और आँखें अत्यन्त विशाल थीं। वे हरि के पास ऐसे शोभा दे रहे थे, मानों नील पर्वत के निकट मेघ सहित कैलास हो।

लखि अक्रूर ललकि रथ त्यागा। पद्तल परत विलंब न लागा॥
हर्ष प्रकर्ष पुलक उपजावा। कहेउ नाम, कहि और न आवा॥

अक्रूर ने हरि को देखते ही ललक कर रथ छोड़ दिया। उन्हें उनके चरणों में गिरते कुछ भी विलम्ब न लगा। अत्यन्त हर्ष के कारण अक्रूर का शरीर रोमांचित हो गया। उन्होंने कृष्ण से अपना नाम कह दिया। इससे अधिक उनसे कुछ नहीं कहा गया।

व्यापी उत्कंठा अँग अंगा। वहीं नैन-मग जमुना-गंगा॥
ध्वजा वज्र पद्मांकित पाणी। परसेउ शीश प्रीतिवश जानी॥

उनके अङ्ग अङ्ग में उत्सुकता भर गई और आँखों के मार्ग से यमुना-गंगा बहने लगीं अर्थात् दोनों आँखों से दो आँसू की धारायें बह चलीं। अक्रूर को अपने प्रेम के वश जानकर भगवान ने ध्वजा, वज्र और कमल से अंकित अपने हाथ से उनका मस्तक छू दिया।

उभय भुजा भरि भक्त उठावा। हृदय लगाय हरेउ पछितावा॥
पूछी क्षेम कुशल कुल केरी। कंस कुशल पूछी हँसि हेरी॥

और फिर दोनों भुजाओं में भक्त को भर कर उठा लिया तथा छाती से लगा कर उनका पश्चात्ताप दूर कर दिया। उनसे उनके परिवार का कुशल समाचार पूछने के पश्चात् (अक्रूर की ओर) देख कर हँसते हुए कंस की कुशलता पूछी।

सुनत प्रश्न जनु सोवत जागा। भेंटत हलधर उर अनुरागा॥
पूछि प्रथम गोकुल-कुशलाई। कंस-कथा आद्यन्त सुनाई॥

प्रश्न को सुनते ही मानों अक्रूर सोते से जाग पड़े और हृदय में प्रेम भर कर हलधर से भेंट करने लगे। पहिले उन्होंने गोकुल का कुशल-समाचार पूछा और कंस की प्रारम्भ से अन्त तक 'कथा' सुना दी।

दोहा:— सुफलक-सुत मुख वृत्त सुनि, कहत विहँसि घनश्याम।
"गवनब मधुपुर प्रात हम, निशि निवसहु सँग धाम॥" १८०॥

अक्रूर के मुख से समाचार सुनकर श्याम मुसकुरा कर बोले,—"हम प्रातःकाल आपके साथ

मथुरा चलेंगे। रातको आप हमारे साथ घर पर ही ठहरिये।"

अस कहि लिये अतिथि प्रिय साथा। गवने ग्राम ओर ब्रजनाथा॥
ग्वालबाल सब विकल विहाला। सोचत काह कहेउ नँदलाला॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण प्यारे अतिथि को लेकर ग्राम की ओर चले। ग्वालबाल सब व्याकुल और बेचैन थे। वे सोचते थे कि नंदलाल ने यह क्या कह दिया।

देखि व्यथित बोले ब्रजराजू—"नहिं तनिकहु भय शंका काजू॥
यज्ञ-महोत्सव नृपति रचावा। देखन हित मधुपुर बोलवावा॥

उन्हें दुःखी देख कर हरि बोले कि भय और शङ्का का कुछ काम नहीं है। राजा ने यज्ञ-महोत्सव की आयोजना की है। उसे ही देखने के लिये मथुरा आमंत्रित किया है।

चलहु काल्हि सब संग हमारे। देखहु पुर उत्सव रँग सारे॥"
विहँसत श्याम सखन समुझावत। शंकित सकल भरोस न आवत॥

कल तुम सब हमारे साथ चलना और नगर के उत्सव की सब साज-सज्जा को देखना। श्याम मुसकुरा मुसकुरा कर सखाओं को यह सब समझा रहे थे; परन्तु सब के मन शङ्का से भरे हुए थे इसलिये उन्हें विश्वास न होता था।

लखत वदन तन नयन चोराये। यहि विधि नंद-सदन सब आये॥
'कंस-दूत'—सुनि महर डेराने। परिचय देत श्याम मुसकाने॥

छिप छिप कर वे कृष्ण के मुख की ओर देखते थे। सब उसी प्रकार उनके साथ नंद के गृह पहुँच गये। नंद महर 'कंस दूत' का आगमन सुनकर डर गये। श्याम उनका परिचय देते समय मुसकुरा उठे।

दोहा:—काँपत कर आसन धरत, अर्घ्य न सकत उठाय।
सहमे नँद सँदेश सुनि, गिरेउ वज्र जनु आय॥ १८१॥

अक्रूर के लिये आसन रखते समय नंद के हाथ काँपने लगे। वे अर्घ्य भी नहीं उठा सकते थे। कंस का संदेश सुनकर नंद चौंक गये, मानों उन पर वज्र आ गिरा हो।

यशुमति सहि नहिं सकी प्रहारा। भयेउ नंद-गृह हाहाकारा॥
विनवति अक्रूरहि नँदरानी—"काहे नृपति निठुरता ठानी?

यशोदा भी यह प्रहार नहीं सह सकीं। नंद के घर में हाहाकार मच गया। नंदरानी अक्रूर से प्रार्थना कर कहने लगीं कि "राजा ने क्यों क्रूरता ठानी है?

हरि हलधर मोरे अति बारे। लखे कबहुँ नहिं मल्ल अखारे॥
ये बालक गो-चारत वन वन। यज्ञ सभा इन सुनी न श्रवणन॥

मेरे कृष्ण और बलराम निरे बालक हैं। इन्होंने कभी अखाड़े में मल्लों को नहीं देखा। ये तो वन वन गाय चराते हैं। इन्होंने यज्ञ और सभा के नाम भी कानों से नहीं सुने।

गुरु द्विज कबहुँ न ग्राम जोहारा। जानहिं काह राज-व्यवहारा!
बरु नृप लेहि धाम धन गाई। मन-वांछित 'कर' लेहिं चुकायी॥

ग्राम में इन्होंने कभी गुरु, ब्राह्मणों तक का अभिवादन नहीं किया। ये भला राज-व्यवहार क्या जानें? राजा हमारा घर, धन, गाय भले ही ले ले, वह मनचाहा 'कर' भले ही वसूल कर ले—

सर्वस लेय देय इक श्यामू । जननी-जीवन, व्रज-सुख धामू ॥
वासर वदन विलोकि वितावहुँ । निशि शिशु अंक लाय सुख पावहुँ ॥

वह हमारा सर्वस्व भले ही ले ले, परन्तु एक श्याम को हमें दे दे अर्थात् उन्हें हमारे पास रहने दे । वह जननी के लिये अर्थात् मेरे लिए जीवन के समान है और समस्त व्रज को आनन्द देने वाला है । मैं उसका मुख देख देख कर दिन बिताती हूँ और रात को उसे छाती से लगा कर सुख पाती हूँ ।

दोहा :—एक आस अभिलाष इक, माँगहुँ शीश नवाय—
"इन आँखिन आँगन लखहुँ, खेलत सदा कन्हाय ।।" १८२ ॥

मेरी एक ही आशा है, एक ही अभिलाषा है । उसे मैं शिर झुका कर माँगती हूँ । वह यह है कि "इन आँखों से मैं 'कान्ह' को सदा अपने आँगन में खेलते हुए देखती रहूँ ।"

यहि विधि विनवति लेति उसासा । मुख-नत, फुरत अधर-पुट नासा ॥
लखेउ नेह अक्रूर अपारा । देत तोष मृदु वचन उचारा—

इस प्रकार विनय कर यशोदा उसासें भरती थीं । उनका मुख झुका हुआ था और उनके ओंठ तथा नासिका-पुट काँप रहे थे । अक्रूर ने जब यशोदा के अपार प्रेम को देखा तो उन्हें सान्त्वना देते हुए कोमल वचन कहे—

"मातु ! यज्ञ देखन ये जाहीं । तीनहुँ भुवन इनहिं भय नाहीं ॥
पूजे चरण सुरेशहु जासू । सकत कि कंस हानि करि तासू ?"

"माता ! ये यज्ञ देखने जा रहे हैं । इन्हें तीनों लोक में कोई भय नहीं है । जिसके चरणों की इन्द्र तक ने पूजा की है, उसकी कंस क्या हानि कर सकता है ?"

हरिहु आप जननी समुझायी । कहति मातु, सुत हृदय लगायी—
"जेहि मुख कहेउ महर कहँ ताता । जेहि मुख मोहिं कहेउ नित माता ॥

स्वयं हरि ने भी माता को समझाया । तब माँ पुत्र को हृदय से लगा कर कहने लगीं—"जिस मुख से तुमने महर को 'ताता' 'बाबा' और जिस मुख से मुझे सदा 'माता' कहा—

तेहि मुख आजु कहत तुम जाना । भयेउ सुमन कस कुलिश समाना ?
रहेउ अन्त जो यहि विधि मारन । काहे कीन्ह गोवर्धन धारण ?"

उसी मुख से तुम आज जाने की बात कैसे कहते हो ? मैं नहीं समझ पाती कि फूल वज्र के समान कैसे हो गया ? अर्थात् तुम्हारा कोमल हृदय कठोर कैसे बन गया ? यदि अन्त में इसी प्रकार हमें मार डालना था तो (हमारी रक्षा के लिए) क्यों गोवर्धन पर्वत को धारण किया था ?"

दोहा :—विलपति मातु, न लखि परत, व्यथा-वारिनिधि-कूल ।
ढरकि कपोलन अश्रु-जल, भिजवत देह-दुकूल ॥१८३॥

माता इतना अधिक विलाप कर रही थी कि उसके दुःख रूपी समुद्र का किनारा ही नहीं दिख पड़ता था । आँसू कपोलों से ढुलक ढुलक कर उसके शरीर के वस्त्र को भिगो रहे थे ।

विलपति बैठि यशोमति धामा । व्यापेउ वृत्त विकल सब ग्रामा ॥
गोपी गोप कहहिं—"को आवा ? काहे श्यामहिं कंस बोलावा ?"

यशोदा अपने घर में बैठी बैठी विलाप कर रही थीं । उधर कृष्ण के प्रस्थान का समाचार गाँव

भर में फैल गया, जिससे सब लोग विकल हो गये। गोप-गोपी, परस्पर कहते थे कि "कौन आया है? कंस ने श्याम को क्यों बुलाया है?"

कोउ कह—"खरिक पाय बनवारी। रथ ते उतरि मोहिनी डारी॥
मिले श्याम तेहि जिमि पय पानी। व्रज-सुधि-बुधि क्षण माहिं भुलानी॥

कोई कहता था कि कृष्ण को गोशाला में पाकर रथ से उतारकर उसने मोहिनी डाल दी है। श्याम उससे ऐसे मिले, जैसे दूध में पानी मिल जाता है। क्षणभर में उन्हें व्रज की "सुध-बुध" भूल गई।

खोयी वस्तु मनहुँ हरि पायी। रहत न पल नृप-दूत विहायी॥
जइहैं मधुपुर होत प्रभाता। तजि व्रजजन गोधन पितु माता॥"

ऐसा जान पड़ा मानों हरि ने (उसे पाकर) किसी खोई हुई वस्तु को पा लिया। वे राजा के दूत को पल भर भी नहीं छोड़ते हैं। व्रजवासियों, गायों और माता-पिता को छोड़कर सबेरा होते ही वे मथुरा चल देंगे।"

कहत कोउ—"मधुपुर का पइहैं। यशुमति तजि नहिं मथुरा रहिहैं॥"
बोलेउ कोउ—"ये आपु विधाता। इनके कोउ न नात पितु माता॥

कोई कहता था,—"उन्हें मथुरा में क्या मिलेगा? वे माता यशोदा को छोड़ कर मथुरा में नहीं रहेंगे।" कोई कहने लगा,—"ये स्वयं ब्रह्मा हैं। इनके न कोई माता-पिता हैं और न सम्बन्धी।

दोहा:—जन्महिं जब चाहहिं जहाँ, त्यागहिं पुनि पल माहिं।
नेह नीति जानहिं नहीं, बसति दया उर नाहिं॥ १८४॥

जब जहाँ चाहते हैं, जन्म ले लेते हैं और फिर सबको पल भर में त्याग देते हैं। ये प्रेम का कोई आचार नहीं जानते। इनके हृदय में दया का वास नहीं है।

हम हरि-मिले, हमहिं हरि नाहीं। बसे कमल सम व्रज-सर माहीं॥
चले आजु सहसा नृप पासा। करि व्रज श्री-हत, जीव हताशा॥"

हम हरि में मिले, किन्तु हरि हममें घुले-मिले नहीं। वे व्रज रूपी सरोवर में कमल के समान बसे हैं। अर्थात् जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल के ऊपर ही खिलता है, उसी प्रकार हरि व्रज में बस कर भी व्रज से निर्लिप्त रहे हैं। तभी तो व्रज को त्याग कर और शोभा-हीन और हताश करके वे अचानक राजा के पास जारहे हैं।

कोउ कह—"श्याम न लांछन-भागी। भये हमहिं व्रज लोग अभागी॥
चाहत गोकुल दैव नसावा। कालहि सुफलक-सुत बनि आवा॥

कोई कहते थे कि "श्याम दोष के भागी नहीं हैं अर्थात् उन्हें भला-बुरा कहना व्यर्थ है, क्योंकि हम व्रजवासी ही अभागे हैं। विधाता गोकुल को नष्ट करना चाहता है। काल ही अक्रूर बन कर यहाँ आ गया है।"

व्रजवासिन-सर्वस्व कन्हाई"—कहहिं गोप गोपी विलखायी॥
मिलि कछु गवनहिं नंद-दुआरे। लखि अक्रूर फिरहिं मन मारे॥

गोप-गोपी बिलखकर कहते थे कि "कृष्णा व्रजवासियों के सर्वस्व हैं।" कुछ गोप-गोपी एक साथ मिल कर नंद के द्वार पर जाते थे, परन्तु वहाँ अक्रूर को देखकर मन मारकर लौट पड़ते थे।

कछु जन जिनहिं समीप बोलायी। चलहु संग अस कह नँदरायी॥
भये धन्य ते जन व्रज आजू। पायेउ मनहुँ भुवन-त्रय राजू॥

नंदराय जिन कुछ लोगोंको अपने पास बुला कर (मथुरा) साथ चलने के लिए कहते थे, वे व्रजवासी आज अपने को धन्य समझते थे और यह समझते थे, मानों उन्हें त्रिभुवन का राज्य मिल गया है।

दोहा :— भेंट धरत, साजत शकट, राखत शस्त्र दुराय।
हरि-रक्षा चाहत सकल, माँगत ईश-सहाय॥ १८५॥

वे छकडों में भेंट रख कर उन्हें सजाते थे; साथ ही शस्त्रों को भी छिपा कर रखते थे। सभी हरि की रक्षा करना चाहते थे। परमात्मा की सहायता की याचना भी करते थे।

तेहि निशि व्रज नहिं सोयेउ कोई। बरनत चरित रहे सब रोई॥
जात भवन निशि अति भय पावहिं। प्रविशहिं द्वार, लौटि पुनि आवहिं॥

उस रात व्रज में कोई नहीं सोया। सब हरि-चरित्र का वर्णन कर रोते रहे। रातको घर में जाते समय अत्यन्त भयभीत होते थे। वे बार बार द्वार में प्रवेश करते और फिर लौट पड़ते थे।

जनु प्रति भवन भयेउ भय-डेरा। उड़त विहग, नहिं लेत बसेरा॥
धेनु रँभाहिं, बच्छ अकुलाहीं। राम! श्याम! कहि जनु बिलखाहीं॥

मानों प्रत्येक भवन में भय का ही डेरा जमा हो। पक्षी (आकाश में यहाँ वहाँ) उड़ते थे। वे कहीं बसेरा नहीं लेते थे। गायें रँभातीं थीं और बछड़े व्याकुल होते थे, मानों 'राम! श्याम!' कह कर बिलख रहे हों।

शुक-सारिकहु जरत विरहागी। फरफरात, हरि-हरि रट लागी॥
जात अकारण दीप बुझायी। तारक टूटि गिरत महि आयी॥

तोता और मैना भी मानों विरह की अग्नि में जल रहे थे। वे फड़फड़ाते और 'हरि हरि' की रट लगाते थे। अकारण ही दीपक बुझ जाते थे और अचानक तारे टूट कर पृथ्वी पर गिर रहे थे।

रोवत श्वान निरखि नभ ओरा। छायी व्रज क्रंदन-ध्वनि घोरा॥
उमहेउ शोक-सिन्धु जनु आयी। बहे जात व्रजजन असहायी॥

कुत्ते आकाश की ओर देख कर रोते थे। इस प्रकार व्रज में रोने का घोर शोर छा गया। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों शोक का समुद्र उमड़ आया हो, जिसमें असहाय व्रजवासी बहे जा रहे हों।

दोहा : — व्योम अरुण साजत रथहिं, सुफलक-सुत नँद-द्वार।
आवत दिनपति, जात हरि, करि गोकुल अँधियार॥ १८६॥

उधर सूर्यका साथी अरुण आकाश में सूर्यका रथ सजा रहा था और इधर अक्रूर नंद के द्वार पर अपने रथ को सजा रहे थे। उधर (प्रकाश भरते हुए) सूर्य का आगमन हो रहा था और इधर गोकुल में अँधियारा कर वहाँ से कृष्ण का प्रस्थान।

विरह-अनल नभ लखि साकारा। भयेउ कोलाहल ग्राम अपारा॥
गोकुल-गेह शैल जनु सारे। गोपी-गोप नदी-नद-नारे॥

विरह की आग को सूर्योदय के रूप में आकाश में साकार देख कर गाँव में अपार कोलाहल छा गया। गोकुल के सब घर मानों पर्वत हों और गोप-गोपी नदी, नद और नाले।

उमहे महर-द्वार सब आयी। करुणा-सिंधु वहेउ हहरायी॥
अश्रु-नीर, उच्छ्वास तरंगा। क्रंदन भँवर, धैर्य--तट भंगा॥

वे सब नंद महर के द्वार पर उमड़ आये। तब ऐसा लगा, मानों करुणा-रस का समुद्र खूब हहर हहर कर बह रहा हो। आँसू जल, उसाँसें तरंग और रुदन भँवर के समान था, जो धैर्य रूपी किनारों को तोड़ रहा था।

डगमग मध्य राज-रथ नैया। निराधार अक्रूर खेवैया॥
बूड़त व्याकुल प्रभुहिं पुकारा। द्वार कृष्ण तेहि छण पगु धारा॥

इस करुणा-समुद्र के बीच में पड़ी हुई राज-रथ रूपी नौका डगमगा रही थी। केवट अक्रूर निराधार थे। उन्होंने नौका को डूबते देख कर भगवानको पुकारा। उसी क्षण कृष्ण ने द्वार पर पैर रखे।

निरखि मातु पद प्रणमत श्यामू। उठेउ रोय सस्वर व्रज ग्रामू॥
हरि! केशव! गोविन्द! पुकारे। कहाँ जात घनश्याम हमारे?

माता के चरणों की ओर देख कर जब श्याम ने प्रणाम किया तब शीघ्र ही समस्त व्रज रो उठा। सब "हरि! केशव! गोविन्द!" पुकार उठे और कहने लगे,—"हमारे घनश्याम! कहाँ जा रहे हो?"

दोहा:—हिचकिन विलपीं गोपिका, "करहु न कान्ह! अनाथ।
मुरलीधर! गिरिधर! रहहु, राजहु व्रज व्रजनाथ!" १८७॥

गोपिकायें हिचकी ले लेकर रोईं और कहने लगीं—"कृष्ण! हमें अनाथ न करो! हे मुरलीधर! हे गिरिधर! यहीं रहो! व्रज के स्वामी! व्रज की ही शोभा बढ़ाओ!"

बंदि सबहिं चहुँ दिशि व्रजनंदन। निवसे बंधु सहित नृप-स्यंदन॥
विरह-वह्नि नहिं सकीं सँभारी। झुलसीं लता-मृदुल व्रज-नारी॥

व्रज में आनन्द की वर्षा करनेवाले हरि चारों ओर सबसे अभिवादन कर बन्धु बलराम सहित राजा के रथ में बैठ गये। लता के समान कोमलाङ्गी व्रज की नारियाँ कृष्ण की विरहाग्नि को न सह सकने के कारण झुलस गईं।

कौन कंस? यह कसि कुटिलाई। कवनि खबरि? केहि हाथ पठायी?
को व्रज जीवन-मूरि उपारी? जात कहाँ, नहिं सुनत गोहारी?

कंस कौन है? यह कैसी कुटिलता है? कौनसा सन्देश है? किसके हाथ भेजा गया है? किसने व्रजके जीवन की जड़को उखाड़ दिया है? कहाँ जा रहे हैं? हमारी पुकार क्यों नहीं सुनते?

दशा यशोमति बरनि न जायी। गिरति भूमि, उठि कहति कन्हाई!
दौरति बहुरि, गिरति पुनि धरणी। टेरति सुत, कलपति नँद-घरनी—

यशोदा की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे पृथ्वी पर गिर गिर पड़ती थीं और जब उठतीं तब 'कन्हाई' (ही) उनके मुख से निकलता था। वे फिर (रथ की ओर) दौड़तीं; परन्तु पुनः धरती पर गिर पड़ती थीं। पुत्र को बुलातीं और अत्यन्त विकल हो कहतीं—

"विरमहु पल विछुरत घनश्यामा! लखहु वत्स! बिलखत सब ग्रामा॥
एकहु बार न फिरि मोहिं हेरा। जात कहाँ करि दृगन अँधेरा?"

"बिछुड़नेवाले श्याम! तनिक पल भर तो रुक बेटा! देख, सारा गाँव बिलख रहा है!

तूने एक बार भी पीछे मुड़कर मेरी ओर नहीं देखा। तू मेरी आँखों में अँधेरा करके कहाँ जा रहा है ?"

दोहा—प्रेरे सुफलक-सुत तुरग, मुख फेरेउ घनश्याम।
स्यंदन-तल तेहि क्षण गिरी, कोउ विरहिणि व्रज-वाम ॥ १८८ ॥

अक्रूर ने घोड़ों को बढ़ाया और श्याम ने जब अपना मुख मोड़ा तो उन्होंने देखा कि रथ के नीचे उसी क्षण कोई विरहिणी व्रज-बाला गिर पड़ी।

राधा! राधा! कहि बिलखायी। त्यागेऊ रथ श्रीपति अकुलायी ॥
सानुराग भरि हृदय निहारा। नयनन उमहि बही जल-धारा ॥

हरि ने व्याकुल होकर "राधा! राधा!" कहा और शीघ्र ही रथ छोड़ कर नीचे उतर पड़े। उन्होंने राधा की ओर प्रेम से जी भर कर देखा। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बहने लगी।

सुधा-सिक्त राधा-अँग सारे। जागी वदन ज्योति नव धारे ॥
भयी न प्राकृत तिय पुनि तैसे। जल-कण स्वाती सीपी जैसे ॥

राधा के सारे अंग मानों अमृत से सराबोर हो गये थे। जब उन्हें चेत हुआ तो उनके मुख पर नई आभा छा गई थी। इसके बाद फिर कभी भी वे कोई लौकिक स्त्री न हो सकीं। अर्थात् कृष्ण के प्रेमामृत से सींची जाने के बाद राधा सदा के लिए साधारण स्त्री से दिव्य स्त्री में परिवर्तित होगयीं, जिस प्रकार स्वाती नक्षत्र के जल का बूंद सीपी में पड़ कर फिर जल-बिन्दु न रह कर मोती बन जाता है।

धायी जननि सुवन ढिग आयी। नत ईषत हरि-नयन लजायी ॥
अंब-अंक दीन्हीं प्रभु राधा। लेति यशोमति प्रीति अगाधा ॥

माता पुत्र के निकट जब दौड़ आई तो हरि की आँखें तनिक लजाकर नीची हो गईं। फिर उन्होंने राधा को माता की गोद में दे दिया। यशोदा ने उसे बड़े प्रेम से अपनाया।

पुनि पुनि सुता लगावति छाती। लहेउ सनेह बुझत जनु बाती ॥
देखि प्रीति पुलकित व्रजवासी। जनु निशि सहसा उषा प्रकासी ॥

उस पुत्री को वे बार बार छाती से लगाने लगीं। मानों बुझते हुए दीपक को तेल मिल गया हो। व्रजवासी इस प्रेम को देखकर हर्ष से पुलकित हो गये, मानों काली रात में एकाएक उषा का प्रकाश छा गया हो।

दोहा:—बसि स्यंदन व्रजपति लखे, बिलखत व्रज नर-नारि।
लखे राधिका ढिग बहुरि, पोंछत सब दृग-वारि ॥ १८९ ॥

व्रज के नर-नारियों को बिलखते हुए देखा। फिर उन्होंने राधा के चारों ओर घिर कर उन्हें अपने आँसू पोंछते हुए देखा। (अर्थात् राधा के कारण उनको धीरज प्राप्त हुआ।)

दोहा:—हाँके हय सुफलक-सुवन, गये कृष्ण बलराम।
गयी न व्रज तजि एक ध्वनि, "जय जय राधेश्याम!" १९० ॥

अक्रूर ने घोड़ों को हांका। कृष्ण और बलराम व्रज से चले गये पर व्रज को छोड़कर एक ध्वनि कभी नहीं गई और वह ध्वनि है—"जय-जय राधेश्याम!"

कृष्णायन अमर हो!

"प्रस्तुत ग्रन्थ में पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र ने हिन्दी साहित्य की बड़ी कमी को दूर करने का अत्यन्त विशद और सफल प्रयत्न किया है। मिश्रजी ने शील, सौन्दर्य और शक्ति तत्वों के चित्रण में असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित की है। इस कृति से हमारी सभ्यता और संस्कृति में आस्था रखने वालों को प्रोत्साहन मिलता है और कविता प्रेमियों को रसास्वादन। **यह ग्रन्थ युग-प्रवर्त्तक होने और रामचरित-मानस की भाँति घर-घर में प्रवेश करने की शक्ति रखता है।** मानस की भाँति यह ग्रन्थ भी गाया जा सकता है और मुझे आशा है कि गांवों के चौपालों में शिक्षित और निरक्षर एक साथ मिल कर मानस की तरह इसे भी गायेंगे। मिश्रजी की यह कृति अमर हो, यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।"

—राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद

★

कृष्णायन का पाठ घर-घर हो!

"कृष्णायन ऐसी कृति है, जो चिर कल्याणकारी है......हम लोग उससे चिरकाल तक जीवन लाभ करते रहेंगे। श्रीकृष्ण के चरित्र का ऐसा सुन्दर और यथाक्रम वर्णन सम्भवतः यह पहले पहल किया गया है। रामचरित-मानस के समान कृष्णायन का पाठ भी प्रत्यक घर में होना चाहिये।"

—राष्ट्र-महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

★

राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति

प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता ने कृष्ण-चरित्र के तीनों विकसित रूपों को सम्पूर्ण रूप से उपस्थित किया है। बाल-गोपाल, गोपीजन-वल्लभ तथा राधाकृष्ण का स्वरूप सजीव भाषा में फिर हमारे सामने आ गया है। सुयोग्य ग्रन्थकार ने महाभारत तथा भगवद्गीता के धर्म संस्थापक और कर्मयोग-प्रवर्त्तक कृष्ण को सच्चे वास्तविक रूप में हिन्दी भाषी जनता के सामने प्रथम बार उपस्थित किया है। वर्षों से कृष्णचरित्र के चारों ओर जो कुहरा सा एकत्रित हो गया था, उसे दूर कर के इस महान चरित्रनायक के उज्ज्वल स्वरूप और तेज को अपने असली रूप में बीसवीं शताब्दी के इस महाकवि ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। **इस कृति के द्वारा ग्रन्थकार ने एक राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति की है।**

डा० धीरेन्द्र वर्मा और डा० बा॰ म सक्सेना

★

काव्य साहित्य में उत्कृष्टतम

"बिना किसी अतिशयोक्ति के कह सकता हूँ कि कृष्णायन आधुनिक काव्य-साहित्य में उत्कृष्टतम है"

—डा० रामकुमार वर्मा

★

"भाषा-भाव और रस परिपाक की दृष्टि से इसकी गणना कुछ थोड़े से हिन्दी काव्यों में की जायेगी।"

—आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

★

...कृष्ण के वाल्मीकि

"आपने कितना महत्वपूर्ण और कितना सुन्दर कार्य सम्पन्न कर डाला! जो वाल्मीकि और गोस्वामी ...रीराम के लिये किया, वही आपने भगवान् श्रीकृष्ण के लिये किया है।"

—स्व० नरहरि चिन्तामणि केलकर